A CULTURAL STUDY OF SUBA AWADH UNDER THE MUGHALS

Thesis
submitted for the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY
of the
university of Allahabad

Presented by
Richa Dwivedi

under the supervision of
Dr. P. L. Vishwakarma
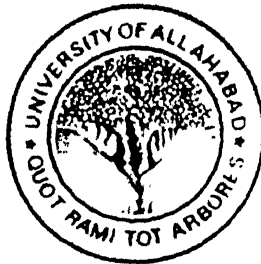
DEPARTMENT OF MEDIEVAL AND MODERN HISTORY
Allahabad University
Allahabad

2000

प्राक्कथन

प्राचीन काल से अवध उत्तर भारत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। अवध ने अपने विशिष्ट सांस्कृतिक देन के लिये अतीत काल से देश के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मध्यकाल मे भारत में मुसलमानों के आक्रमण और उसके फलस्वरूप इस्लामी सत्ता की स्थापना के बाद अन्य क्षेत्रों की भांति अवध का भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा। मुगलकाल में अवध साम्राज्य का महत्त्वपूर्ण सूबा (प्रान्त) बना रहा। सम्राट अकबर के काल में अवध का सूबा के रूप में निर्माण हुआ और इसकी सीमाएं सुनिश्चित की गयी तथा केन्द्रद्वारा प्रशासन व्यवस्था स्थापित की गयी। केन्द्र के अत्यधिक समीप होने से यहां इस्लाम का प्रभाव अधिक रहा। स्वाभाविक है कि अवध का प्राचीन स्वरूप मुस्लिम प्रभावों से कुछ सीमा तक बदलता रहा।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अन्तर्गत सूबा अवध का सांस्कृतिक अध्ययन एक प्रकार से मुगलकालीन सांस्कृतिक गतिविधियों का वह क्षेत्रीय अध्ययन है जिसका एक बिन्दु अवध था। अवध का इतिहास प्राचीन काल से गरिमामय रहा है। यह अपने पारम्परिक सांस्कृतिक विशेषताओं एवं नवीन प्रभावों से किस प्रकार विकास के पथ पर अग्रसर होता रहा उसकी ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्यात्मक प्रस्तुति इस शोध-प्रबन्ध की विषय वस्तु है। अतः पाँच अध्यायों के अन्तर्गत उपर्युक्त तथ्यों की सामग्री प्रस्तुत करेगें।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में सभी संभव साधनों का उपयोग किया गया है। क्षेत्रीय अभिलेखागार, इलाहाबाद, पब्लिक लाइब्रेरी, इलाहाबाद, इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद, भारती भवन, इलाहाबाद, ईश्वरी प्रसाद संस्थान

इलाहाबाद, प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, नागिरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, वाराणसी, काशी विद्यापीठ पुस्तकालय, काशी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, इलाहाबाद, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ आदि से मैने उपर्युक्त शोध सामग्री एकत्र की है।

मैं अपने निर्देशक आदरणीय डॉ० पन्नालाल विश्वकर्मा, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की आजीवन ऋणी हूँ उन्होंने अपने वात्सल्यपूर्ण निर्देशन में जिस तत्परता से इस शोध कार्य को सम्पन्न कराया वह मेरे लिये सदैव चिरस्मरणीय है। उनके विद्वतापूर्ण निरीक्षण सहयोग के बिना प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की पूर्णता सम्भव नहीं थी। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आपकी प्रेरणा और निर्देशन का वस्तुतः मूर्तरूप है।

इसी संदर्भ में मैं डा० रेखा जोशी, प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, प्रोफेसर चन्द्र प्रकाश झा, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय, प्रो० दिवाकर मिश्रा, भूतपूर्व प्राचार्य, कला एवं विधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अलवर, प्रथम डीन कला संकाय, जयपुर विश्वविद्यालय, जयपुर, (राजस्थान), श्रीमती उर्मिला मिश्रा, प्राचार्य डाइट एवं जिला शिक्षा अधिकारी, अलवर, डा० लईक अहमद, कला संकाय डीन, यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद, डा० एन०आर० फारूकी, प्रोफेसर, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, श्री विजय बोस, भ्राता श्री विजयानन्द द्विवेदी का स्मरण स्तुत्य है जिनकी सहृदयता मेरे प्रति बनी रही। मैं उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं अपने अनुज यमुनाधर द्विवेदी की विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जिसने मेरा निरन्तर उत्साह वर्धन कर समय-समय पर मेरे शोध-प्रबन्ध में टंकण सम्बंधी

कठिनाईयों को दूर करने में सहायता प्रदान किया। इसे मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

मैं अपने सहपाठी एवं सहयोगी पं० ब्रजेश मणि त्रिपाठी के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मेरे कार्य के प्रति संवेदनापूर्ण दृष्टिकोण के साथ-साथ ऐतिहासिक पक्ष को समझने में समय-समय पर सहायता देकर मुझे लाभान्वित किया। इसी क्रम में मै अपने मित्र एवं सह-शोधकर्ता अजय कुमार श्रीवास्तव, अशोक मिश्रा, कविता बोस, श्री कमल बोस, देवव्रत कुमार, सभाजीत सिंह, के द्वारा समय-समय पर प्रदान किये गये सहयोग के प्रति धन्यवाद देती हूँ। मैं अपने विभाग के श्री जे०पी०मिश्रा जी के प्रति भी आभारी रहूँगी जिनका सहयोग बराबर मिलता रहा। मैं उन सब अधिकारियों व कर्मचारियों के प्रति भी अपना धन्यवाद ज्ञापन करती हूँ जिन्होंने अपने सहयोग पूर्ण वातावरण में पुस्तकालयों व संग्रहालय में प्राप्त सामग्री का उपयोग करने की सुविधा प्रदान की।विशेष रूप से मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पुस्तकालय के श्री प्रदीप कुमार बैनर्जी, प्रमुख सूचीकार के दिये गये सहयोग के प्रति आभारी हूँ।

अन्त में मैं अपने माता-पिता श्रीमती सुधा द्विवेदी व स्वर्गीय बृजमोहन द्विवेदी के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिनके प्रेरणा तथा सहयोग पूर्ण वातावरण के फलस्वरूप यह शोध-कार्य सम्भव हो सका।

ऋचा द्विवेदी

(ऋचा द्विवेदी)

दिनाँक-

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

विषय-सूची

प्रथम-अध्याय

भूमिका

प्राचीन काल से ही उत्तर-भारत में 'अवध' सांस्कृतिक विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध था। यह विशेषतः हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा। इसका प्राचीन नाम अयोध्या भी था। अवध के नामकरण के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न धारणाएं प्रचलित हैं। अवध शब्द की उत्पत्ति अयोध्या से मानी जाती है तथा अयोध्या शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'अजोदह' शब्द से हैं अतः जिसका अर्थ 'अजेय' है दूसरे 'अज' 'ब्रह्मा' का नाम है[1]। अतः अयोध्या का अर्थ ईश्वर का अजय नगर हुआ। गोस्वामी तुलसीदास ने अयोध्या को अवधपुरी कहा है[2]। एक अन्य स्रोत के अनुसार अवध अवधेश से बना है जो अयोध्या के राजा रामचन्द्र का दूसरा नाम था। ऐसा माना जाता है कि रामयुग के बाद अयोध्या 'अवध' नाम से जाना जाता था तथा राम के सम्पूर्ण साम्राज्य को अवध राज्य से जाना गया[3]।

प्राचीन समय का अयोध्या कोशल राज्य की राजधानी थी। अथर्ववेद में इसको देवताओं द्वारा निर्मित स्वर्ग की भाँति समृद्ध-सम्पन्न नगर के रूप में वर्णित किया गया है[4]। अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी इस नगर का वर्णन मिलता है।

---

1 प्रसाद, कुँवर दुर्गा 'महर'-तारीख-ए-अवध, लखनऊ १९२२ ई०, पृ० १२।
मिश्र, बृज किशोर-अवध के प्रमुख कवि, लखनऊ, १९६० ई०, पृ० १२।

2 तुलसीदास-रामचरित्रमानस, गोरखपुर, सम्वत् २०२७, बालकाण्ड, पृ० २८।

3 हसन, आमीर-पैलेस कल्चर आफ लखनऊ, लखनऊ, १९८३ ई०, पृ० २।

4 अष्टचक्रा नवद्वारा देवाना पूः अयोध्या तस्यहिरणमयः कोश स्वर्गो ज्योतिषावृत। शर्मा, श्री पाद (सम्पादक) अथर्ववेद, औधनगर, १९३८ ई०, अध्याय १०, पृ०-२।

'शतपथ ब्रह्मण' और 'भगवतपुराण' में अयोध्या को वैदिक आर्यो का नगर कहा गया है[1]। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी कृति रामायण में अयोध्या का विशद रूप में वर्णन किया है[2]। 'रामचरितमानस' में इसका सभी प्रकार के धन-धान्य से परिपूर्ण नगर के रूप में वर्णन मिलता है[3]।

मुगलकाल के पूर्व अवध का महत्त्व

इतिहास में अवध प्रान्त अपने राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशिष्टताओं के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्राचीनकाल में भारत के प्रसिद्ध एवं वीर प्रतापी सूर्यवंशी क्षत्रियों ने यहाँ पर शासन किया[4]। कोशल के सूर्यवंशी राजकुल के प्रथम शासक मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे। इन्होंने कोशल राज्य की स्थापना की और राज्य का विस्तार किया[5]। माँन्धाता इस वंश के प्रथम

---

1 मजूमदार, आर० सी०-द हिस्ट्री एंड कल्चर आफ द इंडिया पीपुल, भाग-१, बम्बई, पृ० ५४।

2 अयोध्यानाम् नगरी तत्रासीलोक विश्रता
मनुता मानवेन्द्रेणा या पुरी निर्मिता स्वयम्।
आयता दशचद्धेष योन्नानि महापूरी।
वाल्मीकिय-रामयण, बालकाण्ड, गोरखरपुर, गीता प्रेस, भाग-१, पृ०२८

3 सब विधि पुरी मनोहर जानी,
सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी।
विमल कथा कर कीन्ह अरभा,
सुनत नसहि काम मददंभा।
रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० ६७।

4 हिन्दी विश्वकोश-खण्ड-३, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९७६ ई०, पृ० २१५।

5 बन, सर रिचर्ड-दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, १९३७ ई०, भाग-१, पृ० २७५।

चक्रवर्ती नरेश थे। पुराणों तथा महाभारत में उन्हें त्रैलोक्य विजय कहा गया है[1]। कालान्तर में अवध के सिंहासन पर बैठने वाले प्रतापी राजाओं में राजा हरिश्चन्द्र, दिलीप द्वितीय, रघु, दशरथ और रामचन्द्र प्रसिद्ध हुए[2]। रामायण में महान् प्रतापी राजा दशरथ के शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। इनके बड़े पुत्र राजा रामचन्द्र ने नियम पूर्वक राज्य स्थापित किया जिसे रामराज्य कहा गया है। इनके काल में अयोध्या महान् सांस्कृतिक केन्द्र बना[3]। जिसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर आदर्श के रूप में पड़ा।

अवध का इतिहास प्राचीनकाल में बहुत गरिमामय रहा। मध्यकाल में मुस्लिम शासन के स्थापना के कारण राजनैतिक रूप से अवध का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा अन्य प्रान्तों की तरह अवध भी मुस्लिम शासन में चला गया। इल्तुतमिश और बलवन के शासनकाल में अवध में मुस्लिम शासन की जड़े क्रमशः गहरायी में पहुँची व खिलजी काल में अवध में मुस्लिम शासन सुद्रढ़ हुआ। मुगलकाल में भी अवध स्वतंत्र न हो सका। एक सूबा के रूप में इसका अस्तित्व बना रहा। अकबर ने अपने साम्राज्य को १५८० ई० में बारह सूबों में विभक्त किया तो उसमें एक सूबा अवध भी था। १७२२ ई० में अवध प्रान्त नवाबी काल में प्रवेश कर गया।

अवध का सांस्कृतिक महत्त्व मुगलकाल में यथावत् बना रहा। मुगल सम्राटों ने उनमें किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं किया।

मुस्लिम शासन में अवध

---

1 हिन्दी विश्वकोश, खण्ड-३, पृ० १६०-१६१।

2 तुलसीदास-रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ०-१६८।

3 वाल्मीकिय-रामायण, बालकाण्ड, पृ० ६१-६६।

सलतनत काल में अवध हिन्दू बाहुल्य प्रान्त था जहाँ दिल्ली सुल्तानों ने उनके ही समन्वय से शासन किया। भारत में तुर्की शासन का संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक ने अवध का क्षेत्र बख्तियार खिलजी को सौंपा। इसने लखनऊ के निकट मलीहाबाद के पास बख्तियार नगर की स्थापना की तथा भारी संख्या में मुस्लिम (पठान) जनता को यहाँ बसाया[1]। इल्तुतमिश एक दूरदर्शी शासक था जिसने भारतीय इतिहास में अमिट छाप छोड़ी। उसने देश को एक राजधानी, राजतंत्रीय शासन और शासक वर्ग प्रदान किया। अपने अथक परिश्रम से उसने भारत वर्ष में गोरियों द्वारा अधिकृत प्रदेश, जिसमें दिल्ली, बदाँयू, अवध, बनारस तथा सम्पूर्ण शिवालिक प्रदेश थे, को एक सुसंगठित राज्य अर्थात् दिल्ली सलतनत में परिवर्तित कर दिया। १२२६ ई० में अवध को दिल्ली सलतनत का एक प्रान्त बनाया गया और इल्तुतमिश ने अपने पुत्र नासिरउद्दीन महमूद को अवध का शासक (हाकिम) नियुक्त किया। अवध की राजधानी अयोध्या बनायी गयी और उसकी किलेबन्दी की गयी[2]। नासिरउद्दीन ने अयोध्या पर विशेष ध्यान दिया। उसने स्थानीय स्तर पर प्रशासन व्यवस्थित किया[3]। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद केन्द्र की शक्ति शिथिल होने लगी। अव्यवस्था के इस दौर में अवध में विद्रोह एवं अशान्ति फैली। जब बलवन सिंहासन पर आया, तो उसने विद्रोह को शान्त कर शासन का सुदृढ़ीकरण किया। दिल्ली के सुल्तानों ने अवध के सामारिक महत्त्व को पहचाना। उन्होंने समझा कि अवध के सहारे वे भारत के पूर्वी भागों, खासकर

---

1. हसन आमीर-पैलेस कल्चर आफ लखनऊ, पृ० २-३।

2 इलियट, एच० एम० एवं डाउसन, जे०-द हिस्ट्री आफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-२, पृ० ३३१।

3 बर्नी, जियाउद्दीन-तारीख-ए-फीरोजशाही, सम्पादक सर सैय्यद अहमद खाँ, कलकत्ता, १८६२ ई०, पृ० ५६।

लखनौती और बंगाल पर नियंत्रण रख सकते हैं। सुल्तानों को अवध जैसे समृद्ध प्रान्त से प्रचुर मात्रा में भू-राजस्व की प्राप्ति होती थी। कृषि ही सुल्तानों के आय का प्रमुख साधन था। चूंकि अवध में कृषि समृद्ध थी, अतः प्रशासनिक केन्द्र के रूप में उसका विकास स्वाभाविक था। लखनौती में तुगरिल खाँ के विद्रोह का दमन करने के लिए सुल्तान बलवन ने अवध में नवीन सैनिकों की भर्ती का आदेश दिया। इसमें घुड़सवार, पैदल, तीर-चलाने वाले, टट्टुओं पर यात्रा करने वाले, दास नौकर-चाकर, व्यापारी तथा दुकानदार आदि थे। बलवन के उत्तराधिकारियों को अवध के हिन्दू सामन्तों की निष्ठा प्राप्त रही। यहाँ के राणा और रावत के पास भारी संख्या में सैनिक थे[1]। इनके पास अपना किला एवं गाढ़ियाँ थी।

खिलजी काल में जलालउद्दीन के समय अवध का शासक अमीर अली हातिम खाँ था[2]। इसने कड़ा के इक्तेंदार, मलिक द्दज्जू के विद्रोह का उत्साहपूर्वक समर्थन किया। जलालउद्दीन इस विद्रोह का दमन कर दिया। तत्ष्ज्ञाश्चात् अवध में अलाउद्दीन खिलजी को नियुक्त किया गया। कुछ समय पश्चात् अला-उल-मुल्क को यहाँ का शासन भार दिया गया[3]। वह अलाउद्दीन खिलजी के शासन के प्रथम वर्ष तक हाकिम के पद पर बना रहा[4]। इसके बाद कुछ समय तक यहाँ मलिक उमर तथा मंगू खाँ नियुक्त रहे। जब दोनों ने

---

1 हबीब, मोहम्मद एवं निजामी, के० ए० (सम्पादक) दिल्ली सल्तनत, भाग-१, दिल्ली, १९९६ ई०, पृ० २४६।

2 वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० २७४।

3 बर्नी जियाउद्दीन- पूर्वोद्धृत, पृ० २२२।

4 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० २४८।

प्राक्कथन

प्राचीन काल से अवध उत्तर भारत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। अवध ने अपने विशिष्ट सांस्कृतिक देन के लिये अतीत काल से देश के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मध्यकाल मे भारत में मुसलमानों के आक्रमण और उसके फलस्वरूप इस्लामी सत्ता की स्थापना के बाद अन्य क्षेत्रों की भांति अवध का भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा। मुगलकाल में अवध साम्राज्य का महत्त्वपूर्ण सूबा (प्रान्त) बना रहा। सम्राट अकबर के काल में अवध का सूबा के रूप में निर्माण हुआ और इसकी सीमाएं सुनिश्चित की गयी तथा केन्द्रद्धारा प्रशासन व्यवस्था स्थापित की गयी। केन्द्र के अत्यधिक समीप होने से यहां इस्लाम का प्रभाव अधिक रहा। स्वाभाविक है कि अवध का प्राचीन स्वरूप मुस्लिम प्रभावों से कुछ सीमा तक बदलता रहा।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अन्तर्गत सूबा अवध का सांस्कृतिक अध्ययन एक प्रकार से मुगलकालीन सांस्कृतिक गतिविधियों का वह क्षेत्रीय अध्ययन है जिसका एक बिन्दु अवध था। अवध का इतिहास प्राचीन काल से गरिमामय रहा है। यह अपने पारम्परिक सांस्कृतिक विशेषताओं एवं नवीन प्रभावों से किस प्रकार विकास के पथ पर अग्रसर होता रहा उसकी ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्यात्मक प्रस्तुति इस शोध-प्रबन्ध की विषय वस्तु है। अतः पॉच अध्यायों के अन्तर्गत उपर्युक्त तथ्यों की सामग्री प्रस्तुत करेंगें।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में सभी संभव साधनों का उपयोग किया गया है। क्षेत्रीय अभिलेखागार, इलाहाबाद, पब्लिक लाइब्रेरी, इलाहाबाद, इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद, भारती भवन, इलाहाबाद, ईश्वरी प्रसाद संस्थान

विद्रोह कर दिया उस समय अलाउद्दीन रणथम्भौर के अभियान में था जहाँ दोनों को बन्दी बना कर भेज दिया गया[1]।

तुगलकों के शासनकाल में अवध का विशेष महत्त्व रहा। मोहम्मद-बिन-तुगलक के शासनकाल में अवध का शासक (हाकिम) आइन-उल-मुल्क था। वह अत्यन्त अनुभवी तथा कुशल व्यक्ति था। इसने अवध का प्रशासन चलाने के लिए यहाँ की जनता का सहयोग प्राप्त किया एवं उन्हें आक्रमणकारियों से बचाये रखा तथा अशान्ति फैलाने वालों पर कठोर नियंत्रण रखा। जिस समय सल्तनत में अकाल पड़ा अवध का शासक आइन-उल-मुल्क प्रतिदिन पचास हजार मन गेहूँ, चावल तथा अन्य अनाज और मवेशियों के लिए चारा स्वर्गद्धारी में भेजा करता था[2]। आइन-उल-मुल्क तथा उसके भाइयों ने सुल्तान को दिल्ली तथा स्वर्गद्धारी में नगद वस्तुओं, कपड़ों और अनाजों के रूप में सत्तर या अस्सी लाख टंके भेजे[3]। मोहम्मद तुगलक के शासन के अन्तिम वर्षों में यहाँ के हिन्दू सामन्त विद्रोही हो गये थे। फीरोज तुगलक ने अपने शासन काल में अवध में शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया। अपने प्रथम बंगाल अभियान में जाते समय फीरोज अवध में रुका। यहाँ सामन्तों ने उसके प्रति स्वामिभक्ति प्रकट कर निष्ठावान बने रहने का वचन दिया। फिरोजशाह तुगलक द्वितीय बंगाल अभियान के समय पुनः अवध आया। यहाँ से वह जफराबाद गया। वहाँ उसने जौनपुर नगर की स्थापना की[4]।

---

1 बर्नी, जियाउद्दीन-तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ० २७७-२७८

2 वही, पूर्वोद्धृत, पृ० ४८०-४८१

3 वही, पूर्वोद्धृत, पृ० ४८०-४८१

4 अफीफ, शम्ससीराज-तारीख-ए-फीरोजशाही, सम्पादक विलायत हुसैन, कलकत्ता, १८९० ई०, पृ० १४८।

चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में अवध जौनपुर के शर्की राज्य का अंग बन गया। अवध लगभग सौ वर्षों तक शर्की प्रशासन के अधीन रहा। यहाँ के स्थानीय राजा, सरदार, सामन्त शर्कीयों के प्रति आस्था बनाये रखे। लोदी शासनकाल में बहलोल लोदी के समय अवध एक बार पुनः दिल्ली सलतनत का अंग बन गया[1]। लोदी शासन काल में अवध में अशान्ति तथा अव्यवस्था का बोलबाला रहा। अब अवध की राजनैतिक तथा सामाजिक दशा में कुछ परिवर्तन के चिन्ह प्रकट होने लगे[2]।

मुगल काल में सूबा अवध

मुगलकाल में अवध प्रान्त साम्राज्य का महत्त्वपूर्ण अंग रहा। इसकी भौगोलिक स्थिति उपयुक्त जलवायु तथा उर्वर भूमि अन्य सूबों की तुलना में इसका विशेष महत्त्व स्थापित करती थी। यहाँ की विभिन्नप्रकार की फसलें, परिश्रमी कृषक एवं सैनिक मुगलों के लिए विशेष महत्त्व रखते थे।

बाबर के समय अवध का शासक (हाकिम) बायाजिद फारमूली था। उसने बहुत से अफगान सरदारों को साथ लेकर बाबर के प्रति आस्था प्रकट की और यहाँ के राजस्व का बड़ा भाग तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुयें भेंट के रूप में प्रदान की[3]। सम्राट हुमायूँ को अपने शासन काल में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। हुमायूँ जब गुजरात में शान्ति स्थापित करने के प्रयास में लगा था, उलुग मिर्जा एवं उसके पुत्र अयोध्या पर अधिकार करने का प्रयत्न कर रहे थे।

---

1 रिज़वी, एस० ए० ए० - उत्तर तैमूर कालीन भारत, अलीगढ़, १९५९ई०, भाग-१, पृ० २८४-२९७।

2 इलियट, एच० ए० एवं डाउसन, जे०- पूर्वोद्धृत, भाग-४, पृ० ३५०।

3 बाबर-बाबरनामा, अनुवाद, ए० एस० बेवरिज, लंदन, १९२२ ई०, भाग-२,पृ० ५२७।

शीघ्र ही इन विद्रोहियों का दमन कर दिया गया। शेरशाह के शासन काल में अवध अफगानों के अधीन रहा[1]।

सम्राट अकबर के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में अवध में अव्यवस्था रही। कुछ समय पश्चात् शान्ति व्यवस्था स्थापित हो गयी[2]। १५५६ ई० में अकबर ने अली कुली खानेजहाँ को पूर्व के क्षेत्रों में भेजा। उसने जौनपुर और बनारस पर अधिकार स्थापित करने के उपरान्त अवध को भी मुगल साम्राज्य का अंग बना लिया[3]।

अकबर ने सर्वप्रथम शासन का पुर्नगठन करके राज्य को सुगठित किया। अवध का 'सूबा' के रूप में १५८० ई० में निर्माण हुआ। अकबर ने वास्तविक जमा (आय) स्थापित करने के लिए किये गये प्रयत्नों के अनुभव का लाभ साम्राज्य को निश्चित प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त करने में भी किया। दहसाला व्यवस्था की स्थापना के समय सम्राट ने साम्राज्य को बारह भागों में विभाजित किया और उनमें से हर एक को सूबा (प्रान्त) नाम दिया तथा जिस क्षेत्र में वह प्रभाग पड़ा, उस क्षेत्र का नाम या वहाँ की राजधानी का नाम जोड़ दिया गया[4]। यह बारह सूबा निम्न थे-

---

1 आफ़ताबची, जौहर-तजकिरात-उल-वाकयात, अनुवाद सी० स्नेवर्ट, लंदन, १८३२ ई०, भाग-१, पृ० २४६।

2 अबुल फजल- अकबरनामा, अनुवाद एच० बेवरिज, कलकत्ता, १८७७ ई०, भाग-२, पृ० २४६, २५२, २६८-३००।

3 इलियट, एच० एम० एवं डाउसन, जे०- पूर्वोद्धृत, भाग-५, पृ०-५७।

4 अबुल फजल-अकबरनामा, अनुवाद एच० बेवरिज, कलकत्ता, १६४८, भाग-२, पृ० ४१२। प्रोग्रेस, ई०- एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, लंदन, १६१३ ई०, पृ० १०१४-१५

(१) इलाहाबाद (२) आगरा (३) अजमेर (४) अवध (५) अहमदाबाद (६) बिहार (७) बंगाल (८) दिल्ली (९) काबुल (१०) लाहौर (११) मुल्तान और (१२) मालवा।

सूबा अवध में परगनों की संख्या आईन-ए-अकबरी के अनुसार १३८ बतायी गयी है। परन्तु वास्तविक सूचीबद्ध परगनों की संख्या मात्र १३३ मिलती है[1]। अकबर के शासन काल के बाद के समय में सरकारों की प्रशासनिक इकाई में आन्तरिक परिवर्तन आये, जिनमें कई नये परगनों का उदय हुआ। इस प्रकार सरकारों में परगनों की संख्या बढ़ती-घटती रही। १७वीं शताबदी के मध्य में परगना कान्त जो सरकार बदाँयू मेंथा और दिल्ली सूबे के अंतर्गत आता था। उसे सूबा अवध के सरकार खैराबाद को हस्तांतरित कर दिया गया। इस थोड़े से परिवर्तन के अतिरिक्त दिल्ली सूबा और अवध सूबा के मध्य क्षेत्रीय सीमाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। मुगल काल में सूबा अवध की सीमाएं पूर्ववत् बनी रहीं[2]। मुगल कालीन सूबा अवध के सरकार एवं परगनों की सूची निम्न है।

सरकार	अवध	लखनऊ	गोरखपुर	बहराइच	खैराबाद	समय
परगना	२१	५५	२४	११	२२	१५६५ई०
परगना	२१	२५	३१	११	२४	१६५६ई०
परगना	२१	५६	३५	१२	२५	१७२०ई०
परगना	२१	५७	३४	१२	२४	१७२१ई०

3

1 हुसैन, मुज्जफर-नामा-ए-मुज्जफरी, मुस्ताबाई प्रेस कानपुर द्वारा १९१७ ई० में प्रकाशित है, भाग-१, एडीशन नं० ६५८६, एफ० ६४ ए०, पृ० १७४-१७६।

2 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, कलकत्ता, १९४९ ई० पृ० २८०-२८१, श्रीवास्तव, ए०एल०- अवध के प्रथम दो नबाब, आगरा, १९५७, पृ० ३५

3 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ०१८४-१९० इलियट, एच०एम० एवं डाउसन जे०- भारत का इतिहास, भाग-७, हिन्दी अनुवाद मथुरा लाल शर्मा,

१५८०-८१ ई० में वजीर खाँ को यहाँ का शासन भार दिया गया[1]। इसी वर्ष के अन्त में स्वयं अकबर अवध आया। यहाँ के सैनिकों तथा सेवकों ने उनके प्रति स्वामिभक्ति प्रकट किया। १५८५ ई० में अवध क्षेत्र में फसल खराब हो जाने से कृषक राजस्व देने की स्थिति में नहीं थे सम्राट ने इस वर्ष ५.५० प्रतिशत राजस्व कम कर दिया[2]।

अकबर के शासन के अन्ततक अवध का अत्यधिक महत्त्व बढ़ गया था। यह सूबा केन्द्र के अंतर्गत था। गोरखपुर सरकार मात्र एक ऐसा क्षेत्र रहा जो अकबर के समय में अर्ध शासन के अंतर्गत आता था। समय-समय पर प्राप्त संदर्भो एवम् स्रोत्रों के अनुसार यह क्षेत्र पूरी तरह से घने जंगलों से आच्छादित था। सम्भवतः यही कारण था कि इस क्षेत्र में सलतनत काल में शाही सेनाएँ बहुत कम प्रवेश की[3]। सम्राट जहाँगीर के शासन काल में १६२१ ई० में बाकीर-ख़ान-नजम-सानी को यहाँ का शासन कार्य सौंपा गया[4]। अकबर के उत्तराधिकारियों के शासन काल में सूबा में नियमित शासन व्यवस्था चलती रही जिससे आर्थिक क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति हुई। यहाँ के जमींदार व सरदार

पृ० ११६, १६७२ जाफरी, एस०जेड०एच०- स्टडीस इन द अनाटमी आफ ए ट्रांस्फरमेशन अवध फ्राम मुगल टू कलोनियल रूल, दिल्ली, १६६८ ई०, पृ० ३१

1 अबुल फजल - अकबरनामा, अनुवाद एच० बेवरीज, कलकत्ता, १६१२ ई० भाग-३, पृ० ३२७

3 वही, - पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ०४६५

3 खान, ए०आर० - चीफ्टेन्स इन दि मुगल इम्पायर इयूरिंग दि रेन आफ अकबर, शिमला, १६७७ ई०, पृ० १५३ स्मिथ वी०ए० महान् मुगल अकबर, हिन्दी अनुवाद, नागर, राजेन्द्र नाथ, लखनऊ, १६६७, पृ० ४३१-३२

4 खान, मोतमद- इकबालनामा - ए - जहाँगीरी, कलकत्ता, १८७० ई पृ० २२२-२२३

विशेषकर घाघरा क्षेत्र के जिन्हें सरयू पार या सरवर के सरदार कहा जाता था। यह पूर्णरूप से शासन के प्रति निष्ठावान न थे। यह विद्रोही तथा अपराधियों को शरण देते रहे। लेकिन शाही सेना ने इनके विद्रोहों को व्यापक रूप नहीं लेने दिया[1]।

शाहजहाँ के शासनकाल के छब्बीसवें वर्ष में अवध का शासन भार मिर्जा-उज-जमन शाहनवाज ख़ान को सौपा गया, जिसने बड़ी योग्यता के साथ इस पद पर कार्य किया तथा सूबा में शान्ति व्यवस्था को बनाये रखा[2]। शाहजहाँ प्रशासन के मामले में दक्ष था उसके समय अवध में कोई बड़ा विद्रोह नहीं हुआ। १७वीं शताब्दी के मध्य तक सूबा अवध समृद्धशाली सूबा बन गया था। सम्राट औरंगजेब ने सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य को राजनैतिक इकाई में संगठित रखनेकी मुगल नीति को साकार करने हेतु जीवन पर्यन्त संघर्ष करता रहा। औरंगजेब के शासन के प्रथम वर्ष में सूबा अवध का फौजदार इरादत खाँ मीर ईशाक को नियुक्त किया शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। इस पद पर आज़िम ख़ान कोका को नियुक्त किया गया[3]। १६७० ई० में तरबात ख़ान को अवध का शासक नियुक्त किया गया। एक वर्ष उपरान्त इस पद पर सादतखान नियुक्त हुआ[4]। औरंगजेब के शासन के प्रारम्भिक वर्षो में सूबा की राजनैतिक स्थिति सामान्य रही। अन्तिम पच्चीस वर्षो में अव्यवस्था का दौर शुरु हुआ।

---

1 अबुल फजल - अकबरनामा, भाग-३, पृ० ३४०, ३७०, ४६०, ४६३, ग्राफ, वाँलेटी (सम्पादक) लखनऊ-मेमोरिंस आफ ए सिटी, दिल्ली, १९६७पृ० १६

2 खान, शाहनवाज- मासीर-उल-उमरा, अनुवादक बेनी प्रसाद एवं बेवरिज, कलकत्ता, १९११ और १९५२, भाग-२ पृ० ८१

3 वही, पूर्वोद्धृत, अनुवाद बेनी प्रसाद एवं बेवरिज, भाग-१, पृ० ३१२-३१३

4 ख़ान, साकी मुस्ताद- मासीर- ए- आलमगीरी, अनुवाद जे०एन० सरकार, कलकत्ता, १९४७, पृ० ३१२-३१३

१६६० ई० में हिम्मत खाँ को अवध का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसने सूबे शासन में स्थिरता लाने का प्रयत्न किया। १६६४ ई० में इस पद पर अस्कर खान को नियुक्त किया गया उसने अगले चार वर्षो तक इस पद पर कार्य किया[1]। १७०० ई० में खुदाबन्दाख़ान को अवध का शासक नियुक्त किया गया। १७०३ ई० में इसे पदच्युत कर शमशेरखान को यह पद सौंपा गया[2]। इसके बाद मिर्जा-खान-ए-आलम को सूबाके प्रशासन का कार्य दिया गया[3]। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् केन्द्रीय शक्ति शिथिल हो जाने से साम्राज्य विश्रृखलता को जोर मिला[4]। औरंगजेब के बाद सूबा अवध में अशान्ति और अव्यवस्था का दौर शुरु हो गया। यहाँ के स्थानीय राणा, रावत, जमीदार व सरदार जो अत्यधिक समृद्धशाली थे अपनी सैनिक शक्ति संगठित कर लिये[5]। जब तक केन्द्रीय शासन शक्तिशाली रहा इन्होंने मुगल का शासन प्रभुत्व स्वीकार किया और शक्तिशाली शाही सेना ने इन पर नियंत्रण बनाये रखा। अब ये सूबेदारों की आज्ञा का उल्लंघन करने लगे, शासन के विरूद्ध बगावत करते, अवसर पाने पर शाही सेना पर आक्रमण करते थे। यह भू-राजस्व देने में आनाकानी करते थे[6]। मुगल सम्राट बहादुर शाह के समय १७१२ ई० में मीर कमरूद्दीन को खान-एन-दौरान खान बहादुर की उपाधि प्रदान कर अवध का सूबेदार नियुक्त

---

1 वही, - मासीर- ए- आलमगीरी, अनुवाद जे०एन० सरकार, कलकत्ता, १९४७, पृ० ३९७

2 पूर्वोद्धृत - मासीर- ए- आलमगीरी, अनुवाद जे०एन० सरकार, कलकत्ता, १९४७, पृ० ४३२-४३३, ४७०

3 ख़ान, साकी मुस्ताद- मासीर- ए- आलमगीरी, अनुवाद जे०एन० सरकार, कलकत्ता, १९४७, पृ० ५१६

4 सरकार, जे.एन.-हिस्ट्री आंफ औरंगजेब-कलकत्ता, १९२४, भाग-५,पृ. २३५

5 ग्राफ, वॉलेटी - पूर्वोद्धृत, पृ० १९-२०

6 ग्राफ, वॉलेटी-पूर्वोद्धृत, पृ० १९-२० एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, १०२६-२७

किया गया[1]। सम्राट जहाँदार शाह के शासन के समय पुनः मीर कमरूद्दीन को अवध का शासन भार सौपा गया। वह सम्राट फर्रूखसियर के शासन के प्रथम वर्ष तक पद पर बना रहा[2]। इसके बाद मुवारिज-उल-मुल्क- मीर- मोहम्मद- सरबुलन्द- दिलावर-जंग को अवध का शासक नियुक्त किया गया। इसे शीघ्र ही केन्द्र में बुला लिया गया। १७१६ ई० में राजा गिरधर् बहादुर नागर को अवध का शासन कार्य दिया गया। इसके बाद सम्राट मोहम्मद शाह ने अवध में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के लिए सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क को भेजा। इस अव्यवस्था के दौर में जब कि साम्राज्य छिन्न-भिन्न होरहा था। जिस शक्तिशाली सामन्त को जहाँ अवसर मिला उसने अपना क्षेत्र विस्तृत कर लिया और स्वतंत्र शासन की स्थापना की। इसी अवसर का लाभ उठाकर सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क ने अवध में एक नये राज्य की नींव १७२२ ई० में ड़ाली। इसी के साथ अवध में नवाबी शासन का युग शुरू हुआ[3]।

भौगोलिक परिस्थिति

मुगल कालीन सूबा अवध मैदानी क्षेत्र के एक विस्तृत भू-भाग पर फैला हुआ था। जो ७६.६° देशान्तर से ८४° देशान्तर में पूर्व की और तथा २६° अक्षांस से २८.४° अक्षांश में उत्तर की और फैला था। सूबा की सीमा जिसमें पूर्व की सीमा पर सूबा बिहार, पश्चिम की सीमा पर सूबा आगरा की सरकार कन्नौज स्थित था। उत्तर में भारत की विशाल अभेद्य दीवार हिमालय पर्वत तथा दक्षिण में सूबा इलाहाबाद की सरकार मानिकपुर स्थित था[4]।

---

1 खान शाहनवाज- मासीर-उल-उमरा, भाग-२, पृ० ४१०,४१८

2 खान शाहनवाज- मासीर-उल-उमरा, भाग-२, पृ० ४१८

3 वर्मा, परिपूर्णान्नद- वाजिद अलीशाह और अवध का पतन, लखनऊ, १९५६, पृ० १-२ श्रीवास्तव, एल०ए० अवध के प्रथम दो नवाब, पृ० ३४

4 अबुल फजल आईन-ए-अकबरी भाग-२, पृ० १८१

सरकार गोरखपुर से सरकार कन्नौज की दूरी लगभग ४०५ किलोमीटर (१३५ कोस) तथा उत्तर की पहाड़ियों से सिंधपुर तक जो इलाहाबाद सूबा की सीमा थी, ३४५ किलोमीटर (११५ कोस) थी[1]।

क्षेत्रफल

मुगलकालीन सूबा अवध का क्षेत्रफल जिसमें पाँच सरकारें थी सम्राट अकबर के समय इसकी पैमाइश की गई भूमि एक करोड़ एक लाख इकहत्तर हजार एक सौ अस्सी बीघा (१.०१, ७१, १८०) थी[2]। इस सूबे की सीमाएं बहुत लम्बे समय तक अपरिवर्तित रही। इसका मुख्य कारण उत्तरी सीमाओं में हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं का विद्यमान होना था। सूबे के आस-पास के सरकारों में कभी क्षेत्रिय आधार पर सीमांकन एवं सीमाओं में परिवर्तन नहीं हुआ। १७ वीं शताब्दी के मध्य में दिल्ली सूबा की सरकार बदायूँ के परगना कान्त को सूबा अवध की सरकार खैराबाद को हस्तांतरित कर दिया गया। ऐतिहासिक स्रोतों को देखने से स्थिति स्पष्ट होती है कि अकबर से लेकर मुहम्मदशाह के समय तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। अबुल फजल ने 'आईन-ए-अकबरी' में अवध सूबे के सन्दर्भ में जो आँकड़े प्रस्तुत किये हैं, लगभग २०० वर्ष बाद भी बिल्कुल वही, आँकडे, सूबों की वही, सीमाएँ, सरकारों की वही, संख्या और वही, नाम तथा उनके मुख्य नगरों के भी वही, नाम अवध के प्रथम नवाब सआदत खाँ और उनके उत्तराधिकारी सफदर जंग के समय में भी दिया गया है[3]।

---

1 अबुल फजल आईन-ए-अकबरी भाग-२, पृ० १८१

2 अबुल फजल आईन-ए-अकबरी भाग-२, पृ० १८४

3 अबुल फजल ने आईन-ए-अकबरी में अवध की सीमा का जो उल्लेख किया है वह लगभग २०० वर्ष बाद तक यथावत कायम रहा। अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२ पृ० ११८, श्रीवास्तव, ए० एल० अवध के प्रथम दो नवाब, आगरा, १९५७ ई०, पृ० ३५

जलवायु -

सूबा अवध दूसरी जलवायु (इक्सीम) में स्थित था। गर्मी और शीत दोनों ऋतु लगभग शीतोष्ण है[1]। ग्रीष्म ऋतु अप्रैल से जून तक होती है मई-जून के महीने में अधिक गर्मी पड़ती है। जुलाई और मध्य अक्टूबर तक मौसम गर्म और नम रहता है। नवम्बर से फरवरी तक जाड़े की ऋतु रहती है। अक्टूबर से मार्च तक का मौसम अधिक सुहावना होता है[2]।

अवध के तराई क्षेत्रों में ग्रीष्म काल में अधिक गर्मी पड़ती है। तराई क्षेत्रों के जनपदों में दक्षिणी भाग की अपेक्षा उत्तरी भाग में जाड़े का मौसम अधिक दिनों तक चलता था साथ ही दिसम्बर और जनवरी के महीनों में पाला बहुत कम पड़ता था। वर्षा साधारणतया जून के महीने से आरम्भ हो जाती है[3]।

नदियाँ -

मुगल कालीन सूबा अवध की प्रमुख नदियों में घाघरा, गोमती, सरयू, सई, टोन्स, गण्डक एवं लोम का नाम आता है[4]। इन्हीं नदी के जल का उपयोग सिंचाई आदि के लिए किया जाता था। घाघरा नदी बहराइच के उत्तर-पश्चिमी कोने से निकलकर खीरी और सीतापुर को बहराइच से विभाजित करती हुई

---

1 अबुल फजल - पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० १८१।

2 स्लीमैन, डब्ल्यू० एच०- अ जरनी थ्रो दि किंगडम आफ अवध, लंदन, १८५८ ई०, भाग-२, पृ०६२

3 बेनेट, डब्ल्यू०सी०-अवध गजेटियर, इलाहाबाद, १८७७-७८, पृ० ८८-९३

4 अबुल फजल- पूर्वोद्धृत, भाग-३ पृ०१८, बटर, डोनाल्ड- आउट लाइन्स आफ दि टोपोग्राफी एड स्टैट्रिस्टिक्स आफदि सर्दन डिस्ट्रिक्ट्स आफ अवध एण्ड दि कैन्टोमेंट आफ सुल्तानपुर, कलकत्ता, १८३९ ई० पृ० २४-२६

बलरामपुर में चौका नदी से मिलकर फैजाबाद से गुजरती है। फैजाबाद एवं अयोध्या में यह नदी सरयू कहलाती है। गोमती नदी लखनऊ से बहकर सुल्तानपुर से निकलकर जौनपुर होते हुए गाजीपुर जनपद में सैदपुर के पास रजवाड़ी नामक स्थान पर गंगा से मिल जाती है[1]। गोमती के पानी में पीले मिट्‌टी का मिश्रण अधिक होने से पीने योग्य नहीं होता था। पानी में मछलियाँ वर्ष भर पायी जाती थी। सई नदी खीरी से होती हुई रायबरेली, प्रतापगढ़ से आगे निकलकर जौनपुर जनपद में प्रवेश करती है यही पर जलालपुर के आगे गोमती से मिल जाती है। खीरी में सई नदी में लोग नावों पर बैठकर भाले से मछली का शिकार भी किया करते थे। राप्ती नदी नेपाल की निचली पहाड़ियों से निकलकर पश्चिम की और बहती हैं, फिर दक्षिण-पूर्व की और मुड़कर बहराइच और गोण्डा से गुजरती हुई गोरखपुर, बस्ती होती हुई आगे निकल जाती है। कृषी उत्पादन का अधिकांश भाग का परिवहन राप्ती नदी के मार्ग से होता था[2]।

गण्डक नदी नेपाल से निकलकर महाराजगंज, पड़रौना, देवरिया जनपद की सीमा से होते हुए बिहार में प्रवेश करती है। टोंन्स नदी का उद्‌गम घाघरा से है वास्तव में यह घाघरा का ही एक छोटा रूप है, टोन्स नदी के कम गहरें रहने से नौकायन इसमें कम होता था[3]। अवध के उत्तर-पश्चिम भाग में इलाहाबाद के निकट से लोन नदी भी इसके साथ चलती है। लोन नदी

---

1 नेविल, एच० आर० डिस्ट्रिक्ट गजेटियर गोण्डा, इलाहाबाद, १९२१ई० पृ० १७७-१७८

2 नेविल, एच० आर० डिस्ट्रिक्ट गजेटियर गोण्डा, इलाहाबाद, १९२१ई० पृ० १७७-१७८

3 बटर, डोनाल्ड, पुर्वोद्धृत, पृ० २५-२६

रायबरेली में सई नदी से मिल जाती है। गर्मी के दिनों में लोन नदी का कोई अस्तित्व नहीं रहता है।

समय के साथ-साथ नदियों के प्रवाह के मार्ग में परिवर्तन होता रहता है, यहाँ तक कि चार या पाँच वर्ष के अपने प्रवाह के दौरान इनका मार्ग काफी हद तक बदल जाता है। कुछ नदियों की गहराई इतनी अधिक है कि वर्षा के दिनों में भी इसमें बाढ़ नहीं आती है। इन नदियों के किनारें ऊँचे कंकड़ से बाँध निर्मित होते थे।

मिट्टी -

सूबा अवध में विभिन्न प्रकार की मिट्टयाँ थी। कई स्थानों पर इनमें सिंलिका एवं कलकेरियम तत्त्वों की अधिकता पायी जाती है[1]। कुछ भाग कड़ी मिट्टी अर्थात् मट्यार और कुछ भाग बलुई या भूर कहलाता था। कुछ भाग में लोम अर्थात् मिट्टी और बालू का मिश्रण था इसे दोमट या दोरस कहते थे[2]। अवध के जंगलों से लगी मिट्टी काली एवं उपजाऊ थी[3]। कई स्थनों में कंकड़ की मात्रा की ऊपरी सतह में पायी जाती थी। कंकड़ जमीन की तरह से ६ से ८ फीट तक बहुतायत में पाया जाता था। सूबा अवध के दक्षिणी जिलों के परगनों की मिट्टी अच्छे किस्म की मानी जाती थी, जो उत्पादन के आधार पर उपयुक्त थी। जिसमें विभिन्न प्रकार के अनाजों का उत्पादन किया जाता था[4]।

---

1 बटर, डोनाल्ड, पुर्वोद्धृत, पृ० २५-२६

2 इर्विन, एच०सी०-द गार्डेन आफ इडिया, भाग-१ लखनऊ १९७३, पृ० १७

3 बटर, डोनाल्ड, पुर्वोद्धृत, पृ० २५-२६

4 बटर, डोनाल्ड, पुर्वोद्धृत, पृ० २५-२६

जंगल -

सूबे के सम्पूर्ण क्षेत्र में जंगल बहुतायत में पाये जाते थे। गोरखपुर से लेकर हिमालय की पर्वत श्रृखलाओं तक तराई का जंगल फैला हुआ था[1]। गोरखपुर के परगना अमोला बाँसी, सिलहट, मगहर एवं तप्पा में किसानों की कमी थी क्योंकि यहाँ जंगल ज्यादा घने थे तथा सड़के कम थी एवं जंगली हाथियों का भय बना रहता। अवध और गोरखपुर सरकार के मध्य में कटीली झाड़ियों एवं बास के जंगल थे[2]। जंगली वृक्षों में साल प्रमुख रूप से था लेकिन अन्य मूल्यवान वृक्षों में खैर, महुआ, शीशम और आबनूस पाये जाते थे।

'फ्रांसिस बुचनान' ने १८०७ ई० से १८११ ई० मध्य जिला (गोरखपुर) का सर्वेक्षण करके यह आंलकन प्रस्तुत किया कि जिले के सम्पूर्ण क्षेत्रफल ७.४३८ वर्ग मील में लगभग १४५० वर्ग मील जंगलों से आच्छादित था[3]। उत्तरी अवध में बहराइच, खीरी, गोण्डा भी का अधिकांश क्षेत्र वनाच्छादित था। जंगली जानवरों में शेर, चीते, जंगली बैल, हाथी, सांभर, चीतल, हिरण और सूअर थे। हिरणों

---

1 इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी जेम्स रनल के बंगाल एटलस सेप्राप्त होती हैं। रनल, जेम्स-ए बंगाल एटलस, लन्दन, १८१७ई० सीट नं० १० (अवध एण्ड इलाहाबाद विट पार्ट आफ आगरा एण्ड देहली)

2 हबीब, इरफान- ऐन एटलस आफ दि मुगल एम्पायर, दिल्ली, १९८२ ई, पृ० ३१

3 बुचनान फ्रांसिस- डिस्ट्रिक्ट रिर्पोटस (१८०७-१८११ई०) एडिटेड एण्ड एब्रिज्ड बाई मान्टगूमरी मार्टिन, दि हिस्ट्री एन्टीक्विटीज, टोपोग्राफी एण्ड स्टैटिस्टिक्स आफ इस्टर्न इण्डिया, तीन भाग, दि सर्वेआफ गोरखपुर इज इन मार्टिन एब्रिजमेंट, भाग-२ लंदन, १८३८ ई०, इण्डियन रिप्रिन्ट १९७६ ई०, पृ० ५१२

की अन्य किस्मों में गोण्डा और पाढ़ा थे[1]। जंगल शिकार खेलने, मछलियां पकड़ने, जानवरों के लिए चारागाह का काम देते और घास तथा लकड़ी उपलब्ध कराने के लिए बहुत उपयोगी थे[2]।

जनसंख्या -

मुगल कालीन सूबा अवध की निश्चित जनसंख्या का आंकलन कर पाना सम्भव नहीं है। एस० जेड० एच० जाफरी ने १६वीं शताब्दी में अवध की जनसंख्या ६० लाख के लगभग बताया है। भारत में जनसंख्या की गणना की विधिवत शुरुआत १८७२ ई० से हुई है। मुगल साम्राज्य में जनसांख्यिकी संबंधी आकड़ों का आफी अभाव रहा है। मुगल काल में जनंसख्या की जानकारी के संबंध में विभिन्नइतिहासकारों ने अनेक विचारों तथा तारीकों को अपनाया है।

डब्ल्यू एच० मोरलैंड का विचार था कि १६वीं शताब्दी का फसलीय कृषि क्षेत्र तीन शताब्दी बाद निर्धारित कृषि क्षेत्र के बराबर ही था। इस अवधारणा के आधार पर इन्होंने १६ वीं शताब्दी की जनंसख्या का आकलन अकबर के विशाल साम्राज्य में मुल्तान से लेकर मुंगेर तक जनसंख्या के आंकलन का प्रमुख स्रोत रहा। उन्होंने १६वीं शताब्दी में भारत की जनंसख्या लगभग १० करोड़ माना है[3]।

प्रो० इरफान हबीब ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि समान तकनीक एवम् फसलीय क्षेत्र के छोटे भू-भाग पर कृषि कार्य करने वाले व्यक्तियों का अनुपात

---

1 इरविन, एच०सी० पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० १५, स्मिथ, वी०ए०-महान् मुगल अकबर, हिन्दी संस्करण लखनऊ, १९६७, पृ० ४३१-३५

2 स्लीमैन, डब्ल्यू० एच०- पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० २८६

3 मोरलैंड, डब्ल्यू० एच० - इण्डिया एज दि डें थ आफ अकबर, लंदन, १९२० ई० पृ० ६-२२

पूर्व में अधिक रहा होगा। इस प्रकार उन्होंने यह मानाकि यदि १६०० ई० में कृषि योग्य फसली क्षेत्र का पूर्णांक १०० मान लिया जाय तो १६०० ई० में इसका केवल ६० प्रतिशत ही रहा होगा। इस प्रकार से १६०१ ई० में प्राप्त जनसंख्यीय आँकड़ों (२८.५२६ करोड़) के अनुसार १६०० ई० में इस जनसंख्या का केवल ६० प्रतिशत ही रहा होगा। अपनी व्यक्तिगतराय प्रस्तुत करते हुए इरफान हबीब ने कहा कि संभवतः १६०० ई० में भारत की जनसंख्या १६०१ ई० की वास्तविक जनसंख्या की आधी अर्थात् १४.२ करोड़ से थोड़ा अधिक रही होगी[1]।

प्रो० शीरीन भूसवी ने अपने आंकलन के आधार पर १६०१ ई० में भारत की निम्न जनसंख्या प्रस्तुत किया-

१. कृषि योग्य भूमि के आधार पर १३.६३ से १४.६६ करोड़[2]

२. भू राजस्व के आधार पर १४.५५ करोड़[3]

मूसवी ने अपने आँकलन के आधार पर पाँच प्रान्तों (आगरा, दिल्ली, लाहौर, इलाहाबाद तथा अवध) की कुल जनसंख्या ३.५६३ करोड़ दिया है[4]। अतः इनके आंकलन के आधार पर अवध की जनंसख्या ३३.७५ लाख के लगभग आती है।

---

1 हबीब, इरफान एवं चौधरी, तपनराय- कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री आफ इडिया, १९८२ ई., भाग-१, पृ. १६३

2 मूसवी, शीरीन-दि इकोनॉमी आफ दि मुगल एम्पायर, दिल्ली, १९८७ ई०, पृ०४०५

3 मूसवी, शीरीन-दि इकोनॉमी आफ दि मुगल एम्पायर, दिल्ली, १९८७ ई०, पृ०४०५

4 मूसवी, शीरीन-दि इकोनॉमी आफ दि मुगल एम्पायर, दिल्ली, १९८७ ई०, पृ०४०४

किंग्सले डेविस ने मोरलैंड के आंकलन के आधार पर उत्तर भारत तथा दक्कन के अलावा अन्य क्षेत्रों की जनसंख्या का आंकलन करते हुए १६वीं शताब्दी में पूरे भारत की जनसंख्या १२.५ करोड़ बताया है[1]।

आईन-ए-अकबरी तथा मोरलैंड के आँकलन के आधार पर १६वीं शताब्दी में भारत की जनसंख्या राधा कमल मुखर्जी ने १३.०० करोड़ माना है[2]। डब्ल्यू०एफ० विलकाक्स ने १०.०० करोड़[3] तथा के०एस० लाल ने १४.०० करोड़ के लगभग माना है[4]।

प्रो० एस०जेड०एच० जाफरी ने मोरलैंड और प्रो० इरफानहबीब के जनसंख्या के आँकन के आधार पर १६००ई० में अवध सूबे की जनसंख्या निम्न प्रकार दिया है-

१. यदि प्रति व्यक्ति फसलीय क्षेत्र औसत १६०० ई० के बाद अधिक नहीं बदला हो तो अवध की जनसंख्या ६० लाख रही होगी[5]।

२. यदि प्रति व्यक्ति फसलीय क्षेत्र का औसत तीन शताब्दियों में बहुत धीरे-धीरे बढ़ा हो तो अवध की जनसंख्या ६० लाख से भी कम रही होगी[1]।

---

1 डेविस, किंग्सले- पापुलेशन आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, प्रिंसयन यूर्निवसिटी प्रेस, १६५१, पृ० २४-२७

2 मुखर्जी, राधा कमल- इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, इलाहाबाद, १६६७ई०, अध्याय-२

3 विलकाक्स, डब्ल्यू० एफ०- स्टडीज इन अमेरिकन डेमोग्राफी, कार्नेल यूनिवसिटी प्रेस, १६४० ई० पृ० २२-५१

4 लाल के०एस०- ग्रोंथ आफ मुस्लिम पापुलेशन इन मिडिवल इण्डिया, दिल्ली, १६७७ ई० पृ० ७३-६०

5 जाफरी, एस०जेड०एच०- एग्रेरियन कंडीशन आफ अवध अंडर दि मुगल्स एवं नवाब वजीर्स, अलीगढ़, पृ० ३१-३२

प्रशासन -

सूबा अवध को प्रशासन की सुविधा हेतु सरकारों, परगनों एवं गांवों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक क्षेत्र की सीमा, क्षेत्रफल, कृषि योग्य भूमि इत्यादि के आंकड़े संकलित किये गये, जिनके आधार पर शासन चलता था। प्रत्येक स्तर पर राजकर्मचारी नियुक्त थे तथा इनके कार्यो, वेतन एवं पद से सम्बन्धित स्पष्ट निर्देश थे।

सूबा के सामान्य प्रशासन का भार सिपहसालार अथवा सूबेदार के नेतृत्व में सौपा गया। यह जनसाधारण में सूबेदार, सूबा साहब या केवल सूबा के नाम से जाना जाता था[2]। सूबेदार की नियुक्ति सम्राट के शाही आदेश (फरमान-ए-सबाती) द्वारा होती थी साधारणतया इस पद पर योग्य, अनुभवी तथा विश्वासपात्र व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे। सूबेदार के पद की कोई निश्चित अवधि नहीं थी। यह बहुत कुछ प्रशासनिक आवश्यकता और सम्राट की इच्छा पर निर्भर करता था। समय-समय पर इनका स्थानान्तरण होता रहता था। सूबा में एक ही सूबेदार होता था अकबर ने अपने शासन के इकतीसवें वर्ष संयुक्त सूबेदार नियुक्त किये। किन्तु इस परम्परा का कालान्तर में उपयोग नहीं किया गया। सूबे में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना सूबेदार का प्रमुख कर्त्तव्य था

1 जाफरी, एस०जेड०एच०- एग्रेरियन कंडीशन आफ अवध अंडर दि मुगल्स एवं नवाब वजीर्स, अलीगढ़, पृ० ३१-३२

2 सरकार, जे०एन० - मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, कलकत्ता, १९३५, पृ० ५६-५७
श्रीवास्तव, ए०एल०- अकबर दी ग्रेट, भाग-२, हिन्दी अनुवाद डॉ० भगवान दास गुप्ता, आगरा, १९७२, पृ० १२४

तथा अन्य कर्मचारियों को सुरक्षा प्रदान कर उनके कार्यों में सहायता करता था। शाही आदेशों में दिये गये निर्देशों तथा राजकीय नियमों को सूबा में लागू करने का कार्य भी यही करता था[1]। सूबेदार न्याय प्रशासन का कार्य भी सम्पन्न करता था, न्यायाधीश के रूप में इसे प्रारम्भिक एवं अपीलीय दोनों अधिकार प्राप्त थे[2]।

सूबे में वित्त विभाग का प्रधान अधिकारी 'दीवान' (दीवान-ए-सूबा) होता था। यह सूबेदार के अधीन न होकर केन्द्रीय राजस्व विभाग का सूबे में प्रतिनिधि था। इस पद का विकास अकबर के शासन काल में हुआ। इसके शासन के चालीसवें वर्ष तक सूबे में दीवान के पद की प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ गई थी यह अत्यन्त प्रभावशाली तथा सूबेदार से अलग एक स्वतंत्र अधिकारी बन गया था[3]। इसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा केन्द्रीय दीवान (दीवान-ए-आला) की संस्तुति पर होती थी। स्थानान्तरण भी इन्हीं के सुझाव पर होता था[4]। सूबे में दीवान का प्रमुख कार्य खालसा क्षेत्र के राजस्व का संकलन करना, वसूली और बकाया का हिसाब-किताब करना, दान में दी गई भूमि का निरिक्षण करना, सूबे के अधिकारियों को उसके कार्य के अनुसार वेतन निश्चित करना एवं वितरण करना, अमिलों के कार्यों और हिसाब-किताब की कड़ी जाँच-पड़ताल, बकाया

---

1 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० ३७-३६ सरकार, जे०एन०- पूर्वोद्धृत, पृ०३८-६१

2 शरण, परमात्मा- प्रोंविशियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, इलाहाबाद, १६४१, पृ०१८६

3 सिद्दीकी नोमान अहमद- लैंड रेवन्यु एडमिनिस्ट्रेशन अन्डरदि मुगल्स, बम्बई, १६७० ई०, पृ० ७६

4 शरण, परमात्मा, पूर्वोद्धृत, पृ० १८६

लगान तथा तकाबी की वसूली करना तथा विभिन्नविभागों के बजट एवं व्यय पर नियंत्रण कर टकसाल की देखरेख करना था[1]।

सूबा के अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारियों में सद्र, काजी, मुफ़्ती, बक्शी, वाकियानविस, खुफ़ियानविस, हरकारे आदि प्रशासन कार्य के लिए नियुक्ति किए जाते थे। सद्र की नियुक्ति केन्द्र द्वारा होती थी। सद्र मुख्य रूप से मुस्लिम सम्प्रदायों के धार्मिक हितों का संरक्षक होता था। यह उलेमाओं को वृत्ति एवं आर्थिक सहायता प्रदान कर पठन-पाठन को प्रोत्साहित करता था। सद्र संम्पत्ति के उत्तराधिकारी (विरासत) सम्बन्धित झगड़ों का भी निपटारा करता था[2]। काजी का प्रमुख कार्य मुस्लिम में निकाह सम्पन्न करना तथा न्याय का वितरण करना। न्यायिक कार्य में उसकी सहायता के लिए 'मुफ्ती' होते थे[3]। सूबे में बक्शी सेना की कुशलता को बनाये रखता था तथा सूबे की समस्त गतिविधियों की सूचना गुप्त रूप से केन्द्र को भेजते थे। इसके अतिरिक्त वाकियानविस, खुफ़ियानविस तथा हरकारे भी गुप्तचर का कार्य करते थे।

मुगल कालीन सूबा अवध पाँच सरकारों में विभाजित था। सरकार का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी फौजदार था जिसके ऊपर अपने क्षेत्र में शान्ति-सुव्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेदारी होती थी। इसका सरकार की सेना पर नियंत्रण होता तथा उसकी साज-सज्जा का निरीक्षण रखने के भी उसे निर्देश प्राप्त थे[4]। सरकार के ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षा, मार्ग की सुरक्षा, यात्रियों

---

1 कुरैशी, आई०एच०- दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पटना, पृ० २३०, शरण, परमात्मा- पूर्वोद्धृत, पृ० १६७६ ई०।

2 सरकार, जे०एन०- पूर्वोद्धृत पृ० २४
शरण, परमात्मा- पूर्वोद्धृत पृ० १६७

3 अबुल फजल- पूर्वोद्धृत, भाग-२ पृ० ४२-४३

4 अबुल फजल- पूर्वोद्धृत भाग-२, पृ० ४२-४३

एवं व्यापारियों की सुरक्षा, समाज विद्रोही तत्वों का दमन करना तथा भू-राजस्व की वसूली में सैनिक सहायता प्रदान करना आदि फौजदार का कर्तव्य था[1]। फौजदार के बाद सरकार में अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारी अमलगुजार होता था। उसका मुख्य दायित्व उपसंभाग (Sub-Division) के सम्पूर्ण राजस्व विभाग का सुचारु कार्य-संपादन सुनिश्चित करना था। यह दीवान-ए-सूबा के प्रत्यक्ष निगरानी एवं निर्देशों के अंतर्गत कार्य करता था। आशा की जाती थी कि वह किसानों से सीधा संपर्क स्थापित करे ताकि अधिकारियों द्वारा दमन की आशंका को कम किया जा सके। उस पर खेती को प्रोत्साहित करने का दायित्व भी था। जिसके लिए वह अधिक-से-अधिक कृषि योग्य भूमि उपलब्ध कराता था और उपज की गुणवता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देता था। इसके लिए उसे किसानों को ऋण देने और ऋण वसूली में रियायत करने का अधिकार दिया गया था। यह अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति, अनाजों के दाम, जागीरदारों द्वारा किये गये विरोधी कार्यो का विवरण, विद्रोहों के दमन की आदि ऐसे ही अन्य छोटी बड़ी बातों की जानकारी केन्द्र को भेजता था[2]। केन्द्र तथा सरकार में रहने वाले लोगों के बीच कि यह मुख्य कड़ी के रूप में था। सरकार के अंतर्गत भूमि सम्बन्धी आँकड़े और उसकी माल-गुजारी का लेखा-जोखा का कार्य बितिकची या लिपिक नामक अधिकारी करता था। इन्हीं कागजातों के आधार पर अमल गुजार भू-राजस्व वसूल करता था[3]। सरकार के कोष का अधिकारी खजानादार (खजान्ची) होता

सरकार, जे०एन० पूर्वोद्धृत पृ० ६४-६५

1 श्रीवास्तव, ए०एल०- अकबर दी ग्रेट, भाग-२, आगरा १९६७ ई० पृ० १३१-१३२

2 अबुल फजल- पूर्वोद्धृत भाग-२, पृ० ४६-५०

3 अबुल फजल- पूर्वोद्धृत भाग-२, पृ० ५०-५२

था। यह किसानों से लगान लेकर उसकी रसीद उन्हें देता था। खजनादान की सहायता के लिए कारकून तथा अन्य कर्मचारी नियुक्ति थे।

सूबे की राजधानी एवं प्रमुख नगरों में कोतवाल नामक अधिकारी होता था जो नगर की सुरक्षा एवं प्रशासन दोनों व्यवस्थाओं को देखता था[1]। किन्तु उसके प्रशासनिक अधिकार शहर और उसके उपनगरों तक ही सीमित होते थे। उसके कार्य असामाजिक तत्त्वों को दंड देना, शिकायतों को अविलंब दूर करना और नगर पर आम निगरानी रखना था। उसे नगर के प्रत्येक हल्के (मोहल्ला) के सभी लोगों की विस्तृत जानकारी रखनी होती थी और नगर में आने या उससे बाहर जाने वाले लोगों पर निगरानी रखने के लिए गुप्तचर रखने होते थे। कोतवाल विशेष रूप से नगर के व्यापार-व्यवसाय केन्द्रों एवं बाजारों आदि की सुरक्षा का प्रबन्धक होता था[2]। अकबर के उत्तराधिकारियों के काल में शासकीय दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ जिसका पालन कोतवाल को करना पड़ता था। अकबर की मृत्यु के पश्चात् उसके द्वारा चलाये गये बहुत से नियम समाप्त कर दिये गये[3]। औरंगजेब के समयके कोतवाल के कार्यो का वर्णन करते हुए मनूची लिखता है- कि 'कोतवाल का कर्तव्य था कि वह शराब का आसवन न होने दे तथा शासन द्वारा वर्जित कोई भी कार्य न हो इत्यादि[4]'। इन कार्यो के अतिरिक्त कोतवाल दण्डाधिकारी भी था। कोतवाल की कचहरी को

---

1 अबुल फजल- पूर्वोद्धृत भाग-२, पृ० ४३-४५

2 चन्द्र सावित्री, 'शोभा' समाज और संस्कृति, पृ० ७४
तुलसीदास ने कवितावली में कोतवाल को काशीनगर के अधिकारी के रूप में चित्रित किया है। कवितावली, अध्याय-७, पृ० १७१

3 सरकार, जे०एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६६

4 मनूची, एन० - स्टोरिया दि मोगोर, अनुवादक विलियम, इर्विन, लंदन, १६०७ ई० भाग-२, पृ० ४२०-४२१

चबूतरा कहा जाता था। मनूची कोतवाल को सम्पूर्ण नगर का शासन करने वाला प्रमुख दण्डाधिकारी कहता है[1]। नगर क्षेत्र में पकड़ा जाने वाला अपराधी कोतवाल के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। वह प्रारम्भिक जाँच-पड़ताल करने के पश्चात् उसके सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही करता था।

सरकार परगनों में विभाजित थी। परगना प्रशासन के अंतर्गत शिकदार, आमिल एवं कानूनगों तीन प्रमुख अधिकारी थे। जिन पर परगना प्रशासन का समपूर्ण उत्तरदायित्व होता था[2]। परगने में शान्ति तथा सुव्यवस्था करने का कार्य शिकदार का था। उक्त व्यवस्था सम्पूर्ण मुगल में एक-सी नहीं थी तथा अधिकारियों के कार्यक्षेत्र एवं अधिकार क्षेत्र में परिवर्तन होता रहता था। अकबर के बाद के वर्षो में फौजदार के कार्य क्षेत्र में परिवर्तन होने के कारण प्रत्येक परगने में शिकदार का पद अनियमित हो गया था। वास्तव में अकबर के शासनकाल में अमिल परगना प्रशासन का प्रमुख था और उसके पास अमिल, फौजदार एवं अमीन के अधिकार सम्मिलित थे[3]। परगना के राजस्व सम्बन्धित कार्य अमिल नामक अधिकारी के अंतर्गत था[4]। परगना में भू-राजस्व प्रशासन का प्रमुख आमिल अथवा करोडी होता था। अमिल का प्रमुख कार्य सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि पर यह देखना कि खेती हो रही है तथा कृषि के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र से राजस्व वसूल करना था। साथ ही वह कृषि-क्षेत्र के विस्तार के लिए भी

---

1 पूर्वोद्धत, एन० - स्टोरिया दि मोगोर, अनुवादक विलियम, इर्विन, लंदन, १६०७ ई० भाग-२, पृ० २६२

2 शरण परमात्मा- पूर्वोद्धृत, पृ० २११
श्रीवास्तव, ए०एल०- पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० १४०

3 सिद्धीकी, नोमान अहमद, 'द फौजदार एण्ड फौजदारी अण्डर मुगल्स' मेडिवल इण्डिया क्वार्टरली भाग- ६६, १६६१ ई०, पृ० ८१

4 श्रीवास्तव, ए०एल०- पूर्वोद्धृत, भाग-२ पृ० १४०

प्रयत्न करता था। उत्साही किसानों को तकाबी देता था। परगना में अमीन नामक अधिकारी कृषि के अंतर्गत आने वाली सम्पूर्ण भूमि की जानकारी रखता तथा उस पर नियमानुसार राजस्व का निर्धारण करता था। यह इस बात के प्रति सतर्क रहता था कि कृषि के अतर्गत आने वाली भूमि को राजस्व निर्धारण से मुक्त नहीं रखा जाय। परगने के उपज, भूमिकर तथा बकाया राशि का विवरण कानूनगों रखता था। परगने के भू राजस्व प्रशासन में कारकून तथा चौधरी महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे। चौधरी साधारणतया इस क्षेत्र का प्रमुख जमींदार या ताल्लुकेदार होता था। सत्रहवीं एवं अट्ठारवीं शताब्दी में चौधरी भू राजस्व प्रशासन से सम्बन्धित एक परगना अधिकारी था[1]। यह एक वंशानुगत पद हो गया था यद्यपि उसे शासन से सनद (सरकारी प्रपत्र) प्राप्त करना पड़ता था। साधारणतया परगना में एक चौधरी रहता था किन्तु कभी-कभी एक परगना में एक से अधिक चौधरी भी नियुक्त होते थे[2]। इनका प्रमुख कार्य राजस्व वसूल करना, मुकद्दम की सहायता से कृषको को तकाबी (ऋण) वितरित करना एवं उसे वसूल करना था। इनके अतिरिक्त प्रत्येक परगना में एक खजाना होता था इसका प्रमुख अधिकारी खजानादार या फोतादार होता था। अकबर के कालमेंशिकदार, अमिल तथा करकून खजाने के प्रबन्ध से सम्बन्धित थे[3]। खजानादार परगना के कोष की निगरानी करता तथा यह देखता था कि जमा धन सुरक्षित रहे तथा बिना दिवान की अनुमति के खर्च न हो।

---

1 सिद्धीकी, नोमान अहमद- लैंड रेवेन्यु एडमिनिस्ट्रेशन अन्डर दि मुगल्स, बम्बई, १६७० ई०, पृ० ७८-८१
इरफान, हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया, बम्बई, १६६३ ई० पृ०२६१- ६४

2 सिद्धीकी, नोमान अहमद- पूर्वोद्धृत, पृ० ६०

3 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० ५२-५३

परगना गाँवों में विभाजित था। ग्रामप्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। मुगलकालीन सूबा अवध की अधिकांश जनता गाँवो में रहती थी। मुगल शासक गाँव को एक स्वायत्त संस्था मानते थे और गाँव के स्थानीय प्रशासन एवं संस्था को संरक्षण प्रदान करते थे। गाँव के जीवन और इसके संगठन को दिल्ली सुल्तानों ने नहीं छेड़ा था और जब मुगलों का शासन आया तब भी गाँवों के प्रशासन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया। गाँवों में सबसे प्रमुख अधिकारी मुकद्दम कहलाता था। यह पद वंशानुगत हो गया था कभी-कभी इस पद का क्रय-विक्रय भी होता था। अवध में एक व्यक्ति द्वारा एक गांव के मुकद्दम के पद को २३० रुपये में खरीदने का प्रमाण उपलब्ध है[1]। मुकद्दम का कार्य अपने क्षेत्र में आम निगरानी रखना, विवादों को निपटाना, गांव राजस्व एकत्र करना तथा शंति- व्यवस्थ्या बनाये रखना था। गांव में दूसरा महत्त्वपूर्ण कर्मचारी पटवारी था जो समस्त भूमि का व्यौरा रखता था।

ग्रामीण जीवन एवं स्वीकृत आचार व्यवहारों के पालन की व्यवस्था ग्राम पंचायत के माध्यम से की जाती थी। शिक्षा, सफाई, राहत कार्य भी पंचायत के दायित्व थे। पंचायत उत्सवों का आयोजन भी करती थी और गांव में सम्पत्ति के एवं सामाजिक विवादों का निपटारा भी करती थी। पंचायत का अध्यक्ष सरपंच होता था अधिकांश मुकदमें यही तय हो जाते थे यदि कोई व्यक्ति पंचायत के निर्णय से संतुष्ट नहीं होता तो उसे शासन के उच्च अधिकारियों से अपील करने का अधिकार था।

* * *

---

1 हबीब, इरफान, पूर्वोद्धृत, पृ० १३३

द्वितीय-अध्याय

समाज

मध्यकाल में समन्वयावदी प्रवृति, राजनीति, खान-पान, वेशभूषा, रीति-रिवाज, कला इत्यादि क्षेत्रों में शनैः शनैः प्रकट होने लगी थी। धार्मिक क्षेत्र में भक्ति आन्दोलन तथा सूफी सन्तों ने सौहार्दपूर्ण वातावरण स्थापित करने की कोशिश की। मुगल सम्राटों ने, विशेषकर अकबर ने, एक समन्वयवादी भारतीय राष्ट्रधारा का विचार उपस्थित किया। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों में हिन्दू और मुसलमानों के बीच समन्वय की विचारधारा स्पष्ट रूप से चल पड़ी थी। इस दृष्टि से अवध की सांस्कृतिक विशेषताओं का विशेष महत्त्व है क्यों कि अवध में समन्वय का विचार पर्याप्त सहृदयता से स्वीकार किया गया। मुगल कालीन सूबा अवध में समाज की संरचना पारम्परिक आधार पर थी किन्तु कतिपय सांस्कृतिक क्षेत्रों में समन्वयात्मक विकास भी हुआ। हिन्दू समाज में मनसबदार, जमींदार, राजा, रावत, राणा, सरदार, राज्य के कर्मचारी, साधू सन्त तथा साधारण जनता थी। मुस्लिम समाज में शासक, अधिकतर मनसबदार, जमींदार, जागीरदार, उमरा, सूफी सन्त, राज्य के कर्मचारी तथा साधारण मुसलमान थे। दोनों ही वर्गो में उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग थे। मध्यम वर्ग का अस्तित्व भी दोनों समुदायों में उभर रहा था। इनमें व्यापारी, सर्राफ, साहूकार, सरकारी, कर्मचारी आदि थे।

समाज के उच्च श्रेणी में मानसबदार, अमीर, उमरावर्ग, स्वयत्त जमींदार व सरदार तथा उच्च अधिकारीगण थे। इनका सूबे के प्रशासन व राजनीति के अलावा समाज तथा अर्थव्यवस्था पर भी गहरा प्रभाव था। इनका जीवन वैभवपूर्ण था। इसे पूरा करने के लिए इनके पास धन की कमी नहीं थी। इन्हें शासन की और से उच्च वेतन व जागीर प्राप्त होती थी। इसके अतिरिक्त इनके आय के और भी साधन थे। उनमें से कुछ व्यापार में पूँजी निवेश कर आय बढ़ा लेते थे

तो कुछ व्यापारियों को व्याज पर ऋण आदि देते थे। कुछ अमीरों के पास अपने कारखाने भी थे[1]। स्वायत्त जमींदार व सरदारों के पास विशाल मात्रा में सम्पत्ति होती थी। उनके अधिकार भी विस्तृत होते थे। समृद्धशाली मध्यमवर्ग अपने रहन-सहन और व्यवहार में उच्च वर्ग की नकल करता था। उनके पास सम्पत्ति की कोई कमी नहीं थी। उच्च वर्ग की अपेक्षा यह लोग सम्पत्ति अर्जित कर उसे संचित रखने एवं उसमें बृद्धि करने में विश्वास करते थे। यह उतना ही दिखवा करते थे जिससे कि उनकी संपत्ति को कोई खतरा न हो। उच्च वर्ग की तरह दिखावे में अपनी सारी संपत्ति लुटा देने में यह विश्वास नहीं करते थे। अमीर और उच्चवर्ग के अन्य सदस्य इस मध्यम वर्ग को हीन दृष्टि से देखते थे। जिस समय बाबर हिन्दुस्तान आया यह वर्ग बहुत सीमित था। मुगलों के लम्बे शासन काल में इसे फलने-फूलने का अच्छा अवसर मिला। मुगलों की प्रशासन व्यवस्था में काग़जी कार्यवाही पर काफी जोर दिया जाता था। सभी आदेश, आँकडे एवं कार्य काग़जों पर लिखे जाते थे। अतः सरकारी कर्मचारियों की संख्या तदनुरूप ही अधिक थी। ये लोग अमीर वर्ग के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। समाज में फकीर वर्ग भी था। ये केवल दान पर ही पलते थे। अतः इन्हें पर जीवी वर्ग माना जा सकता है। वे प्रायः एकांतवास करते थे, उनका साधारण जनता से मेल-जोल रहता था और उन्हीं के दान पर ये पलते थे। इन्हें सूफी वर्ग से अलग करके देखा जाना उचित होगा। निजामुद्दीन

---

1 मोरलैंड, डब्ल्यू०एच०- इडिया एट द डेथ आफ अकबर, लंदन, १९२१ ई०, पृ० ८७-८६, अली, एम० अतहर- द मुगल नोबेलटी अंडर औरंगजेब, बम्बई, १९७० ई० पृ० १५७-१५८, १६७-१६८, बर्नियर, एफ०- ट्रैवेल्स इन दि मुगल इम्पायर, सम्पादक ए० कान्सटेबल, लंदन, १९१४ ई०, पृ० २४६-२४८, जोन्स डीलिट- दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मोगल, अनुवाद जे०एस० होंयलैण्ड एवं एस०एन० बैनर्जी, बम्बई, १९२८ ई०, पृ० २७

लिखता है कि सुल्तान सिकन्दर लोदी साल में दो बार फकीरों को दान करता था। इसका अनुसारण करते हुए अमीर भी फकीरों को दान करते थे[1]।

साधारण मुस्लिम जनता विभिन्न व्यवसायों में लगी हुई थी। उनकी पहचान कृषक, शिल्पी, कुशल एवं साधारण श्रमिक, धोबी, नाई, बुनकर इत्यादि अनेक उपवर्गो में भी की जा सकती है। मुस्लिम होने के कारण हिन्दुओं की अपेक्षा कतिपय बातों में उनकी स्थिति बेहतर मानी जा सकती है। ऐसा तत्कालीन राज्य की प्रकृति के कारण स्वाभाविक भी था। साधारण हिन्दुओं की स्थिति समन्वयवादी राज्यके अन्तर्गत सुरक्षित थी। फिर भी राज्य की बागड़ोर जिस वर्ग के हाथ में होती है वह अपने को कुछ विशिष्ट स्थिति में पाता है। ऐसा नितान्त स्वाभाविक है।

हिन्दू समाज –

हिन्दू समाज पूर्व कालों से विभिन्न वर्गों तथा उपवर्गों में विभाजित था। यह समाज जाति, कर्म, व्यवसाय के आधार पर विभाजित होता रहा। समाज का मूल स्वरूप प्रायः अपरिवर्तित रहा। मुगल कालीन हिन्दू समाज में गतिशीलता में वृद्धि हुई। सूबा अवध का हिन्दू समाज इसी परिस्थिति से गुजरा। इस समाज में परम्परागत प्रमुख चार जातियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र विद्यमान थी[2]। अनेक उपजातियाँ भी थी। व्यवसाय के आधार पर अनेक जातियाँ बन रही थी[3]।

---

1 अहमद, निजामुद्दीन- तबकाते अकबरी, सम्पादक बी०डे० कलकत्ता, १६७२ ई०, भाग-१, पृ० ३३६

2 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, अनुवादक एच० एस० जैरेट एवं जे० एन० सरकार, कलकत्ता, १६७८, पृ० १२१-१२२। चन्द्र सावित्री शोभा समाज एवं संस्कृति दिल्ली, १६७४, पृ० २-८

3 मलिक मोहम्मद जायसी ने १६वीं शताब्दी में ३६ जातियों का उल्लेख किया है जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की उप-जातियों के अतिरिक्त अन्य

समाज में पूर्ववत ब्राह्मणों का स्थान शीर्षस्थ था। किन्तु अब ब्राह्मणों के प्रभाव एवं विशेषाधिकारों में कुछ कमी आने लगी। इन्हें ज्योतिषी, पुरोहित, आचार्य, महन्त आदि के रूप में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। इनमें कई उप-जातियाँ थीं जैसे कान्यकुब्ज, सरयूपारी, शाकददीपी, गौड़ आदि[1]। इनमें पारस्परिक भेदभाव था जिसका विवाह, भोजन आदि में ध्यान रखा जाने लगा।

हिन्दू समाज में क्षत्रियों की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। वे मुस्लिम शासन के अन्तर्गत राजकीय सेवा में मनसबदार अथवा उसके नीचे के स्थान प्राप्त कर सकते थे। कुछ क्षत्रियों ने उच्च मनसबदार के रूप में ख्याति भी अर्जित की। जिन्होंने राजकीय सेवा नहीं प्राप्त की वे पारस्परिक ग्रामीण समुदाय में प्रमुखता पूर्वक अपनी भूमिका निभाते रहे। गाँव के मुखिया मुकद्दम या चौधरी आमतौर पर इसी वर्ग के होते थे। वे भू-राजस्व की वसूली में प्रमुख भूमिका अदा करते हुए सरकारी अमिल की मदद करते थे। विद्रोह करना भी उनके स्वभाव में था। अवसर पाने पर वे भू-राजस्व को न जमा करने का प्रयास करते थे। इसलिए जागीरदारों को आसानी से भू-राजस्व नहीं प्राप्त होता था। क्षत्रिय वर्ग राजनीतिक रूप से अपनी हिन्दूकालीन प्रमुखता खो चुका था। पारस्परिक ग्रामीण समुदाय में उसकी प्रमुखता छीनीं नहीं जा सकती थी। उसे अधिक से अधिक कुछ समय के लिए दबाया जा सकता था, सर्वदा के लिए नहीं।

अलग-अलग व्यवसायरत जातियाँ, जैसे स्वर्णकार, परवाडी, जुलाहे, तेली, नाई, लुहार कपड़ा चित्रित करने वाले, रंगरेज, ग्वाले, गडेरिया, बढ़ई, माली आदि, सम्मिलित थे। पद्मावत, हिन्दी संस्करण कलकत्ता, १८९६ ई० पृ० १५४-४१३।

1 मिश्रा, जयशंकर-प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, दिल्ली, १९९२ई०, पृ० १९१, दत्त, एन०के० ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, पृ० १५

क्षत्रिय वर्ग के लोग सैन्य गतिविधियों में अत्यधिक रुचि लेते थे। और शासन में भागीदार होकर उच्च पदों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। मुगल शासकों ने इस जाति के अनेक व्यक्तियों को उनकी योग्यता, जाति वंश मर्यादा एवं सामाजिक स्तर के अनुसार उपाधियाँ, सम्मान सूचक चिन्ह, जागीरें तथा उपहार आदि समय-समय पर प्रदान किये। जिसके फलस्वरूप दरबार तथा उसके बाहर उनकी प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई। क्षत्रिय जाति के अधिकांश लोग सूबा के सैनिक व्यवसाय तथा कुछ कृषि व्यवसाय में लगे थे और अधिक प्रभाव-शाली लोक मनसबदार तथा जमींदार थे[1]। सूबा में इनकी अनेक उप-जातियाँ विद्यमान थी। जिनमें रघुवंशी, चौहान, चन्देल, गौतम, रैकवाड़, सूरजवंशी, पनवार, झौरिया, दुर्गवंशी, कथेरिया, रावत, बघेल, तोमर, बच्छगोटी, महरोर, बाछल, भदौरिया, बिसेन, गहलौत, बैस आदि थे[2]। वैश्यों का प्रमुख व्यवसाय कृषि और व्यापार वाणिज्य था[3]। धीरे-धीरे कृषि की अपेक्षा व्यापार से उनका अधिक सम्बन्ध होने लगा। १६ वीं व १७ वीं शताब्दी में जब व्यापार एवं वाणिज्य के विकास में तीव्रता आयी तो उन्होंने सभी स्तरों अन्तर्राष्ट्रीय, अर्न्त-प्रादेशिक, शहर व गाँव पर व्यापार को बढ़ाया थोक व्यापारियों, खुदरा व्यापारियों, दलालों व दुकानदारों के रूप में उनका एकाधिकार स्थापित होने लगा। इस काल में उनके लिए व्यापारी, सर्राफ, साहूकार, दलाल, महाजन

---

1 अबुल फलज-आईन-ए-अकबरी, भाग-२ अनुवाद जैरेट एवं सरकार, कलकत्ता, १९४९, पृ० १७३-२९२।

2 क्रुक, विलियम- द ट्राइब्स एण्ड कास्ट आफ नार्थ वेस्टन प्रोविसेंस आफ इडिया एण्ड अवध, भाग-१, कलकत्ता, १८९६ ई०, पृ० ३६, ९६, १०२, ११६, ११८, १४०, १६३, १८५, १९६, २००, २०७, २४२, २४९, २१६, ३४६, ३७४, ३९२, ३९९।

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० ५७।

इत्यादि अनेक शब्दों का प्रयोग होने लगा[1]। सूबे में वैश्यों की भी अनेक उपजातियाँ विद्यमान थी। इनमें मुख्यतः अग्रवाल, अग्रहरी, बरनवाल, अयोध्यावासी, बारासैनी, विशनोई आदि थे[2]। इनकी संख्या लखनऊ, खैराबाद, गोरखपुर, हरदोई में अधिक थी[3]।

समाज में पूर्ववत सबसे निचले स्तर पर शूद्रों की स्थिति थी। मध्यकालीन समाज में शूद्रों की स्थिति में सुधार के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे। भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से उनकी आर्थिक एवम् सामाजिक स्थिति में सुधार आया। नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र होने पर समाज में जो गतिशीलता आई, उससे शूद्रों की स्थिति में भी सुधार हुआ। नवीन पेशों को अपनाने का अवसर नगरों में मिला। इससे उनके नवीन जातीय नाम भी पड़ गए जैसे रंगरेज, संगतराश, तमौली आदि। इसके अतरिक्त चण्डाल, डोम आदि जातियाँ थी जिन्हें अस्पृश्य समझा जाता था[4]। मुगल काल में इनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मुगल कालीन हिन्दू समाज में उपरोक्त जातियों के अतिरिक्त एक अन्य जाति विद्यमान थी जिन्हें समाज में सम्मान प्राप्त था। यह कायस्थ जाति थी। पूर्वकालों में इस जाति के लोगों ने सरकारी काम-काज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। यह लोग पढ़े-लिखे सुसंस्कृत होते थे।

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, अनुवाद ब्लाकमैन, कलकत्ता, १६३६, पृ० १३१।

2 क्रुक, विलियम-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ३३, ७५, १७७, १८३।

3 क्रुक, विलियम- पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ३३, ७५, १७७, १८३।

4 अबुल फजल- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १२७-१२८।
तुलसीदास-रामचरितमानस, पृ० २६७।
बर्नियर, एफ०- ट्रेवेल्स इन दि मुगल एम्पायर, सम्पादक ए०, कान्सटेबल, लंदन, १६१४, पृ० ३२५।
बनारसीदास-अर्धकथानक, सम्पादक नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १६५७ ई०, ३।

मुगल काल आते-आते इनमें अनेक उपजातियाँ उत्पन्न हुई। जैसे-श्रीवास्तव, रायजादा, कानूनगों, माथुर, अस्थाना, भटनागर, कुलश्रेष्ठ, निगम इत्यादि[1]। यह अधिकांशतः मुंशी, लिपिक, भू-राजस्व अधिकारी, कानूनगों, पटवारी आदि पद पर कार्यरत थे। इसके अतिरिक्त अनेक व्यवसाय के आधार पर भी जातियाँ बन गयी थी। जिनका वर्णन तत्कालीन साहित्य में प्राप्त होता है[2]।

इस समय तक हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था विभिन्न कारणों से शिथिल हो चली थी। इस्लाम की समानता एवं भ्रातृत्व के सिद्धान्तों ने समाज के निम्न जातियों के कतिपय लोगों को आकृष्ट किया। अनेकों लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। हिन्दू समाज में भी एक सुधारवादी विचार-धारा दिखाई पड़ने लगी। भक्ति आन्दोलन के फ़लस्वरूप हिन्दू समाज में गुणात्मक विकास हुआ। मुगल काल में व्यवसायिक गतिशीलता तथा शहरीकरण की नीति से व्यापक सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन एवं परिवर्धन हुआ[3]। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता से जाति बन्धन कमजोर पड़ गये। हिन्दू समाज का मूल रूप जाति व्यवस्था के आधार पर ही रहा परन्तु उसके रहन-सहन में तीव्र गति से परिवर्तन आता जा रहा था[4]।

---

1 क्रुक, विलियम- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १८८-२१६।

2 बनारसीदास जैन १७वीं शताब्दी में अवध में निवास करने वाली व्यवसायरत जातियों का उल्लेख अपनी रचना अर्धकथानक में किया हैं। इनमें दरजी, तमौली, ग्वाल, बढ़ई, संगतराश, धुनिया, तेली, धोबी, कदौरी, काद्दी, माली, कुदीगर, किसान, पट-धुनिया, बिदौरी, बारी, मदेरा, राज, पटुवा, इप्परा, नाई, सुनार, लोहार, धीवरा, चमार, लौहरी, बनिया, चितैरा, अर्ध कथानक, पृ० ३।

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८४, १८८, १८९,
हबीब, इरफान एवं चौधरी, राय तपन-द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री आफ इंण्डिया, भाग-१।

4 ताराचन्द-इन्फ्लूएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर।

स्त्रियों की दशा –

अवध सांस्कृतिक दृष्टि से अपनी गरिमा प्राचीन काल से बनाए हुए था। समय का प्रभाव भी पड़ा। इसका प्रभाव स्त्रियों की दशा पर भी पड़ा। नारी समाज में प्रतिष्ठित स्थान रखती थी किन्तु वह पुरुष पर आश्रित थी। पुत्री, पत्नी, माँ, बहन सभी रूप में वह पुरुषों पर निर्भर थी। उनका जीवन निरन्तर संरक्षण का था। सामाजिक विधानों तथा परम्पराओं ने उन्हें जकड़ लिया था। उन्हें परिवारिक एवं सामाजिक मर्यादाओं में रहने की अनिवार्यता थी। इसका अतिक्रमण करने पर वह दण्ड की भागी होती थी[1]। उनको प्रत्येक स्थिति में निर्वाह करने तथा तादात्म्य स्थापित करने की शिक्षा बचपन से ही परिवार में मिलती थी। परिवार में पुत्रियों की अपेक्षा पुत्रों को अधिक महत्त्व दिया जाता था[2]। समाज में स्त्रियों को सम्मान देने की प्राचीन परम्परा रही है परन्तु कुछ लोग इससे भिन्न विचार भी रखते थे[3]। स्त्री पुरुष समानता, जो कि प्राचीन भारत का आदर्श था, वह लुप्त हो गया।

---

1 अशरफ, के० एम०- हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ दिल्ली, १९६० ई०, पृ० १७०।
तुलसीदास-रामचरितमानस, पृ० ८८६-८८७।

2 स्लीमैंन, डब्ल्यू० ए०-ए जरनी थ्रो दि किंगडम आफ अवध, भाग-२, लंदन, यासीन, मोहम्मद-ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ,१९५८ ई०, पृ० ६२। अशरफ, के० एम०- पूर्वोद्धृत, पृ० १७०-१७२।

3 नारी सबल पुरुषहि स्वामी ताते रही अलेका
कबीरदास-बीजक, पृ० १८६।
भाभिनी और भुजंगिनी करी इनके विषहि डरैये।
रोयेहुँ बिचरे सुख नाही, भूलित कबहुँ पत्यैये।।
इनके बस मन परै मनोहर, बहुत जतन कोर पैये।
कामी हाई काम आतुर, तिहिं कैसे के समुझैये।।

समाज में सभी वर्गों की स्त्रियों की दशा समान नहीं थी। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ सुविधा जनक जीवन व्यतीत करती थी। यह संभ्रान्त तथा सुशिक्षित होती थी, किन्तु इन्हें भी कठोर मर्यादाओं तथा प्रतिबन्धों में रहना पड़ता था। मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ भी सीमित दायरे में सुख व सुविधाओं का उपयोग करती थी[1]। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ घरेलू कार्यों के साथ पति के साथ आर्थिक क्षेत्र में हाथ बटांती थी[2]। वे कृषि कार्य में अपने पारिवारिक लोगों के साथ लगी रहती थीं। पारम्परिक संस्कृति के अन्तर्गत उन्हें भी मेले, तीज, त्यौहार, विवाह, संस्कार तथा अन्य आयोजनों के माध्यम से सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन जीने का पूरा अवसर प्राप्त होता था[3]। हिन्दू समाज में आर्थिक क्षेत्र में पत्नी अपने पति

सूरदास-सूरसागर, सम्पादक नन्द दुलारे
बाजपेयी, वारणसी, सम्वत् २०२६, भाग-२, पृ० ११८७
ढोल गवार शुद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी
तुलसीदास-रामचरितमानस, पृ० ७७८
नारी बैराणी पुरुष की, पुरिषा की बैरी नारि।
अति काल दुन्नू भए, कछुन आया हाथ।।
दादू दलाल की वाणी, भाग-१, प्रथम संस्करण,
वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, पृ० १३१-१३२।

1 मिश्रा, रेखा-वीमेन इन मुगल इण्डिया, दिल्ली, १९६७ ई०, पृ० १२६।

2 अल्तेकर, ए० एस०-दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, दिल्ली, १९६२ ई०, पृ० १८८।

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३४१, मनूची, एन-स्टोरिया दि मोगोर, भाग-३, अनुवादक विलियम इर्विन, लंदन, १९०७, पृ० ३४१।, डेलावेल, पिट्रा-ट्रैवेल्स आफ पिट्रा डेलावेल इन इंण्डिया, अनुवादक जी० हैवर्स, १६६४ ई०, सम्पादक एडवर्ड ग्रे, लंदन, १८९२, पृ० ४२४, चोपड़ा पी० एन०-सम आस्पेक्ट्स आफ सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल्स एज, आगरा, १९६३ ई०, पृ० ११२।

के साथ पैतृक सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती थी[1]। इसके अलावा हिन्दू स्त्री को कुछ अचल सम्पत्ति जिसमें 'स्त्रीधन' (आभूषण आदि) पर उसके अधिकार को स्वीकार किया गया था[2]। अवध के हिन्दू समाज में पुत्रियों का विवाह अल्प आयु में कर देना श्रेयस्कर समझा जाता था। बाल विवाह मध्यकालीन समाज की एक प्रमुख विशेषता थी[3]। सामान्यतः कन्या का विवाह नौ या दस वर्ष की अवस्था में सम्पन्न कर दिया जाता था। सर्वप्रथम सम्राट अकबर ने विवाह की आयु निर्धारित की थी। बालक की आयु १६ वर्ष तथा बालिका की आयु १४ वर्ष[4]। किन्तु इस कार्य में उसे विशेष सफलता नहीं मिली। जो पिता अपनी कन्या का विवाह नौ वर्ष की आयु में कर देता था वह भाग्यवान तथा ईश्वर का कृपा पात्र समझा जाता था। हिन्दू समाज में कन्या के विवाह में दहेज देने की प्रथा थी। विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष की और से वर को दहेज के रूप में बहुमूल्य वस्त्र आभूषण, बर्तन, हाथी, घोड़े आदि क्षमता के अनुसार दिए जाते थे। दहेज की मात्रा कन्या पक्ष की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती थी। साधारणतया वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष से दहेज प्राप्त करते थे लेकिन कभी-कभी कन्या पक्ष के लोग भी वर पक्ष से दहेज प्राप्त करते थे। यह प्रथा अधिकांशतः निम्न जातियों में थी[5]। धनी वयोवृद्ध लोग कम आयु की कन्या से विवाह करना चाहते थे तो वह कन्या प्ज्ञाक्ष को दहेज देते

---

1 श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, आगरा, १९७२, पृ० ६२।

2 अल्तेकर, ए० एस०- पूर्वोद्धृत, पृ० १७६।

3 मिश्रा, रेखा- पूर्वोद्धृत, पृ० १३१।

4 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० १९५, त्रिपाठी, राम प्रसाद- मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, हिन्दी अनुवाद दास, आर०, इलाहाबाद, १९९४, पृ० २२९

5 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३०२।

थे। इस सन्दर्भ में कन्याओं का खरीदने की पद्धति उस समय थी[1]। हिन्दू समाज में पर्दा का चलन था। उच्च वर्ग में इसका अधिक प्रचलन था[2]। इनके परिवार की स्त्रियाँ जिस पालकी में यात्रा करती थीं उस पर भी पर्दा पड़ा रहता था। पर्दा उच्च प्रतिष्ठा का द्योतक था और उनके सम्मान को सुरक्षित रखने का एक साधन भी था[3]। मध्यम वर्ग में उच्च वर्ग की अपेक्षाकृत कम पाबन्दी थी। इनके परिवार की स्त्रियाँ घूँघट बनाकर बाहर निकलती और विशेष पर्व पर मन्दिर व तीर्थ स्थानों पर सामूहिक रूप से एकत्रित होती थी। निम्न वर्गों और ग्रामीण क्षेत्रों में पर्दे का प्रचलन न के बराबर था। आर्थिक कारणों से वे पर्दा धारण करने में असमर्थ थीं[4]। ग्रामीण स्त्रियाँ खेत में काम करते समय किसी अजनबी के सामने से निकलते समय साड़ी या अन्य शिरोवस्त्र के पल्लू से चेहरे को थोड़ा सा ढक लेती थीं[5]। हिन्दू समाज में कहीं-कहीं बहु-विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। उच्च वर्ग में ऐसा कहीं-कहीं था। मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग के लोग प्रायः एक ही विवाह किया करते थे। कुछ विशेष परिस्थिति में जब

---

1 मिश्रा, रेखा-वोमेन इन मुगल इण्डिया, पृ० १३१-१३२
मनूची, एन०- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ५५।

2 चोपड़ा, पी० एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० १०४
बर्नियर, एफ०-ट्रेवेल्स इन दि मुगल इम्पायर, अनुवाद ए० कांस्टेबल, दिल्ली, १९६८, पृ० ४१३।

3 चोपड़ा, पी० एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० १०४-१०५।
मनूची० एन०- पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ६२।

4 श्रीवास्तव, ए० एल०- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ६२।
ओझा, पी० एन०-सम आस्पेक्ट्स आफ नार्दन इण्डियन सोशल लाइफ, पटना, १९६१, पृ० ३७।

5 अशरफ, के० एम०-हिन्दूस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, पृ० १७७।
मिश्रा, रेखा- पूर्वोद्धृत, पृ० १३४।

पहली स्त्री बांझ हो या स्त्री की मृत्यु हो गयी हो तो पुरुष दूसरा विवाह करते थे। पत्नी के रूप में स्त्री की स्थिति पति के साथ जब तक सम्बन्ध ठीक हो, एक मर्यादित आश्रिता के समान रहती थी। दोनों एक दूसरे का कहना मानते थे, हलांकि पति की ही बात सर्वोपरि होती थी। इतना होते हुए भी ऊँचे घरानों की स्त्रियाँ विशेषकर क्षत्राणियाँ अपने स्वाभिमान के मामले में किसी की बात मान्ने को तैयार नहीं होती थीं[1]।

हिन्दू समाज में स्त्रियों की सबसे बड़ी विपत्ति उनके पति की मृत्यु थी। विधवा स्त्री का जीवन अत्यन्त कष्टप्रद था। विधवा हो जाने पर उन पर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिये जाते और उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था। परिवार के सम्मुख वह घृणा की पात्र बन जाती थी[2]। कुछ निम्न जाति के लोगों को छोडकर अन्य जाति में विधवा विवाह की अनुमति नहीं थी[3]। विधवाओं के पास दूसरा मार्ग मृत पति के साथ जल कर सती हो जाने का था। सती प्रथा का प्रचलन विशेषकर क्षत्रियों में अधिक था। मुगल काल में निम्न वर्ग जैसे नाई, जुलाहे आदि के परिवार की स्त्रियों के सती होने के प्रमाण भी मिलते हैं[4]। मुगल सम्राट अकबर[1], जहाँगीर[2], औरंगजेब[3] ने सती प्रथा को रोकने का प्रयास किया किन्तु सती प्रथा को समाप्त नहीं किया जा सका।

---

1 जहाँगीर-तुजुक-ए-जहाँगीर, अनुवाद रांजर्स एवं बैवरिज, लंदन, १९०९, भाग-१, पृ० १६१
चोपड़ा, पी० एन०-सम आस्पेक्ट्स ऑफ सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, आगरा, १९६३, पृ० २२१।

2 मनूची, एन० पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ६०।
अशरफ, के० एम०- पूर्वोद्धृत, पृ० १६४-१६५।

3 बदाँयुनी, अब्दुल कादिर-मुन्तरवब-उत तवारीख, अनुवाद डब्ल्यू एच० लोव, कलकत्ता, १९८४, भाग-२, पृ० ३६७।

4 अल्तेकर, ए०एल०-दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, १३०।

मुस्लिम समाज –

भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के बहुत पूर्व से मुसलमानों का प्रवेश हो चुका था। दिल्ली सलतनत की स्थापना के साथ ही इनकी संस्था में क्रमशः वृद्धि होने लगी। कुछ सुल्तानों ने भी मुसलमानों को यहाँ बसने के लिए प्रोत्साहित किया। सुल्तान बहलोल लोदी ने अपने जाति वालों को यहाँ बसने के लिए प्रेरित किया था[4]।

सलतनत काल की भाँति मुगल काल में भी इस्लामी देशों के विभिन्न भागों से विशेषकर ईरान, तूरान, अरब, अफगान, अबीसीनिया आदि देशों से मुसलमान निरन्तर यहाँ आते रहे और जीविको-पार्जन के साधन प्राप्त कर मुस्लिम जनसंख्या में वृद्धि करते रहे। इन विभिन्न तत्त्वों से ही भारत में मुस्लिम समाज की संख्यात्मक वृद्धि हुई। स्थानीय धर्मांतरण भी इसमें अपना योग देते

[1] बदाँयुनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३८८, त्रिपाठी रामप्रसाद- पूर्वोद्धृत, पृ० २२६

[2] जहाँगीर-जहाँगीर नामा, अनुवाद बृजरत्नदास, (हिन्दी संस्करण) काशी, १६६०, पृ० ३५।

[3] मनूची, एन० पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ६७।
मुगल काल में आने वाले विदेशी यात्रियों ने अपने वृतान्तों में सती प्रथा का व्यापक उल्लेख किया है।
मनूची, एन०- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ५४-५६। बर्नियर, एफ०- पूर्वोद्धृत पृ० ३१३-३१४। ट्रेवर्नियर, जे० बी०-ट्रैवर्नियस टैवल्स इन इण्डिया, अनुवाद लाल, बी०, भाग-२, लंदन, १८८६, सम्पादक क्रुक, डब्ल्यू लंदन, १६२५, पृ० १६८-१६६।

[4] रशीद, ए०- सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल, इण्डिया, कलकत्ता, १६६६, पृ० ८।

रहे। इस्लामी सामाजिक व्यवस्था समानता पर आधारित थी[1]। भारतीय वातावरण में उसके विकास पर कुछ प्रभाव हिन्दू समाज का भी पड़ा। हिन्दू समाज की भाँति उनमें भी असमानता तथा ऊँच-नीच की भावनाओं का समावेश होने लगा था। मुगल शासक बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि "भारत विजय के उपरान्त यहाँ की मुस्लिम प्रजा उनके आदमियों से घृणा करती थी[2]"। हिन्दू समाज की भाँति मुस्लिम समाज में रूढिवादिता तथा संकुचित दृष्टिकोण का समावेश नहीं था। मुसलमान एक-दूसरे के साथ भोजन, विवाह आदि का सम्बन्ध रखते थे। व्यवहार में ऊँच-नीच के भेदभाव से वे मुक्त न रह सके। मुसलमानों का सामाजिक संगठन अधिक दृढ़ रहा। हिन्दुओं की अपेक्षा उनमें एकता की भावना प्रबलतर रही। अवध के मुसलमानों में अनेक वर्ग के लोग थे। शेख, सैय्यद, तुर्क, मुगल, पठान तथा धर्म परिवर्तित मुसलमानों के अतिरिक्त अनेक व्यवसायों में लगी मुस्लिम जातियाँ शामिल थीं। अर्थात् किसी न किसी प्रकार का सामाजिक वर्गीकरण मुस्लिम समुदाय में भी उभर रहा था। वह हिन्दू प्रभाव का द्योतक है।

सूबा अवध में शेखों की संख्या हवेलीलखनऊ, खैराबाद, अवध, काकोरी तथा गोपामऊ में अधिक थी। शेखों में कई उपजातियाँ विद्यमान थी जिनमें सिंद्दीकी, कुरैशी, फारूकी, अंसारी, अब्बासी, उस्मानी और किद्वई प्रमुख थे। सैय्यदों की प्रमुख उपजातियों में रिजवी, जैदी, हुसैनी, नकवी, तकवी, काजिमी, जाफरी जलाली, बुखारी थे। सैय्यदों की संख्या खैराबाद, बिलग्राम, हरदोइ में अधिक थी[3]। पठानों में भी अनेक उपजातियाँ विद्यमान थी जिनमें युसुफ जई

---

1 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० २।

2 बाबर-बाबरनामा, अनुवाद ए०एस० बेबरिज, भाग-२, लंदन, १९२२ पृ० २४६।

3 डिस्ट्रिक्स गजेरिटर-खीरी, भाग-४२, इलाहाबाद, १९०३, पृ० ७७।
डिस्ट्रिक्स गजेरिटर-हरदोई, भाग-४१, लखनऊ, १९२२, पृ० ६८।

गक्कर, गोरी, लोदी, बंगश, अफरीदी, दिलाजक, वाकरजई, दाऊदजई आदि थी। इनकी संस्था लखनऊ, मलीहाबाद में अधिक थी[1]। तुर्क या मुगलों की उपजातियों में चग़तई तथा फिज़िलबाश प्रमुख थी। यह अधिकांशतः सैनिक तथा व्यापारिक कार्यों से सम्बद्ध थे। इनकी जनसंख्या लखनऊ, अवध तथा बहराइच में अधिक थी। शेष काकोरी, खैराबाद, गोपामऊ और बिलग्राम में रहते थे[2]। उपरोक्त मुस्लिम जातियों के अतिरिक्त अवध में धर्म परिवर्तित मुसलमानों की संख्या अधिक थी। यह सूबे में आम मुस्लिम आबादी में एक अलग वर्ग के रूप में बने रहे[3]। धर्म परिवर्तित मुसलमान आदत, रीति-रिवाजों तथा आचार-विचार में अन्य मुस्लिम समुदायों से भिन्न थे। यह अब भी उन हिन्दू वर्गों से घनिष्ट सम्बन्ध रखते थे जिनसे उनका उद्‌भव हुआ था[4]। धर्म परिवर्तित राजपूत, जिनका सम्बन्ध विभिन्न वंशों से था, इनकी जनसंख्या लखनऊ, हरदोई, गोण्डा, सुल्तानपुर आदि स्थानों में अधिक थी। अनेकों व्यवसाय रत जातियाँ थी। इनकी संख्या अधिक थी। ये सम्पूर्ण सूबे में फैले हुए थे। इनके अन्तर्गत जुलाहा, दर्जी, मीनहार, बहेलिया, नाई, मोची, घोसी, कसाई, गड़ेरिया, बढ़ई इत्यादि थे।

सूबा अवध की अधिकतर मुस्लिम जनता नगरों में रहना पसन्द करती थी। उन्हें ग्रामीण जीवन से विशेष लगाव नहीं था। परन्तु साधारणतया उच्च तथा निम्न वर्ग के सभी लोग गाँव तथा कस्बे में रहते थे। सूबे के अधिकांश

---

1 हसन, अमीर-पैलेस कल्चर आफ लखनऊ, पृ० २-३।

2 बेनेट, डब्ल्यू० सी०-अवध गजेटियर, भाग-२, इलाहाबाद, १८७७-७८, पृ० ३७६-३८०।

3 यासीन, मोहम्मद- ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ, १९३८ ई० पृ० २०।
श्रीवास्तव, ए० एल०-मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० २५।

4 शर्मा, श्रीराम- मुगल सरकार और शासन, इलाहाबाद, १९७७, पृ० ६

मुसलमान सैनिक या सरकारी कर्मचारी थे। इनमें शेख, पठानों और तुर्कों की संख्या अधिक थी। कुछ व्यापार-व्यवसाय में भी लगे थे। इनमें बड़े व छोटे व्यापारी, तथा दुकानदार आदि थे। शिक्षक हकीम, वृत्तलेखक, कवि तथा अन्य व्यवसायों में लगे हुए लोग भी थे। मुसलमानों में कुछ लोग खेती भी करते थे वे सम्पूर्ण सूबे में फैले हुए थे। कुछ लोग शिल्पकारी, दस्तकारी व कपड़ा बुन्ने का काम करते थे। कलम से जीविका अर्जित करने वाले लोग अधिकांशतः शैक्षिक और धार्मिक विभागों में काम करते थे। इस वर्ग में सबसे महत्त्वपूर्ण दल उन मौलवियों या धर्म शास्त्रियों का था जिन्हें उलमा कहा जाता था। यही लोग मौलवी, मुदर्रिस (अध्यापक), इमाम व काजी थे। वे शासन तथा मुस्लिम जनता पर काफी प्रभार रखते थे। सूफी सन्त नगरों, कस्बों या गाँव में अपने निवास स्थान पर आध्यात्मिक शिक्षा द्वारा मुसलमानों को आकृष्ट करते थे। मुसलमानों में इनका आदर होता था। हिन्दू भी उनका सम्मान करते थे तथा उनकी दरगाह में जाते थे। सूफी-सन्तों की खानखाहों और दरगाहों की संख्या तथा उनके दर्शन करने हेतु आने वाले श्रद्धालुओं की संख्या से ज्ञात होता है कि विभिन्न सूफी सम्प्रदायों के सन्तों का समाज पर कितना प्रभाव था।

पूर्व कालों की अपेक्षा मुगल काल में व्यवसायिक गतिशीलता अधिक रही। अनेक प्रकार के नये-नये व्यवसाय उपलब्ध होते रहे। कोई भी मुसलमान स्वेच्छानुसार किसी भी व्यवसाय को अपना कर उन्नति कर सकता था। प्रत्येक व्यवसाय में कार्य की कुशलता आवश्यक थी।

मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा –

सूबा अवध के मुस्लिम समाज में हिन्दू समाज के समान ही स्त्रियाँ पुरुष वर्ग पर आश्रित थीं। उन पर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्ध थे। मुस्लिम

समाज के नियम कानूनों का उन्हें कड़ाई से पालन करना पड़ता था[1]। मुस्लिम समाज में विभिन्नवर्गो की स्त्रियों की दशा एक समान न थी। उच्च या समृद्धशाली परिवारों की स्त्रियों की दशा अन्य वर्गो की अपेक्षा अच्छी थी इनके रहने के लिए भवनों में अलग से 'हरम' (अन्तःपुर) की व्यवस्था रहती थी। यहाँ पर पत्नियाँ, माता, पुत्रियाँ तथा अन्य महिला सदस्य रहती थी, इनकी सेवा के लिए अनेक दासियाँ नियुक्त की जाती थीं। हरम की स्त्रियों के मनोरंजन के लिए गायिकायें, नर्तकियाँ तथा अन्य कला में निपुण महिलायें होती थी। हरम के अन्तर्गत शिक्षा-दीक्षा की अच्छी व्यवस्था होती थी। इस वर्ग की स्त्रियाँ आर्थिक रूप से सम्पन्न होती थी। उच्च वर्ग की अपेक्षा मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ आर्थिक रुप से कम सम्पन्न थीं। यह भी सुख-सुविधा का उपयोग कर लेती थीं। इनकी स्वतंत्रता अत्यत सीमित थी[2]। कृषक तथा अन्य छोटे व्यवसायी वर्ग की स्त्रियों की दशा मध्यम वर्ग की स्त्रियों की अपेक्षा निम्नतर थी। यह आर्थिक रूप से हमेशा तंग रहती थीं। उन्हें घर तथा बाहर दोनों जगह काफी परिश्रम करना पड़ता था। यह अपने पति के व्यवसायों में भी सहयोग देती थी। निम्न तथा निर्धन वर्ग की स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। इन्हें अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता था।

---

1 श्रीवास्तव, ए०एल०- अकबर दी ग्रेट, आगरा, १९७३ई० भाग-३, पृ० २६ हरम शब्द की व्युत्पत्ति अरबी के महरम शब्द से हुई है जिसका अर्थ है निजी या गुप्त। भारतवर्ष में 'हरम' शब्द मुस्लिम परिवार की स्त्रियों के निवास स्थान के लिए प्रयुक्त होता है।

2 बदाँयूनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३९१-३९२, ४०४-४०६ जायसी, मलिक मोहम्मद, पूर्वोद्धृत, पृ० १०६
हुसैन, युसुफ -ग्लिपसेंस आफ मेडिवल इण्डिया कल्चर, बम्बई १९६२ ई० पृ० १२०

सूबा अवध के मुस्लिम परिवारों में पर्दा का कठोरता से पालन किया जाता था। मुगल काल में कोई स्त्री बिना पर्दा के बाहर नहीं निकलती थी[1]। जब तक कि वह निर्धन या निर्लज्ज न हो[2]। मुस्लिम समाज में स्त्रियों से अपने चेहरे से पर्दा हटाना अत्यन्त अपमान जनक समझा जाता था[3]। उच्च्व तथा मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ घर के बाहर डोलियों, पालकियों, चौपहलों के अन्दर भी पर्दा करके (बुरका पहनकर) जाती थी[4]। 'बुरका' सिर को ढ़ाकते हुए एक बड़ा कपड़ा होता था जिसे ओढ़कर स्त्रियाँ बाहर निकलती थी। निम्न तथा निर्धन वर्ग की मुस्लिम स्त्रियों में भी बुरका का प्रचार बढ़ने लगा था। अकबर का समकालीन इतिहास कार अब्दुल कादिर बदायुँनी लिखता है। कि "उस समय यदि कोई स्त्री बिना बुरका अथवा पर्दा किये हुए सड़कों एवं बाजारों में घूमती हुई पायी जाती थीं तो उसको वेश्यालय में भेज दिया जाता था, जहाँ वह इस पेशे को ग्रहण कर लिया करती थी"।[5] इस काल में मुस्लिम स्त्रियों को पुरुषों के साथ सार्वजनिक स्थानों पर घुल-मिलकर रहने की अनुमति नहीं थी। मुस्लिम परिवारों के पुरुष अपनी स्त्री को सम्बन्धियों से बात करने की अनुमति केवल अपने उपस्थिति में ही देते थे[6]।

---

1 कपूर, ऐलिजवेथ- हरम एण्ड पर्दा, लंदन, १९१५, पृ० ६५

2 डीलिट, जोन्स- दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल, सम्पादक जे० एस. होयलैण्ड एवं एस० एन० बैनर्जी, बम्बई, १९२८, पृ० ८०
डेलावेल, पिट्रा- ट्रैवेल्स आफ पिट्रा डेलावेल इन इण्डिया, भाग-१, १६६४ ई०, सम्पादक एडवर्ड ग्रे लंदन, १८६२ ई०, पृ० ४४-४५

3 मनूची, एन०- पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ६३

4 ग़नी, नजमुल- तारीख-ए-अवध, लखनऊ, १९१६ ई० भाग-३, पृ०३३६

5 बदायुँनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ४०५

6 डेलावेल, पिट्रा- पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ४४-४५
ट्रैवेर्नियर, जे०बी०- पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० १८४

अवध के मुस्लिम समाज में बहु-विवाह का प्रचलन था। मुसलमान एक ही साथ चार पत्नियाँ रख सकते थे, इसलिए मुस्लिम परिवार में कोई भी स्त्री गृहस्वामिनी होने का दावा नहीं कर सकती थी[1]। उच्च वर्ग के अतिरिक्त अन्य वर्गों में एक ही विवाह का प्रचलन था। साधारण वर्ग की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे अधिक पत्नियों का भार वहन कर सके।

इस्लाम में विवाह को अटूट बंधन स्वीकार नहीं किया गया है। यदि पति और पत्नी समझौते के अंतर्गत जीवन निर्वाह नहीं कर सकते थे तो वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ने अथवा तलाक देने की व्यवस्था है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को तलाक देने की अधिक स्वतंत्रता है। स्त्रियों को तलाक लेने के लिए पुरुषों पर आश्रित रहना पड़ता है। यदि वह चाहे तो पति की सहमति से तलाक ले सकती है। इसे 'खाला' कहा जाता था। पति की सहमति न मिलने पर वह न्यायालय के द्वारा तलाक प्राप्त कर सकती थीं, जिसमें उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था[2]। इस प्रकार सम्पूर्ण मुगल काल में सूबा अवध के समाज में स्त्रियों का एक छोटा सा वर्ग वैभव एवम् सुविधापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था, परन्तु इनका जीवन भी सामाजिक प्रतिबन्धों से मुक्त नहीं था। यदि निम्न या निर्धन वर्ग की स्त्रियाँ कठोर सामाजिक प्रतिबन्धों से बँधी नहीं थीं तो उन्हें आर्थिक संकट ने निम्नतर जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर रखा था। अतः किसी-ना-किसी रूप से हर वर्ग की स्त्रियाँ प्रतिबन्धों में जीवन निर्वाह कर रही थी।

---

1 श्रीवास्तव, ए०एल० मध्यकालीन संस्कृति, पृ० २६

2 सिद्धीकी, मुहम्मद मज़हरूद्दीन-वीमेन इन इस्लाम, लाहौर, १९५६ ई०, पृ० ७६-७८।

ग्रामीण जीवन स्तर -

मुगल काल में सूबा अवध की जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामीण था। इस कारण अवध में गाँवों और कस्बों की संख्या अधिक थी। इनकी अपेक्षा नगरों और कस्बों की संख्या कम थी। प्रायः डेढ़-दो मील की दूरी पर छोटे-छोटे गाँव स्थित थे और पाँच-छः मील की दूरी पर छोटे-छोटे कस्बे स्थित थे, जिन्हें बड़े गाँव का दर्जा (स्तर) प्राप्त था। अधिकतर छोटे-छोटे कस्बे सड़कों के किनारे स्थित थे। इन कस्बों में भी गाँव के मकान अधिकतर कच्चे मिट्टी के बने होते थे, लेकिन समृद्ध वर्गों के, धनी कृषक, बड़े जमींदार तथा कुछ महाजनों के मकान पक्के और दो मंजिले होते थे। ये कस्बों के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों के व्यापारिक केन्द्र होते थे। इन कस्बों में सप्ताह में एक-एक दिन बाजार लगता था जिसमें जीवन की विभिन्न आवश्यक वस्तुओं का क्रय-विक्रय किया जाता था[1]।

मुगल काल में ग्रामीण जनता को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- (१) जमींदार, सरदार, महाजन और अनाज के व्यापारी (२) धनी कृषक और (३) खेतिहर किसान जिनकी संख्या अधिक थी[2], इनके अतिरिक्त श्रमिक होते थे जो खेतों में काम करते थे। गाँव में कृषि के अलावा दूसरे उद्योग धन्धों में लगे लोग थे। वे अधिकतर कृषि उपज पर आधारित थे। कृषि पर आधारित अनेक उद्योग थे जैसे- गुड़, तेल, रस्सी, इत्र, सूत बनाना आदि। ये उद्योग परम्परागत व वंशानुगत थे[3]। उनके औजार और काम करने का तरीका अपरिष्कृत था और

---

1 बेगम, रेहना-अवध के सामाजिक जीवन का इतिहास, दिल्ली, १९९४, पृ० ६३।

2 हबीब, इरफान-दि एग्रेरियन सिस्टम आफ दि मुगल इण्डिया, १९६३, बम्बई, १२०-१२८।

3 अशरफ, के० एम०-हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, दिल्ली, १९९०, पृ० १२४-१२५।

उत्पादन बहुत कम था। इनके द्वारा तैयार किया हुआ माल बहुत अच्छा होता था जो कारीगरों की कुशलता और अनुभव का परिचायक था।

ग्रामीण आबादी में कृषकों की संख्या सर्वाधिक होना स्वाभाविक था। यद्यपि सामान्यतः कृषकों की विभिन्न जातियाँ हो सकती थी, तथापि गाँव की बनावट संभवतः एक ही जाति के लोगों की होती थी। गाँव के कास्तकार अधिकांशतः एक जाति के ही नहीं अपितु एक ही जाति की विभिन्न शाखाओं के सदस्य होते थे और यह भाई-चारे के सम्बन्धों से जुड़े होते थे[1]। खून का यह रिश्ता कास्तकारों को सुदृढ़ करता था[2]। वस्तुतः यह तथ्य सभी गाँवों पर सामान्य रूप से लागू नहीं होता है।

मुगल काल में कृषि व्यवस्था मूल रूप से किसानों पर आधारित थी। इस काल के दस्तूर-उल-अमल या मुगल प्रशसन से सम्बन्धित दस्तावेजों में कृषि करने वालों के लिए कशावर्ज, देहबान, रियाया और मुजारिया जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। कभी-कभी इन सभी शब्दों के स्थान पर केवल रियाया शब्द का प्रयोग किया गया है। किन्तु रियाया अथवा कृषक की कई श्रेणियाँ हुआ करती थीं। खुदकाश्त, पाहीकाश्त तथा मुजारियान, यद्यपि यह आवश्यक नहीं था कि तीनों श्रेणियों के किसान प्रत्येक गाँव में मौजूद हो।

खुदकाश्त वे कृषक होते थे जो किसी एक गाँव में स्थायी रूप से रहते थे और अपने हल बैल द्वारा खेती करते थे। इन किसानों को गाँवों में बहुत से अधिकार प्राप्त होते थे। यह अपने जमीन के मालिक होते थे। गाँव की सबसे उपजाऊ जमीन उन्हीं के अधिकार क्षेत्र में होती थी। जंगल में लकड़ी लाने, गाय व भैंस चराने अथवा तालाब में मछली मारने का अधिकार उन्हें होता था।

---

1 हबीब, इरफान-पूर्वोद्धृत, पृ० १२३

2 हबीब, इरफान- पूर्वोद्धृत, पृ० १२३

आमतौर से गाँव के मुकद्दम, पटवारी इत्यादि इसी वर्ग के होते थे और वही, गाँव की पंचायत के प्रमुख होते थे। मुगल काल में सूबों में भू-राजस्व हर किसान पर निर्धारित किया जाता था किन्तु सामूहिक रूप से उसके अदा करने की जिम्मेदारी सारे गाँव, विशेष रूप से खुदकाश्त किसानों के ऊपर होती थी। कभी-कभी सामूहिक रूप से गाँव के यह किसान और मुकद्दम सरकार के साथ भू-राजस्व के बारे में समझौता करते थे[1]।

'पाहीकाश्त' या 'पाही' उस किसान को कहते थे जो पड़ोस के गाँव से या किसी दूसरे की जमींदारी से खेती करने के लिए गाँव में आता था। अकबर की नवीन ग्रामीण नीति की नई भूमि कृषि के अन्तर्गत लाई जाने के कारण 'पाहीकाश्त' कृषकों की उत्पत्ति हुई। अकबर के काल में अमल गुजार का आदेश दिये गये कि यदि किसी कृषक के पास उसके गाँव में खेती करने के हेतु भूमि नहीं है और कृषक खेती करने के लिए समर्थ है तो उसे अन्य गाँव में खेती करने के लिए भूमि दी जाए। इस प्रकार से पाहीकाश्त कृषकों की अपने ही गाँव में जहाँ कि वे रहते थे, कृषि के लिए भूमि न मिलकर निकटवर्ती गाँव में मिलती थी। इस प्रकार के कृषक जब अपने ही गाँव की भूमि पर खेती करते थे, वे खुदकाश्त कृषकों की श्रेणी में आते थे, किन्तु जब अपने ही गाँव की भूमि पर खेती करने के साथ-साथ पड़ोस के गाँव की भूमि पर खेती करते थे तो उन्हें 'पाहीकाश्त' कृषक कहा जाता था। बंजर भूमि को उर्वर बनाने पर पाहीकाश्त कृषक उस भूमि का स्वामी हो जाता था। जब तक ये भू राजस्व देते जाते थे इनको बेदखल नहीं किया जा सकता था। किन्तु कुछ पाही ऐसे होते

---

1 सतीश चन्द्र-उत्तर मुगल कालीन भारत, दिल्ली, १९९३ पृ०-४।

थे जो निम्न जाति के थे और उनके पास अपने हल-बैल नहीं थे। ऐसे पाहीकाश्त आमतौर से बटाईदार के रूप में खेती करते थे[1]।

कृषकों का तीसरा वर्ग 'मुजारियान' अर्थात मौसमी अंश हिस्सेदार श्रमिकों का था। 'मुजारियान' वे किसान होते थे जिनके अधिकार में इतनी कम भूमि होती थी कि वह भूमि उनके परिवार के सम्पूर्ण श्रम को काम में लाने के लिए अपर्याप्त थी। अतः वह अपनी भूमि पर खेती करने के अतिरिक्त खुदकाश्त किसानों से किराए पर जमीन लेकर उस पर भी खेती करते थे[2]।

मुगल सरकारों ने जमींदारों का प्रभाव कम करने के लिए 'खुदकाश्त' एवम् 'मुजारियान' दोनों के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की। खुदकाश्त के बारे में गाँव के अधिकारियों को बार-बार यह चेतावनी दी गई कि जमींदारों को खुदकाश्त किसानों के साथ ज्यादती करने की अनुमति न दी जाए साथ ही यह भी कोशिश की गई कि खुदकाश्त किसान पाहीकाश्त और मुजारियान के ऊपर जोर-जबरदस्ती न करें और उनको बेदखल करके उनकी जमीन को अपनी जमीन अर्थात खुदकाश्त में शामिल करने का प्रयास न करें क्योंकि उससे सूबे को राजस्व की हानि होती थी।

किसान सामान्यतया फसलों के उत्पादन के लिए परम्परागत तरीकों से ही सिंचाई किया करते थे। सूबा अवध में अधिक से अधिक क्षेत्र की सिंचाई सरयू और धाधरा नदियों से होती थी[3]। कुँओं से भी सिंचाई की जाती थी।

---

1 सतीश चन्द्र- पूर्वोद्धृत पृ० ४
हबीब, इरफान-दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ० १२३।

2 सतीश चन्द्र- पूर्वोद्धृत पृ० ४

3 अबुल फजल, आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ३०३।
हबीब, इरफान-पूर्वोद्धृत, पृ० २६।

कुँओं से पानी निकालने के लिए ढेंकुली का प्रयोग किया जाता था[1]। इसके अतिरिक्त कुँओं से पानी प्राप्त करने के लिए कृषक कुँए के किनारे पर लकड़ी की एक दुशाखी बिठा देते थे, जिसके बीच एक धिरनी लगी रहती थी। चमड़े की मोट (चमड़े की मश्क) में रस्सी बाँध देते थे, उस रस्सी को घिरनी पर लगा देते थे और उसका दूसरा छोर बैल से बाँध देते थे। एक आदमी बैल को हाँकता था, और दूसरा भर-भर कर ऊपर आने वाली मोट को खाली करता जाता था[2]। यह व्यवस्था जिस तरह १६वीं, १७वीं तथा १८वीं शताब्दी में प्रचलित थी उसी तरह २०वीं शताब्दी के पूर्वाध तक प्रचलित रही। तथा आज भी कहीं-कहीं यह व्यवस्था देखने को मिलती है।

भूमि को अधिकाधिक उपजाऊ बनाने के लिए जानवरों का गोबर खेत में डाला जाता था एवम् बार-बार जुताई कर खेतों को तैयार किया जाता था[3]। सूबा अवध के किसानों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले खेती के औजार पारम्परिक थे। हल, फावड़े, खुर्पी, कुदाल आदि छोटे-मोटे औजार युगों पुराने हैं।

उस समय के किसान फसलों के परिवर्तन के लाभों से परिचित थे एवम् अधिकतर जमीन पर खरीफ एवम् रबी की दो मुख्य फसल पैदा करते थे। कृषक केवल सामान्य फसलों को ही नहीं उगाते थे बल्कि वे वशिष्ट फसलें भी जमीन की उपजाऊपन के आधार पर उगाया करते थे, जिनमें— कपास गन्ना,

---

1 अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० १२१।

2 बाबर-तुजुक-ए-बाबरी, अनुवाद बेवरिज, भाग-३, पृ० ४८७।
मोरलैंड डब्ल्यू० एच०- इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर, पृ० १०१-१८२।
श्रीवास्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २१६-२१७।

3 श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २१७।

एवम् नील शामिल था[1]। मुगल कालीन सूबा अवध में ५० फसलें पैदा की जाती थी। २१ रबी की और २६ खरीफ की फसल थी[2]।

जमींदार -

मुगल काल में अवध में प्रायः जमींदारी प्रथा का प्रचलन था। बहुत से गाँव तथा कस्बे जमींदारों की जमींदारी में रहते थे। इनका पूरे गाँव में अत्यधिक सम्मान होता था तथा उनकी आज्ञा और आदेशों का सभी पालन करते थे। जमींदारों में भी विभिन्न श्रणियाँ थीं। उन्हें विभिन्न प्रकार के अधिकार एवम् अनुलाभ प्राप्त थे, जिसके कारण समाज में उनकी स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी थी। स्वायत्त जमींदारों द्वारा नियन्त्रित क्षेत्र में अधीनस्थ अर्ध-स्वायत्त सरदार ही नहीं बल्कि मध्यस्थ और साथ ही प्राथमिक जमींदार भी होते थे। मध्यस्थ जमींदारों का अधिकार क्षेत्र एकाधिक प्राथमिक जमींदारों तक विस्तृत था। फिर भी उनमें से अधिकांश अपने स्तर पर प्राथमिक जमींदार भी थे। मुगल काल में साम्राज्य में एक भी परगना ऐसा नहीं था जिसमें जमींदार न हों[3]।

प्राथमिक जमींदार वास्तव में कृषि-योग्य और आवासीय भूमि के स्वामित्व का अधिकार रखते थे। इस वर्ग में केवल वे ही सम्मिलित नहीं हैं जो भूमिधारी (खुदकाश्तकार) होने के साथ-साथ या तो स्वयं खेती करते थे या श्रमिकों से करवाते थे, किन्तु वे भी सम्मिलित हैं जो कि एक या अधिक गाँव के स्वामी होते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि साम्राज्य की समस्त कृषि योग्य भूमि प्रथम

---

[1] अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १०२।

[2] वही, - पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ८२-८४।

[3] हबीब, इरफान-दि जमींदार्स इन दि आईन, प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन, हिस्ट्री कांग्रेस, त्रिवेन्द्रम, १९५८, ३२०-३२३।

अथवा द्वितीय वर्ग के प्राथमिक जमींदारों के अधीन थी इनके अधिकार वंशानुगत थे तथा इन्हं बेचने का अधिकार प्राप्त था। मुगल कालीन सूबा अवध के ऐसे अनेक जमींदारों के बैनामे (विक्रय-लेख) आज भी उपलब्ध हैं इस संदर्भ में बिन्दु पर प्रकाश डालने वाला एक बैनामा (विक्रय-लेख) जो १५८५ ई० का है। इस दस्तावेज में अवध सूबे के 'सडीला' (परगना) के 'जरहा' गाँव की सम्पूर्ण संपत्ति संबंधी अधिकार मियाँ अमान पुत्र अधन को १५६८ रू० के एवज में हस्तांतरित कर दिया गया था। यह बैनामा नरायन, आशा, नख्खु, भख्खन एवं अन्य जो ब्राह्मण जाति के थे उनके द्वारा निष्पादित किया गया था[1]। कई अन्य बैनामें जो संपत्ति के अधिकारों से संबंधित थे एवं जिनका हस्तांतरण किया गया था वे 'बिसवी' या 'सतारही' नाम से जाने जाते थे[2]। जमींदारों के इन अधिकारों की रक्षा करना मुगल सरकार अपना कर्तव्य समझती थी और इसलिए उसने काजी की अदालत में ऐसे भूमि हस्तांतरणों के पंजीकरण को प्रोत्साहित किया ताकि दावेदारी का सही हिसाब-किताब रखा जा सके। जो लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन अधिकारों का उपयोग कर रहे थे या जिन्होंने बैनामें के तहत उन्हें प्राप्त किया था[3]। इन जमींदारों को अमलगुजार माना जाता था, किसानों से राज्य का हिस्सा संकलित कर राज्य या उसके प्रति निधियों के पास जमा करवाना उसका कर्त्तव्य था। वे अपने क्षेत्र में कानून व व्यवस्था बनाये रखने में प्रशासन का सहयोग देने के प्रति भी उत्तरदायी थे[4]।

---

[1] डाक्यूमेंटस इन दि सेन्ट्रल रिकार्ड आफिस, उत्तर-प्रदेश, इलाहाबाद, न० ३१७।

[2] सिद्दीकी, एन० ए०- लैंड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन अंडर दि मुगल्स, बम्बई, १६७०, पृ० २६।

[3] हसन, सैयद नुरुल-दि पोजीशन आफ दि जमींदार्स इन दि मुगल एम्पायर, वाल्यूम-१, नं० ४, १६६४, पृ० २१।

[4] अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० ४६-५०।

मध्यस्थ जमींदारों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के जमींदार आते थे जो प्राथमिक जमींदारों से भू राजस्व इकट्ठा करके शाही खजाने में या जागीरदारों को या स्वायत्त शासक सरदार को दे दिया करते थे। ये मध्यस्थ जमींदार न केवल भू राजस्व प्रशासन के रीढ़ थे बल्कि अपनी जमींदारी में कानून, शान्ति एवम् सुरक्षा व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी भी इन्हीं की थी[1]। इसके लिए वे अपनी सेना रखते थे जिसकी संख्या उनकी क्षमता के अनुसार होती थी। और अपने लिए गढ़ी या छोटे दुर्ग का निर्माण करते थे। अकबर के काल में सूबा अवध में जमींदारों के पास कुल मिलाकर ७,३६० सवार, १,७८,६५० पैदल और ५६ हाथी थे[2]। अवध सूबे के प्रत्येक सरकारों (जिलों), जमींदारों की सेनाओं का विवरण निम्न तलिका में दिया गया है।

तलिका संख्या-१

क्रम सं०	सरकार का नाम	सवार	पैदल	हाथी	स्रोत
१.	अवध	१, ३४०	३१७००	२३	अबुल फजल, आईन-ए-अकबरी,भाग-२ पृ० १८४-८५
२.	गोरखपुर	१,०१०	२२,०००	—	वही, पृ० १८६
३.	बहराइच	१,१७०	१४,०००	—	वही, पृ० १८६

1 कुरैशी, आई०एच०-द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द मुगल एम्पायर, पटना, १९७६, पृ० २४३-२४४

2 अबुल फजल-आईने-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८४-१९०।

४.	खैराबाद	१,१६०	२७,८००	—	वही, पृ० १८७-१८८
५.	लखनऊ	२,६८०	८३,४५०	३६	वही, पृ० १८८-९०
	योग	७,३६०	१,७८,६५०	५६	

सूबा अवध के मध्यस्थ जमींदार इन सेवाओं के बदले में विभिन्न प्रकार के अनुलाभों का उपयोग करते थे। जैसे कमीशन (हिस्सा), रियायतें, करमुक्त भूमि[1]। इसके अतिरिक्त अपने क्षेत्रों में किसानों से तरह-तरह के कर वसूला करते थे। जैसे 'दस्तार शुभारी (पगडियों का गिन्ना), विवाह कर, मृत्यु कर, गृहकर (खानाशुभारी) आदि[2]। साधारणतया राजस्व में उनका हिस्सा २.५ प्रतिशत से १० प्रतिशत के बीच होता था[3]। अधिकांश जमींदारों को पैतृक उत्तराधिकार प्राप्त थे। यद्यपि कुछ जमींदार थोड़े समय के अनुबन्ध पर भी इस पद पर काम करते थे। व्यवहारिक रूप से सारा देश ही किसी न किसी प्रकार से मध्यस्थ जमींदारों के अधिकार क्षेत्र में था[4]।

मुगल काल में अवध का कुछ भाग स्वायत्त जमींदारों के अधीन था जो अपने वंशानुगत भू क्षेत्रों पर शासन करते थे और उन्हें वस्तुतः सभी प्रभुत्ता सम्पन्न अधिकार प्राप्त थे। अवध में ये बूमिया, राय, राजा आदि नामों से जाने जाते थे। सामान्य जमींदारों की तुलना में इनके अधिकार क्षेत्र बड़े होते थे। और ये बड़ी-बड़ी फौज रखते थे।

---

1 हसन, एस० एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० १५

2 हबीब, इरफान- पूर्वोद्धृत, पृ० १५०

3 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० १५०
हसन, एस० एन- पूर्वोद्धृत, पृ० १५

4 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० १५-१६।

सूबा अवध में सरदार विषेशकर घाघरा नदी के दूसरे किनारे पर पाये जाते थे जिन्हें सरवर या सरयू पार कहा जाता था। ये अकबर के शासन काल में बहराइच एवम् सरवर के सरदार कहे जाते थे। ये सरदार विभिन्न जातियों के थे। प्रायः ये आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। सरदारों को समय-समय पर बदल भी दिया जाता था। गोरखपुर के सरदारों में एक सरदार राजा मान था। अबुल फजल ने राजा मान को सरवर के उत्तर सरयू (घाघरा) से लगे हुए क्षेत्र का भू स्वामी कहा है[1]। इनके संदर्भ में यह मान्यता थी कि वह आधुनिक गोण्डा जनपद का विसेन सरदार था जिसे गोण्डा के जनक के रूप में माना जाता था[2]। इसी क्षेत्र में संसारचंद का उल्लेख राजा के संदर्भ में मिलता है[3]। अबुल फजल ने एक अन्य सरदार हसनखान बछगोती जो कि अवध का रहने वाला था उसे हिन्दुस्तान के प्रमुख एवम् प्रभावशाली जमींदारों में से एक माना है। जो कि अपने वंशजों एवम् भाईयों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण था[4]। तथा उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसे शेरशाह के माध्यम से राजा के रूप में पदवी प्राप्त हुई थी[5]।

मुगल काल में कुछ विद्रोही सरदारों के अतिरिक्त अनेक सरदारों की सेनाओं ने मुगल प्रशासन के लगभग हर महत्त्वपूर्ण अभियान में अहम् भूमिका

---

1 अबुल फजल- अकबर नामा, अनुवाद एच० बेवरिज, भाग-३, कलकत्ता, १६४८ ई०, पृ० १५।

2 दि इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, भाग-१२, आक्सफोर्ड,१६०८, पृ० ३४०।

3 बयाजिद, बियाद-तराकिरा-ए हुमायूँ व अकबर, सम्पादक एम० हिदायत हुसैन, कलकत्ता, १६४१, पृ० ३१६।

4 अबुल फजल-अकबर नामा, भाग-२, पृ० ५६।

5 हाजी, दरोगा अली-ऐन इल्लस्ट्रेटेड हिस्टोरिकल एलबम आफ दि राजाज एंड ताल्लुकेदार्स आफ अवध, इलाहाबाद, १८८०, पृ० ८।

निभाई। इसके अलावा इस बात पर जोर दिया जाता था कि या तो सरदार (राजा) सूबेदार के दरबार में उपस्थित रहें या उनकी किसी अन्य जगह नियुक्ति की स्थिति में उनका कोई निकट सम्बन्धी दरबार में उनका प्रतिनिधित्व करे इससे सरदारों पर साम्राज्य का नियंत्रण दृढ करने में सहायता मिली[1]।

जमींदार अपने इलाके (क्षेत्र) का स्थायी निवासी होता था और मामलों में वह वंशानुगत स्थिति और गोत्रिय सम्बन्धों के सूत्र से कृषकों से बँधा होता था। किन्तु इनके द्वारा कृषकों का शोषण भी होता रहा। इन्हें जमींदारों और भू राजस्व कर्मचारियों को अनेक प्रकार के उपकर एवम् उपहार देना पड़ता था[2]। यद्यपि इन्हं शासकों द्वारा निर्देश थे कि वे नियमानुसार निर्धारित भू-राजस्व से अधिक न वसूल करें परन्तु यह सम्भव नहीं दिखाई देता कि जमींदार कृषकों से निश्चित भू-राजस्व ही वसूल करते रहे[3]।

भू-राजस्व के अतिरिक्त कृषकों को गाँव के अन्य व्यक्तियों जैसे कि पुजारी, घोबी, बढ़ई, लुहार, नाई, कुम्हार इत्यादि को खलिहान से ही अनाज के रूप में खुराकी तथा कर देना पड़ता था, क्योंकि वे वर्ष भर किसी-न-किसी रूप में उनकी सेवा किया करते थे। इनके उत्पादन का अधिकांश भाग इस भाँति निकल जाता था, शेष भाग में से कुछ वह अगले वर्ष की फसल के लिए अनाज बीज के रूप में रख लिया करते थे। कुछ ही कृषक अतिरिक्त उत्पादन को निकटवर्ती बाजारों में बेचने की स्थिति में हुआ करते थे। इसके अलावा भारतीय कृषक प्रकृति पर निर्भर रहता था। प्राकृतिक प्रकोप उसे सदैव दयनीय स्थिति में रहने के लिए बाध्य कर दिया करते थे। अकाल महामारी तथा अन्य प्रकोपों

---

1 हसन, एस० एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० ८

2 हबीब, इरफान-दि एग्रेरियन सिस्टन आफ मुगल इण्डिया, बम्बई, १९६३, पृ० २३०-३६।

3 वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० १४७-१५१।

के परिणामस्वरूप फसल नष्ट हो जाने से अन्य जनता सामान्य रूप से प्रभावित होती थी परन्तु सबसे विनाशकारी प्रभाव कृषकों के जीवन पर पड़ता था। इस प्रकार के कृषकों का जीवन स्तर उठने नहीं पाता था। उनके उत्पादनों का लाभ अन्य वर्गों को अधिक मिला लेकिन इसके बदले उन्हें उनसे कोई अतिरिक्त लाभ नहीं मिला पाया[1]।

समाज में नैतिकता –

साधारणतया गाँव की जनता आर्थिक रूप से तंग रहते हुए भी ईमानदार और भरोसेमन्द होती थी। गाँव में सामाजिक एकता थी तथा सभी गाँववासी इस काल में एक परिवार के सदस्यों की भाँति रहते थे और एक दूसरे के सुख-दुख में साथ देते थे। ग्रामीण समाज में जातीय बन्धन बहुत कम देखने को मिलता था। केवल खान-पान, विवाह इत्यादि तथा धार्मिक संस्कारों में ही धार्मिक नियम तथा जाति बन्धन का पालन होता था[2]। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जाति के लोग भी निम्न जाति के वृद्ध व्यक्ति को नाम लेकर सम्बोधित नहीं करते थे, बल्कि उन्हें काका, दादा तथा उनकी पत्नियों या वृद्ध महिलाओं को दादी, काकी कहते थे[3]। इसी प्रकार उच्च तथा निम्न जाति के सभी बच्चे आपस में समान रूप से खेलते थे। प्रायः गाँव की स्त्रियाँ अपने गाँव के जमींदार के घरों में भी आती-जाती तथा काम आदि करती थी। गाँव में वृद्ध व्यक्ति का लोग सम्मान करते थे तथा स्त्रियाँ उनसे पर्दा भी करती थी। अन्यथा गाँव के पर्दे का अधिक प्रचलन नहीं था। गाँव में होने वाले हर प्रकार के झगड़ों का निपटारा सभी ग्राम

---

1 हबीब, इरफान-पूर्वोद्धृत, पृ० ११८-११६।

2 श्रीवास्तव, ए० एल०-फर्स्ट टू नवाब्स आफ अवध, आगरा, १६५४ ई० पृ० २५७।

3 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० २५७।

वासी अपनी पंचायत द्वारा या जमींदार के यहाँ जाकर कर लेते थे। जमींदार या पंचायत द्वारा जो फैसला होता था वह सर्वमान्य होता था।

रहन सहन –

भारत में भवनों का निर्माण सदैव से यहाँ की जलवायु दशाओं के अनुरूप किया जाता रहा है। चूँकि सूबा अवध उष्णकटिबन्ध में पड़ता था इसलिए यहाँ के भवन निर्माताओं का यह प्रयत्न रहा कि भवनों में जालीदार खिड़कियों तथा झरोखों को बनाकर अधिक से अधिक प्रकाश और गर्मी से बचाव किया जा सके।

सूबा अवध में उच्च वर्ग के लोगों का आवास (मकान) विस्तृत भू-भाग पर बनाया जाता था। इनमें काफी जगह होती थी। इसे मर्दाना और जनाना दो भागों में निर्मित किया जाता था। जिसमें आगन्तुक के स्वागत के लिए दीवान या बैठक खाना, सोने के लिए शयनकक्ष, रसोईघर, गुसलखाना आदि के अलावा एक विस्तृत आँगन रहता था[1]। मकान बहुत ऊँचे नहीं होते थे, अर्थात् एक मंजिले या दो मंजिले होते थे[2], इसके विपरीत महल सरा एक से अधिक कई मंजिल पर आधारित इमारत होती थी। मकानों की छत मोटी और सपाट होती थी। छत के नीचे मजबूती के लिए शहतीरें लगी होती थी। दुमंजिले मकानों के ऊपरी मंजिल पर प्रायः लम्बे-चौड़े कमरे बने होते थे, जिनमें दोनों और शुद्ध हवा आने-जाने के लिए दरवाजे होते थे[3]। इन मकानों में नक्काशी और सजावट का काम रहता था।

---

1 अशरफ, के० एम०-हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, पृ० २११।

2 इलियट, एच० एम० एवं डाउसन, जे०- हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स, इलाहाबाद, १९६४, भाग-३, पृ० ५७५-५७६।

3 यसीन, मोहम्मद-सोशल हिस्ट्री और इस्लामिक, इण्डिया, पृ० ३५-३६।

मध्यम वर्ग के मकान छोटे और साधारण होते थे। इनमें तीन-चार कमरे, उससे सम्बन्धित कोठरियाँ, दो-तीन दालान आदि होते थे। ऐसे मकानों में एक कमरा बैठक बना दिया जाता था। शेष कमरों में एक कमरा शयन कक्ष, दूसरा बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों के लिए और यदि चौथा कमरा हुआ तो उसे अतिथियों के लिए अलग कर दिया जाता था और कोठरियों का प्रयोग घर का समान आदि रखने के लिए होता था। इन मकानों में नक्काशी, रंग रेगन और सुन्दर बाग-बगीचों का अभाव रहता था।

जो मकान सड़कों के किनारे निर्मित किए जाते थे उनमें नीचे के मंजिल में दुकान के लिए कुछ स्थान आगे की और निकाल दिए जाते थे। भूमितल मकानों के आगे चबूतरा बना रहता था, जहाँ बैठकर छोटे-मोटे दुकानदार अपना व्यवसाय किया करते थे, तथा मित्रों के साथ बात-चीत किया करते थे। खिड़कियों पर पत्थरों की बनी जालियाँ लगी होती थी, जिससे अन्दर का व्यक्ति छिपकर बाहर देख सकता था। छत के साथ लगे बारजे (छज्जे) मकानों की विशेषता थी, इन बारजों से मकानों की दीवारों पर छाता रहता था और धूप तथा वर्षा से उनका बचाव होता रहता था।

शहर तथा गाँवों के निम्न वर्ग एवं निर्धन लोगों के मकानों में कोई विशेष अन्तर न था। इनके मकान कच्ची मिट्टी के बने होते थे। जिस पर बाँस और फूस के छप्परर भी डाले होते थे। गाँवों में एक झोपड़ी ही घर होता था जिसमें खिड़की या अलग से कोई कोठरी नहीं होती थी। कभी-कभी एक झोपड़ी के साथ दूसरी झोपड़ी मिलाकर बड़ा घर और भंडार तैयार करना विशेष महत्त्व की बात समझी जाती थी। झोपड़ी में एक दरवाजा होता था जो हवा और प्रकाश के आने-जाने तथा प्रवेश द्वार का काम करता था[1]। इन मकानों की दीवार, फर्श

---

1 ट्रेवर्नियर, जे० बी०-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० २६२।

मिट्टी तथा गोबर को मिश्रित करके बनाये जाते थे[1]। फर्श को स्वच्छ रखने के लिए प्रायः गाय के गोबर से लीप दिया जाता था। झोपड़ियों को बनाने के लिए वृक्षों की डालियाँ, ताड़पत्र रस्सियों और कई प्रकार के घासों का प्रयोग किया जाता था।

मुगल काल में सूबा अवध की जनता सुख-सुविधा तथा साज-सज्जा के लिए अपने मकानों में अनेक प्रकार की वस्तुओं को उपयोग में लाती थी। यह उनकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता था। उच्च वर्ग के लोग कीमती पलंग के शौकीन थे यह सोने-चाँदी और यहाँ तक कि जवाहरात से सजा होता था[2]। इनका सोफा धातु या बहुमूल्य लकड़ी का बना कालीन युक्त गद्देदार होता था। यह लोग स्टूल या मोढों का उपयोग करते थे जो बेत का बना होता था जिसपर चमड़ा या कपड़ा मढ़ा होता था। कुर्सियों या चौकियों का उपयोग बैठने के लिए करते थे। जिसपर सुन्दर पच्चीकारी होती थी[3]। लकड़ी के सामानों (फर्नीचर) में 'खाट' या चारपाई सबसे लोकप्रिय समान (फर्नीचर) था जिसका उपयोग धनी और साधारण लोग समान रूप से करते थे। साधारण लोग दिन में

मोरलैण्ड डब्ल्यू० एच०- इण्डिया एट द डेथ आफ अकबर, लंदन १९२०, पृ० २७२, श्रीवास्तव ए०एल० अवध के प्रथम दो नवाब, आगरा १९५७, पृ० २७७ श्रीवास्तव, ए० एल०- अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० १९२।

1 पेल्सर्ट, एफ०-जहाँगीर्स इण्डिया, अनुवाद डब्ल्यू० एच० मोरलैंड़ एवं पी० गेल, केम्ब्रिज, १९२५, पृ० ६१।
बर्नियर, एफ०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४६।
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४०-४१।

2 मेजर, आर० एच०-इंण्डिया इन दि फिफ्टींथ सेंचुरी, लंदन, १८५८, पृ० २२, गोस्वामी तुलसीदास ने भी सोने के पलंग का वर्णन किया है। रामचरित मानस, बालकाण्ड, पृ० ३६३, पेल्सर्ट- पूर्वोद्धृत, पृ० ६६

3 वर्मा, एच० सी०- मध्यकालीन भारत, भाग-२, पृ० ४४८।

इस पर बैठकर व लेटकर आराम करते और रात में यह सोने के लिए पलंग बन जाता था। निम्न वर्ग के लोग बैठने या लेटने के लिए चटाई का उपयोग करते थे, जो पुआल या ताड़पत्र आदि से बनी होती थी। गाँव में लोगों के मकानों में बैठने या सोने के लिए चारपाई और चटाई के अतिरिक्त और कोई सामान नहीं होता था[1]।

उच्च वर्ग के लोगों के ओढ़ने तथा बिछावन बड़े कीमती होते थे, जिनमें चादरें तकिए, तोशक आदि सम्मिलित रहता था[2]। जाजिम, शतरंजी और बलूची को फैलाकर रखने का रिवाज था। गोलाकार, गावत किया या मसनद उससमय के सामानों में महत्त्वपूर्ण था, जिसके बिना कोई भी बैठक पूर्ण नहीं समझा जाता था। बैठकखाना सजाने के लिए पर्दे का उपयोग किया जाता था। इस प्रकार इनके घर साज-सामानों से काफी सजे-धजे होते थे[3]।

निम्न तथा निर्धन वर्ग के लोगों के घरों में ओढ़ने तथा बिछौने के नाम पर केवल दो चादरें होती थीं[4]। जिसे गुदड़ी, साथरी, झीनेखेस़ आदि कहा

---

1 वही, पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ४४४, श्रीवास्तव ए०एन० अवध के प्रथम दो नवाब, पृ० २७८

2 तुलसीदास-रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० ३६३।

3 बर्नियर, एफ० - पूर्वोद्धृत, पृ० २४६।
पेल्सर्ट, एफ - पूर्वोद्धृत, पृ० ६६-६७।
ओझा, पी० एन० - पूर्वोद्धृत, पृ० २०-२१।
हुसैन, युसुफ - पूर्वोद्धृत, पृ० १६७।

4 यासीन, मोहम्मद - पूर्वोद्धृत, पृ० ३६-३७।
मोरलैंड, डब्ल्यू० एच० - पूर्वोद्धृत, पृ० २७१।
मनूची, एन० - पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४१-४२।
श्रीवास्तव, ए० एल० - अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० ४१-४२, अवध के प्रथम दो नवाब, पृ० २७८

जाता था। गुदड़ी पुरानी रूई अथवा फटे पुराने कपड़ों को सिलाई द्वारा जोड़कर बनाई गयी चादर होती थी जिसे गरीब वर्ग बिछाने व ओढ़ने दोनों कामों में लाता था[1]। साथरी घासफूँस अथवा कुशा से बनाया गया बिछावन होता था। झीनेखेस मोटी चादर होती थी, जो ओढ़ने के काम आता था[2]। सुसम्पन्न लोग 'इन्द्रकबल' नाम से प्रचलित मूल्यवान कम्बल तथा सरसों के दानों से भरी तकिए का प्रयोग करते थे। यह लोग मच्छरदानी का उपयोग भी करते थे, जो रेशमी पर्दे से बनायी जाती थी।

उस समय गर्मी से बचने के लिए पंखे का उपयोग किया जाता था यह पंखे ताड़पत्र, हाथीदांत, जरी, रेशम, कागज आदि कई चीजों से बनाये जाते थे। साधारण लोग ताड़पत्रों और नारीयल के पत्तों से बने पंखों का उपयोग करते थे। उच्च वर्ग के लोग चमड़े या हाथी दांत के बने बड़े पंखे काम में लाते थे। घरों में झूलने वाले कपड़ों के पंखों का भी चलन था, ये पंखें डोरी में बाँधकर बाहर से खींचे जाते थे[3]।

सामाजिक संस्कार –

किसी प्रदेश के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए उसके संस्कारगत रीति-रिवाज, मान्यताओं और लोक-प्रथाओं का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि इनसे उनके रहन-सहन और सामाजिक व्यवहार पर यथेष्ठ प्रकाश पड़ता है।

चोपड़ा पी० एन० - पूर्वोद्धृत, पृ० ३२-३४।

1 तुलसीदास-रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ० ८६ कवितावली, पृ० १२५, श्रीवास्तव ए०एल० अवध के प्रथम दो नवाब, पृ० २७८

2 तुलसीदास-रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ० ८६-६०।

3 तुलसीदास-रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० ३५७।

जायसी, मलिक मोहम्मद-पद्मावत, पृ० २६६।

प्राचीन काल से ही भारत में अनेक विदेशी जातियों का आगमन हुआ। यहाँ स्थायी रूप से बस जाने के बाद उनकी सभ्यता भारतीय संस्कृति में विलीन हो गई। परन्तु भारत में इस्लाम का प्रवेश एवं मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद भी हिन्दू-मुस्लिम संस्कार, रीति-रिवाज एवं परम्परायें एक-दूसरे में पूर्णरूप से विलीन न हो सकी उनकी विशिष्टताएँ बनी रहीं।

हिन्दू संस्कार –

अवध में हिन्दुओं को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक धार्मिक पवित्रीकरण की क्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता था। इसे संस्कार कहते थे। इससे हिन्दुओं का जीवन शुद्ध एवं परिष्कृत होता था। और उनकी मौलिक एवं आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षाएँ गतिशील हो जाती थीं। यह व्यक्ति को क्रमिक रूप से विकसित करने में सहयोग प्रदान करते थे।

अवध के हिन्दू परिवारों में जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त सोलह संस्कारों का विधान था। यह इस प्रकार थे, गर्भाधान, पुसवन, सीमान्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चुड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास[1]। हिन्दू परिवारों में उपर्युक्त संस्कारों में प्रायः छः या नौं संस्कार किसी न किसी रूप में माने जाते थे। इसमें जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि प्रमुख थे।

---

1 पाण्डेय, राजबली-हिन्दू संस्कार, वाराणसी, संम्वत् ०१४, पृ० ७६-१०४।
मजूमदार, जी० पी०-सम आस्पेक्ट्स आफ इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ० २६५, ४०८, रोहतगी, सरोजनी, अवधी का लोक साहित्य, दिल्ली, १६७१, पृ० १५०

शिशु जन्म के अवसर पर किया गया संस्कार जातकर्म कहलाता था। जन्म के बाद शिशु के मुख में सोने की अंगूठी द्वारा दूध में शहद मिलाकर डाले जाने की प्रथा थी[1]। शिशु जन्म के छठे दिन होने वाले संस्कार को षष्ठी या छठी कहते थे। इस दिन शिशु व माता के स्नानोपरान्त काजल लगाया जाता था। शिशु जन्म के बारहवें दिन नामकरण संस्कार सम्पन्न होता था। शुभ तिथि को देखकर ज्योतिषी द्वारा शिशु का नाम रखा जाता था[2]। प्रायः हिन्दू बालक का नाम देवताओं, नक्षत्रों व धार्मिक स्थनों के नाम से जुड़ा रखा जाता था। बालिकाओं का नाम सुखपूर्वक उच्चारण करने वाला कोमल तथा स्पष्ट अर्थ वाला मनोहर मंगलसूचक, अन्त में दीर्घ अक्षर वाला रखा जाता था[3]। इस प्रकार से बालिकाओं के नाम के अन्त में 'आ' 'दा' लगता था जैसे यशोदा, वसुंधरा, गंगा, नर्मदा, पुष्पा आदि।

ब्राह्मण बालक का नाम मंगलसूचक, क्षत्रिय का बलसूचक, वैश्य का धनसूचक शब्द से युक्त होता था[4]। जादू-टोने या शिशु पर दुष्टात्माओं के प्रभाव से बचने के लिए जन्म तिथि और जन्म की घड़ी तथा जन्म कुन्डली की गणना पर आधारित मूल नाम गुप्त रखे जाते थे[5]। अन्नप्राशन अथवा पसनी संस्कार

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३१७

2 क्रुक विलियम-इस्लाम इन इण्डिया, दिल्ली, १९७२ ई०, पृ० ३५
तुलसीदास-गीतावली, पृ० ६
मनुस्मृति, अनुवाद गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, लखनऊ, १९१७, पृ. २८ जायसी, मलिक मोहम्मद-पद्मावत, पृ० ५२

3 मनुस्मृति, पृ० २६

4 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३४६

5 अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० १८२

प्रायः शिशु जन्म के छः महीने हो जाने पर किया जाता था[1]। इस संस्कार के बाद ही शिशु को कोई ठोस पदार्थ खाने को दिया जाता था[2]। इस अवसर पर शिशु के पास खीर-शहद, घी रखा जाता था जिसे पिता सभी धार्मिक अनुष्ठानों के उपरान्त खिलाता था। शिशु जन्म के एक से तीन वर्ष के अन्दर प्रथम मुण्डन व चूड़ाकरण या चूड़ाकर्म संस्कार किया जाता था[3]। चूड़ा का अर्थ चूण्डी अथवा शिखा है। इस अवसर पर शिशु के सिर पर एक शिखा छोड़कर गर्भकाल के सभी बाल कटवा दिये जाते थे।

हिन्दू समाज में उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार का अत्यधिक महत्त्व था[4]। जिसका सम्बन्ध बालक के बौद्धिक उत्कर्ष से थे। इस संस्कार के बाद ही बालक वर्ग या जाति का पूर्व सदस्य बनता था[5]। उपनयन संस्कार इस बात का प्रमाण था कि बालक का अनियमित और अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर नियमित, गम्भीर और अनुशासित जीवन प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर ब्राह्मण

---

1 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-१ पृ० १६४
श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २०२
अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० १४४
बनारसीदास-अर्धकथानक, पृ० ८, रोहतगी, सरोजनी- पूर्वोद्धृत, पृ० १६६-६८

2 पाण्डेय, राजबली-हिन्दू संस्कार, पृ० १५१-१५२

3 शोभा, सावित्री चन्द्र-१६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज एवं संस्कृति, पृ० १५१।

4 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८८
श्रीवास्तव, ए० एल०- अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २०२
पाण्डेय, राजबली-हिन्दू संस्कार, पृ० ६६-११०, रोहतगी, सरोजनी- पूर्वोद्धृत, पृ० १६८-१७१

5 जहाँगीर-जहाँगीरनामा, हिन्दी अनुवाद बृजरत्नदास, काशी, सम्वत् २०४७ (१६६० ई०), पृ० ३४२-३४३

बालक को पवित्र जनेऊ धारण करवाते थे, और मन्त्र दिया जाता था। इसके बाद उसका विद्याध्ययन प्रारम्भ होता था[1]।

हिन्दू समाज में समस्त संस्कारों में विवाह का महत्त्वपूर्ण स्थान था[2]। जिसकी महत्ता आज भी विद्यमान है। इसके बाद व्यक्ति की नई सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति प्रारम्भ होती थी। हिन्दू परिवारों में इस संस्कार को शीघ्र सम्पन्न करने की चेष्टा की जाती थी। वर-वधु का चुनाव मूलतः माता-पिता के द्वारा किया जाता था। काफी विचार-विमर्श करके शुभ मुहूर्त देखकर, जन्म पत्री का मिलान कर तथा शारीरिक शुभ लक्षणों से सन्तुष्ट होकर वर-वधु के माता-पिता द्वारा विवाह का आयोजन किया जाता था। वर-वधु बहुधा एक ही श्रेणी तथा जाति के होते थे, किन्तु गोत्र अलग होते थे। एक ही गोत्र में विवाह करना हिन्दू नियम के विरुद्ध था[3]। विवाह का आयोजन विभिन्नवर्ग अपनी सामर्थ्यानुसार धूम-धाम से करते थे।

इस काल में प्रत्येक संस्कारों के साथ लोकाचार तथा मंगलकृत्यों का समावेश रहता था। अतः विवाह के अवसर पर प्रत्येक वर्ग तथा जाति के लोगों में मूल सांस्कारिक विधियों के अतिरिक्त अनेकों प्रकार के लोकाचार, कुलाचार, मांगलिक कार्यों एवं रीतियों का पालन होता था। विवाह उत्सव की प्रक्रिया विभिन्न जातियों, वर्गों में अनेक प्रकार से की जाती थी। इसमें सामाजिक एवं

---

1 तुलसीदास-रामचरित मानस, बालकाण्ड, पृ० २०४-२०६।

2 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २०७, भाग-३, पृ० ३०७-३१४।
बदाँयूनी, अब्दुल कादिर-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३१९-३६२
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ०५६-६१, रोहतगी, सरोजनी-पूर्वोद्धृत, पृ०१७२
यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ६४।

3 बाशम, ए० एल०- अद्भुत भारत, अनुवाद वेंकटेश चन्द्र पाण्डेय, आगरा, १९६४, पृ० १३७।

धार्मिक रूढ़िवादिता अधिक पई जाई थी। संस्कारों की रूप- रेखा का हर जगह एक जैसा पालन किया जाता था। विवाह के रस्मों में लग्न, लग्न पत्रिका, बारात, आगवानी, जनवासा, परिछान, ज्यौनार, गारी, विवाहलग्न, सिन्दूरदान, वर-वधु का कोहबर आगमन, गणपति पूजन, हल्दी पूजन, कंगन खोलना, परिग्रहण, दहेज आदि थे[1]। रस्में आज भी हिन्दू-विवाह का आधार हैं।

हिन्दू समाज में अन्तिम संस्कार अन्तयेष्टि कहलाता था। इस संस्कार का बहुत महत्त्व था। क्योंकि इनके यहाँ लोक से परलोक को अधिक मान्यता दी जाती थी। इनमें मुख्य रूप से दाह संस्कार उदकर्म, असौच, अस्थी संचयन, शांतिकर्म और सपिंडिकर्म थे[2]। हिन्दू समाज में तपस्वियों तथा बच्चों का दाह संस्कार वर्जित था[3]। हिन्दू परिवारों में किसी व्यक्ति के मृत्यु के निकट पहुँचने पर या मृत्यु हो जाने पर उसके शरीर को जमीन पर लिटा दिया जाता था, उसका सिर उत्तर की और एवं पैर दक्षिण की और रखते थे तथा मुख मस्तक पर गंगाजल तथा वक्षस्थल पर तुलसीदल रखते थे[4]। कुछ परिवारों में गायदान करने की परम्परा थी। जिसे परलोक यात्रा के लिए महत्त्वपूर्ण समझा जाता

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३३७-३४१
तुलसीदास-रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० १०२-११६, ३०८
सूरदास-सूरसागर, भाग-१, पृ० १६६०, रोहतगी, सरोजनी- पूर्वोद्धृत, पृ० १७२-१६६,जायसी, मलिक मोहम्मद-पद्मावत, पृ० २७४-२८६, बनारसीदास-अर्धकथानक, पृ० ६

2 तुलसीदास-रामचरितमानस, अध्याय-२, पृ० १७०
सूरदास-सूरसागर, भाग-१, पृ० ४६४

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३५५
पाण्डेय राजबली-हिन्दू संस्कार, पृ० ४४३

4 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३५४

था[1]। मृत्यु के बाद शीघ्र ही व्यक्ति को अन्तिम क्रिया के लिए ले जाते थे। शवदाह के बाद असौंच की अवधि शुरु हो जाती थी जो जाति, उम्र, सम्बन्ध आदि के अनुसार एक से दस दिन या महीने तक चलता था। इस अवधि में पूजा, आराधना, वेद-पाठ, बाल, दाढी बनाना आदि वर्जित था। जाति भेद के अनुसार चार से दस दिनों के अन्दर 'संचयन' का कार्य होता था। जिसमें मृतक के अवशेष राख और हड्डियों को एकत्र कर किया जाता था, इसके अपरान्त अस्थियों को दूध में धोकर गंगा या अन्य नदियों के जल में प्रवाहित किया जाता था[2]। पिंडदान सपिंडिकरण श्राद्ध (इसमें मृतक को पितरों से मिलाने की क्रिया की जाती थी) और ब्राह्मण भोजन के बाद मृतक का परिवार शुद्ध माना जाता था। शोक अवधि तेंहरवें दिन समाप्त होती थी। उस दिन सगे-सम्बन्धियों द्वारा मृतक के परिवार के उत्तराधिकारी को चढ़ावा आदि दिया जाता था[3]।

मुस्लिम संस्कार –

मुगलकालीन सूबा अवध के हिन्दू परिवारों के समान मुस्लिम परिवारों में भी विभिन्न संस्कारों का विशेष महत्त्व था। मुस्लिम परिवारों में शिशु जन्म के बाद उसके कान में अज़ान दिलाई जाती थी[4]। शिशु जन्म के छठें दिन 'छट्ठी' संस्कार होता था[5]। इस दिन माता तथा शिशु को स्नान कराकर नये वस्त्र पहनाये जाते तथा अन्य विभिन्न रस्में सम्पन्न की जाती थी। सातवें दिन मुण्डन

---

1 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३५४

2 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३५६-५७

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३५६-५७

4 अली, मीर हसन-आबजर्वेशन आन दि मुसलमान आफ इण्डिया पृ० २१०-२११।

5 बेगम, रेहना- अवध के सामाजिक जीवन का इतिहास, दिल्ली, १९९४, पृ० १८०

संस्कार होता था। इस अवसर पर शिशु को मस्जिद ले जाकर उसके गर्भकाल के बाल उतरवाया जाता था[1]। तथा कुर्बानी किया जाता था इस अवसर पर बालक के लिए दो बकरा तथा बालिका के लिए एक बकरे की कुरबानी (बलि) दिये जाने की प्रथा थी[2]। इसके उपरान्त शिशु का नामकरण संस्कार होता था। मुस्लिम परिवारों में मूर्ति पूजकों द्वारा प्रयुक्त नाम न रखने की सावधानी बरती जाती थी तथा प्रायः अली, अहमद, आरीफ, इकबाल, मोहम्मद आदि नाम रखे जाते थे[3]। 'बिस्मिल्लाह' या मकतब नामक धार्मिक संस्कार बालक के चार वर्ष, चार महीने तथा चार दिन की उम्र प्राप्ति के बाद किया जाता था[4]। इस दिन शिशु अपने शिक्षक से प्रथम बार विद्या ग्रहण करता और उसकी शिक्षा प्रारम्भ होती थी[5]। मुस्लिम परिवारों में 'ख़तना' या सुन्नत बालकों से सम्बन्धित विशुद्ध धार्मिक संस्कार था। साधारणतः यह संस्कार सातवें वर्ष किया जाता था। इस अवसर पर अनेक प्रकार से उत्सवों का आयोजन किया जाता था[6]। सम्राट अकबर ने ख़तने की उम्र बढ़ाकर बारह वर्ष कर दिया था[7]।

---

1 यासीन मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ६३
मनूची, एन-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ७१-७३।

2 श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २०२।

3 यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ६३

4 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० ६३, बेगम रेहना- पूर्वोद्धृत, पृ० १८४

5 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० ६३
अबुल फजल-अकबरनामा, भाग-१, पृ० २७०
अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० १८३, बेगम- रेहना-पूर्वोद्धृत, पृ० १८३-८४

6 यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ६४

7 त्रिपाठी, आर० पी०-मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन, पृ० २२६।

मुस्लिम समाज में विवाह महत्त्वपूर्ण संस्कार था। इस संस्कार को निकाह कहते हैं। हिन्दू समाज की तरह मुस्लिम समाज में भी विवाह शीघ्र सम्पन्न करने की चेष्टा की जाती थी। मुस्लिम परिवारों में विवाहोत्सव का आरम्भ वर के पिता की ओर से संचाक (चार मूल्यवान उपहार तथा मेंहदी) वधू के घर भेजने से आरम्भ होता था[1]। वर-वधु का चुनाव माता-पिता करते थे। जब विवाह सम्बन्ध के लिए दोनों पक्षों में सहमति हो जाती थी, तो सगाई की रस्म पूरी की जाती थी तत् पश्चात् विवाह की तिथि निश्चित की जाती थी। विवाह के पूर्व हिनाबन्दी की रस्म पूर्ण की जाती थी। इस रस्म के अन्तर्गत वर के हाथों को उसके परिवार की महिलाएँ जो सामान्यतः पर्दे में होती थी, मेंहदी से रंग देती थीं[2]। दूल्हा चाहे वह धनी हो या गरीब घोड़े पर सवार होकर मित्रों एवं सगे सम्बन्धियों के साथ वधू के घर जाता था[3]। इसके उपरान्त काजी वर के समक्ष कुरान की कुछ आयतों का उच्चारण करते हुए निकाह पढ़वाता था, इसमें वर के लिए वधु की औपचारिक स्वीकारोक्ति तथा वर के द्वारा नियमानुसार प्रार्थना और मेहर की घोषणा से शादी की रस्म पूरी होती थी[4]। विवाह का यह समारोह वर-वधु के लिए ईश्वर से आशीर्वाद माँगने तथा कुरान शरीफ के पाठ से पूरा होता था। इस काल में वैवाहिक रस्मों को बड़े धूम-धाम से उत्साह पूर्वक सम्पन्न किया जाता था[5]।

---

1 पेल्सर्ट, एफ०-जहाँगीर्स इण्डिया, पृ० ८२

2 श्रवीस्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भा-३, पृ० २०७

3 अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० १६०

4 श्रीवास्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भा-३, पृ० २०७

5 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २८८
बदायूँनी, अब्दुल कादिर -पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३६७
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १३३

अवध के मुस्लिम समाज में अन्तिम संस्कार मृत्यु संस्कार था। किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर क़ाजी दिवंगत व्यक्ति के शव के समीप बैठकर उसकी आत्मा की शान्ति के लिए कुरान का पाठ किया करता था। तत्पश्चात् शव को स्वच्छ सफेद कपड़े मे लपेटकर उसे कब्रिस्तान ले जाकर दफनाया जाता था। मुस्लिम परिवारों में मृत्योपरान्त 'सियूम' अर्थात तीसरे दिन तथा चालीसा के क्रियाओं को विशेष महत्त्व प्रदान किया जाता था[1]। इस दिन सगे-सम्बन्धि एवं मित्रगण दिवंगत आत्मा के शांति के लिए कुरान का पाठ़ पढ़ने के लिए विशाल संख्या में एकत्र होते थे। इस काम में उपस्थित लोगों को अन्त में शरबत तथा पान दिया जाता था[2]। मुस्लिम परिवारों में चालीस दिनों तक शोक मनाने की प्रथा थी जो आज भी है। इस अवधि में नया वस्त्र, साबुन तेल का प्रयोग, संगीत तथा किसी अन्य समारोह में भाग लेना आदि वर्जित था। व्यक्ति के मृत्यु के चालीसवें दिन उसके आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना के समय परिवार के सदस्य, सगे-सम्बन्धी तथ मित्रगण एकत्र होते थे। इस प्रकार मुस्लिम परिवारों में विधि-विधानों से यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था[3]।

अन्ध-विश्वास –

मुगल कालीन अवध के समा में हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही के परिवारों मं अनेक ऐसी रस्में सम्पन्न होती थी जिनका सम्बन्ध धर्म से न होकर अन्ध-विश्वास

---

1 मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भा-३, पृ० १५०, बेगम-रेहना-पूर्वोद्धृत, पृ० १८८-१८६
यासीन मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ६८
श्रीवास्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भा-३, पृ० २०७
अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० १६०
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भा-३, पृ० १५३

2 अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० १६०

3 श्रीवास्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भा-३, पृ० २०७

व रूढिवादिता से होता था। दोनों समुदाय के लोग प्रायः अन्धविश्वासी थे, तथा इनका गण्डे-तावीज, शकुन-अपशकुन, टोना-टोटका आदि में गहरी आस्था थी। दृष्टि दोष या नजर लगने से बचाने तथा छोटे-मोटे रोगों से बचने के लिए लोग प्रायः झाड़ फूँक और टोना-टोटका आदि पर विश्वास करते थे[1]। परिवार की स्त्रियाँ इस विचार से कि बच्चों को बुरी दृष्टि या नजर न लगे उन्हें काजल अथवा मस्सी के टीके लगा देती थी[2]। कुछ परिवारों में बच्चों के गले और पैरों में सोने-चाँदी की जंजीरें तथा ताँबे के तौक डालने के अतिरिक्त शेर के नाखून भी बाँधने का प्रचलन था[3]। जिससे बालक प्रत्येक विपत्ति से सुरक्षित रहे। किसी सगे-सम्बन्धी के दुःखों और कष्टों को अपने ऊपर लेने की प्रक्रिया को बलाए लेना कहा जाता था। साधारणतया हर प्रकार की खुशी के अवसर पर स्त्रियों द्वारा बलाएँ लेने की रस्म सम्पन्न होती थी[4]। बुरी दृष्टि तथा विपत्तियों से बचने के लिए सदका और निछावर उतार कर उस वस्तु को गरीबों तथा निर्धनों में बांटने, रोगी के स्वस्थ होने पर गरीबों को भोजन एवं वस्त्र वितरित करने की परम्परा भी समाज में प्रचलित थी[5]।

अवध में ख्वाज़ा खिज्र की किश्ती के प्रति लोगों की बहुत श्रद्धा थी। यह किश्ती 'शाबान' और हिन्दी के श्रावण मास में निकलती थी। लोगों में ऐसा

---

1 शर्मा, श्रीराम- पूर्वोद्धृत, पृ० ७-८, श्रीवास्तव ए०एल०, कालीन संस्कृति, पृ० २७ तुलसीदास, गीतावली, अध्याय-१, पृ० १२, रोहतगी, सरोजनी-पूर्वोद्धृत, पृ० ५२८-३०

2 तुलसीदास-गीतावजी, पृ० १०-१२

3 अली, मीर हसन-पूर्वोद्धृत, पृ० ३७२

4 रोहतगी, सरोजनी- पूर्वोद्धृत, पृ० ५४८-५५०

5 अली मीर हसन- पूर्वोद्धृत, पृ० १३६, तुलसीदास, दोहावली, अध्याय-२, पृ० ६५,४६६,४६८

विश्वास था कि ख्वाजा खिज्र हज़रत इमाम के दूत हैं। और उन तक फरियादों (प्रार्थना) को पहुँचाते हैं। अतः लोग अपनी अर्जियाँ डालते थे और बड़े धूम-धाम से इस रस्म को सम्पन्न करते थे[1]। इस काल में हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदाय के लोग अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये पीर-फकीर के दरगाहों में मन्नते मांगने जाते तथा गण्डे-तावीज बाँधते थे[2]।

अवध के हिन्दू समुदाय में स्त्रियों में शीतला माता के प्रति अति विश्वास व्याप्तथा। उनका विश्वास था कि परिवार में किसी को चेचक निकलने पर उस समय शीतला माता की विशेष कृपा की भावना रहती हैं। स्त्रियाँ शीतला माता को प्रसन्न करने के लिए पूजा तथा जल आदि चढ़ाती थीं[3]।

इस काल में ज्योतिष विद्या पर लोगों की बड़ी आस्था थी। किसी भी नये काम को प्रारम्भ करने के लिए शुभ मुहूर्त की प्रतिक्षा की जाती थी। हिन्दू लोग नये कार्य को आरम्भ करने के पूर्व ज्योतिषी से परामर्श कर शुभ घड़ी या समय का पता कर कार्य करते थे। मुस्लिम परिवारों में अक्सर ही शिराज़ के हाफिज के ग्रन्थ से फाल निकालते थे[4]। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों समुदायों में सूर्य ग्रहण तथा चन्द्रग्रहण को विशेष महत्त्व दिया जाता था। हिन्दुओं की भाँति मुसलमानों में भी ग्रहण लगने की औपचारिक रूप से घोषणा की जाती थी।

---

1 अली, मीर हसन-पूर्वोद्धृत, पृ० १५४-१५५

2 तुलसीदास-पूर्वोद्धृत, अध्याय-२, पृ० ६५, ४६६, रामचरितमानस, अध्याय-२, पृ० १६७

3 रोहतगी, सरोजनी-अवधी का लोक साहित्य, दिल्ली, १६७१ ई०, पृ० ४६८-६६, उमर, डॉ० मुहम्मद- अट्ठारहवीं सदी में हिन्दुस्तानी मआशरत, दिल्ली, १६७३, पृ० ६६४

4 श्रीवास्तव, ए० एल०-मध्यकालीन संस्कृति, आगरा, १६६३ ई० पृ० २७, रोहतगी, सरोजनी, पूर्वोद्धृत, शर्मा श्रीराम, पूर्वोद्धृत, पृ० ६-१०

लोगों में ऐसा विश्वास था कि गृहण के समय विपत्तियाँ आती हैं अतः लोग इस समय ईश्वर की प्रार्थना करते, मुसलमान आमतौर पर रोज़ा रखते और विशेष नमाज़ पढ़ते थे। इस समय गर्भवती महिलाओं और पशुओं को ग्रहण से सुरक्षित रखने के लिए अन्य रस्में सम्पन्न की जाती थी। ग्रहण के पश्चात् निर्धनों में अनाज, तेल, धन, वस्त्र आदि दान के रूप में वितरित किया जाता था[1]।

खान-पान –

समाज में विभिन्न वर्गों का खान-पान कई बातों जैसे आर्थिक स्थिति, रुचि, जलवायु व उस क्षेत्र में उपलब्ध खाने-पीने की वस्तुओं इत्यादि पर निर्भर करता था। सूबा अवध के उच्च वर्ग में हिन्दू तथा मुसलमानों के भोजन में अनेक प्रकार के व्यंजन होते थे इनकी स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों के प्रति विशेष रुचि थी। हिन्दू सामान्यतः शाकाहारी होते थे, कुछ क्षत्रिय माँस का सेवन करते थे। लेकिन हिन्दुओं में गोमाँस खाना पूर्णरूप से निषिद्ध था[2]। हिन्दुओं के प्रतिदिन के भोजन में गेहूँ या जौ की चपातियाँ, दाल, चावल तथा विभिन्नप्रकार की सब्जियाँ आदि होती थी। सब्जियों को स्वादिस्ट बनाने के लिए बरी, मुगंद्दी, ठरहरी, मिथौरी आदि का प्रयोग किया करते थे। भोजन को तीखा तथा सुपाच्च बनाने के लिए रायता, सिखरन, कांजी, अचार, खटाई आदि का उपयोग करते थे। भोजन के उपरान्त या दिन में कई बार लौंग, इलाइची, कपूर तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों को डालकर तैयार किये गये पेय पदार्थ को पिया जाता था[3]।

---

1 अली, मीर हसन-पूर्वोद्धृत, पृ० १५८-१६१

2 फ्रास्टर, डब्ल्यू (सम्पादक) अर्ली ट्रैवेल्स इन इंडिया, दिल्ली, १९६८ ई०, पृ० १७०।

3 बर्नियर, एफ०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३८१
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४१-४३
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ०२-८, चन्द्र, सावित्री शोभा-पूर्वोद्धृत, पृ० १३७-१३९

हिन्दू शाकाहारी होने से दूध, दही, घी, तेल आदि के तैयार किये गये व्यंजन अधिक पसन्द करते थे। यह चावल के साथ बदाम, किसमिस डालकर बनाया गया 'पुलाव' तथा दूध, चावल, चीनी को साथ पकाकर तैयार की गई खीर विशेष प्रकार का व्यंजन होता था। विशेष अवसरों पर पूरी, कचौड़ी, पिठौरी, माँडे, कौरी, मालपुआ, आटे की लपसी, खजूरी, गिदौरी आदि भोज्य पदार्थ बनाये जाते थे। समृद्ध परिवारों में प्रतिदिन भोजन में इनका उपयोग किया जाता था। हिन्दू मिष्ठान के बड़े शौकीन होते थे यह भोजन के उपरान्त कोई मिष्ठान वस्तु खाना पसन्द करते थे। इस काल में मैदा, आटा, सूजी, में दूध, घी, मक्खन, खोवा, रबडी, दही आदि का मिश्रण कर अनेक रूपों में नाना प्रकार के मिष्ठान बनाये जाते थे। इनमें पूआ, सुहारी, सक्करपारे, फैनी, जलेबी, लवंगलता, लड्डू, इमरती, पेठा-पाक आदि थे[1]।

उच्च वर्ग के मुसलमानों का खान-पान विशिष्ट प्रकार का होता था। इनके भोजन में माँसाहारी तथा शाकाहारी दो प्रकार के व्यंजन होते थे। यह मांसाहारी भोज्य पदार्थ को अधिक पसन्द करते थे तथा विभिन्न पशु एवं पक्षियों के मांस को अनेक प्रकार से पकाते थे। इनके भोजन में गेहूँ या जौ की बनी चपातियाँ, मैदे की बनी नान, दाल, सब्जियाँ इत्यादि थी। माँसाहारी भोजन में कब़ाब, जुर्जबिरयानी, कीमा, पुलाव, भुने हुए मुर्गे, मछलियाँ व माँस के अनेक

चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३६।

1 तुलसीदास-रामचरितमानस, अध्याय-१, पृ० ३३३

तुलसीदास-कवितावली, अध्याय-५, पृ० १४

तुलसीदास-गीतावली, अध्याय-५, पृ० ३७

अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ६२।

प्रकार[1] के व्यंजन इत्यादि होते थे। यह लोग चावल का विशेष रूप से उपयोग करते थे इसे कभी-कभी चीनी के साथ तथा प्रायः माँस के साथ पकाया करते थे[2]। यह मीठे पकवानों में जलेबी, बर्फी, पेड़ा, हलवा तथा शक्कर मिश्रित फलूदा खाने के शौकीन थे। समृद्धशाली मुस्लिम परिवारों में साधारणतया प्रतिदिन के भोजन में पुलाव, मुजाफर, मुतन्जन, शीरमल, सफेदा, रोगनी, कोमरा, कबाब, मुरब्बा, अचार, चटनी, दाल तथा विभिन्न प्रकार के मिष्ठान आदि भोज्य पदार्थों का उपयोग किया जाता था।

समाज के साधारण वर्ग के हिन्दू तथा मुसलमान दोनों की श्रेष्ठ भोज्य पदार्थों में अधिक व्यय करने की स्थिति में नहीं थे। अतः यह साधारण भोजन से ही सन्तोष करते थे। इनका भोजन बहुत ही सादा लेकिन स्वास्थ्य वर्धक होता था। हिन्दुओं के प्रतिदिन के भोजन में दाल, रोटी की प्रमुखता थी तथा मुसलमानों के भोजन में रोटी और माँस आदि सम्मिलित था[3]। इस समय साधारणतया प्रत्येक अमीर तथा गरीब के यहाँ एक-दो गाय या भैंस अवश्य होती थी। जिससे उन्हें दूध, दही, घी प्र्याप्त मात्रा में सरलता से उपलब्ध हो जाता था[4]।

निम्न तथा निर्धन वर्ग के लोगों के प्रतिदिन के भोजन में 'खिचड़ी' मुख्य भोज्य पदार्थ था जो दाल व चावल को मिलाकर एक साथ तैयार किया जाता

---

1 अबुल फजल-अकबरनामा, भाग-२, अनुवादक एच० बेवरिज, कलकत्ता १६४८, पृ० २५१।
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ५

2 रशीद, ए०-पूर्वोद्धृत, पृ० ४७

3 अबुल फजल-अकबरनामा, अनुवादक एच० बेवरिज, कलकत्ता, १६४८ ई० भाग-२, पृ० २५१

4 श्रीवास्तव, हरिशंकर-मुगल शासन प्रणाली, इलाहाबाद, १६८६ ई०, पृ० १६८

था[1]। खिचड़ी में दाल-चावल के साथ सब्जियाँ आदि भी डाल दिया करते थे। जिसमें थोड़ा सा घी डालकर खाते थे। इसके अतिरिक्त मोटे अनाज जैसे चना, मटर, बाजरा आदि खाकर अपना पेट भरते थे[2]।

त्यौहारों तथा विशेष अवसरों पर साधारण वर्ग विशेष कर निम्न वर्ग के लोग विशेष रूप से भोजन का प्रबन्ध करते थे। इस अवसर पर प्रत्येक घरों में स्वादिष्ट तथा कुछ विशिष्ट व्यंजन बनता था जैसे पुलाव, सालन, पराठा, पूरी, कचौरी, मिठाई, जर्दा इत्यादि। अन्यथा प्रतिदिन का भोजन सादा और साधारण होता था। इस काल में सभी वर्गों में मौसमी फलों आम, अंगूर, केला, खरबूजा, तरबूज, नारंगी आदि खाने का चलन था[3]। समाज के समृद्धशाली वर्ग में मेवा जो कि विदेशों से आयात किया जाता था, खाया जाता था।

समाज के विभिन्न वर्गों के लोग भोजन के उपरान्त पान खाने के बड़े शौकीन थे। उच्च तथा समृद्धशाली वर्ग के लोग पान में सुगन्धित मसालों का प्रयोग करते थे[4]।

---

1 बर्नियर, एफ०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४६
डेलावेल, पिट्रा-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ४०६
ट्रेवर्नियर, जे० बी०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० १२४
अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ५६-६०
हबीब, इरफान-पूर्वोद्धृत, पृ० ६१-६४६

2 मोरलैंड, डब्ल्यू एच०-पूर्वोद्धृत, हिन्दी संस्करण, पृ० २७१-२७३
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३३२, भाग-२, पृ० ४१-४६
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १-१७
चोपड़ा पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३२-३४

3 अली, मीर हसन-पूर्वोद्धृत, पृ० १७७-७८

4 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ५६-६०
तुलसीदास-कवितावली, अध्याय-७, पृ० ७३

अवध के हिन्दू तथा मुसलमानों के खाने और पकाने के नियमों (तरीके) में भिन्नता थी। हिन्दुओं का खाना पकाने का स्थान 'चौका' कहलाता था। जिसे विशेष स्वच्छता से रखते थे। साधारणतया चौका में दो बार खाना बनता था। जिसके बाद इसे गाय के गोबर और मिट्टी से लीप दिया जाता था[1]। चौका में कोई चप्पल या जूता पहनकर नहीं जाता था। हिन्दू भोजन करने के पूर्व स्नान करना आवश्यक मानते थे[2]। भोजन करने के पहले धोती या कोपीन छोड़कर अपने सारे वस्त्र उतार देते थे तथा भोजन प्रारम्भ करने के पहले खाने का कुछ अंश भोग लगाया करते थे[3]। उच्च जाति के लोग अपने बर्तन निम्न जाति के लोगों को प्रयोग के लिए नहीं देते थे यदि निम्न जाति का कोई व्यक्ति चौका में प्रवेश कर जाता था तो समस्त भोजन को अशुद्ध माना जाता था। साधारणतः हिन्दू लोग पत्तों से बने पत्तल में ही भोजन करते थे जिसे भोजन के उपरान्त फेंक दिया जाता था।

मुसलमान प्रायः भोजन के सम्बन्ध में अपने धामिक निषेधों को मानते थे जैसे सुअर का माँस या बिना हलाल किए पशु-पक्षियों का माँस खाना पूर्णरूप से वर्जित था। इन नियमों के अतिरिक्त वे अपनी इच्छानुसार कुछ भी कहीं भी, पकाने और खाने के लिए स्वतन्त्र थे। उन्हें सम्भवतः निम्न वर्ग के व्यक्ति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के साथ खाने में शायद ही कोई आपत्ति थी।

---

1 चोपड़ा पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ४२

2 मण्डी, पीटर-दि ट्रैवेल्स आफ पीटर मण्डी इन यूरोप एण्ड एशिया, (सम्पादक) टी० रिचर्ड, लंदन, १९१४ ई०, भाग-२, पृ० ९१,

3 अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २२७

मद्यपान –

मुगल कालीन अवध के हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदायों में मादक वस्तुओं के सेवन का चलन था। हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही धर्मों में मद्यपान का निषेध है[1]। किन्तु दोनों समुदायों के विभिन्न वर्गों के द्वारा इसका सेवन किया जाता रहा। इसमें मुख्य रूप से शराब, भाँग, अफ़ीम, तम्बाकू आदि थे। त्यौहारों, सार्वजनिक समारोह तथा मित्र गोष्ठियों में लोग सामूहिक रूप से शराब पीते थे। किसी शत्रु पर विजय के उपरान्त खुशी के अवसर पर सैनिक तथा मित्रगणों को शराब पिलाया जाता था[2]। इस काल में विभिन्न प्रकार की शराब बनायी जाती थी। सबसे मुख्य और सस्ती शराब 'ताड़ी' थी जिसे नारियल या खजूर से बनाया जाता था, स्वादिष्ट होने से समपूर्ण सूबे में लोग इसे रूचि के साथ पीते थे। अंगूर, चावल, अनान्नास, महवा, खेरा आदि से भी शराब बनाया जाता था। मुगल काल में शराब बाजारों, कैंपों या अमीरों के घर में आसानी से उपलब्ध हो जाती थी और खुले रूप से इसका इस्तेमाल किया जाता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था[3]।

नशीले पदार्थों में 'भाँग' का प्रयोग विभिन्न वर्गों के लोग करते थे, इसे जायफल और सावित्री में मिलाकर भी लोग खाते या पीते थे। उच्च वर्ग के लोग इसमें कपूर, अंबर, मुश्क आदि मिलाकर पीते थे। इसका सेवन करने के उपरान्त व्यक्ति आवश्यकता एवं शक्ति से अधिक परिश्रम कर सकता था। यह

---

1 श्रीवास्तव, ए० एल०-मध्यालीन संस्कृति, पृ० २७
तुलसीदास-रामचरितमानस, अध्याय-१, पृ० २६, दोहावली, पृ० ३५१।

2 सरकार, जे० एन०-स्टडीस इन मुगल इण्डिया, कलकत्ता, १६१६ ई०, पृ० ३१५

3 सरकार, जे० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३५८-३५६

मनुष्य को सदैव प्रसन्न मुद्रा में रखती थी। हिन्दुओं में इसका प्रचलन अधिक था[1]।

अफ़ीम तथा 'तम्बाकू' का सेवन हिन्दू तथा मुसलमान समान रूप से करते थे। कुछ लोग प्रतिदिन थोड़ी मात्रा में अफीम लेते थे। क्षत्रिय लोग इसका अधिक मात्रा में प्रयोग अपनी वीरता दिखाने के लिए करते थे[2]। तम्बाकू के सेवन का प्रचलन पुर्तगालियों के प्रभाव से १७वीं शताब्दी में विशेषरूप से बढ़ गया था। इसे हुक्के और नलियों द्वारा पिया जाता था। इस काल में मादक वस्तुओं के सेवन को सर्वसाधारण में बुरा माना जाता रहा और इसके प्रयोग को पागलपन का प्रतीक समझा जाता था[3]।

वेशभूषा –

अवध के उच्च वर्ग व समृद्धशाली मध्यम वर्ग के हिन्दू तथा मुसलमानों के वेशभूषा में अधिक भिन्नता नहीं थी। पुरुषों की वेशभूषा में कमीज़ के ऊपर लम्बा कोट (काबा), चुस्त चूड़ीदार पायजामा या शलवार, कमर के ऊपर पटुका (कमरबन्द), सिर पर पगड़ी या टोपी तथा पैरों में जूते पहनते थे[4]। हिन्दू काबा का बन्द बायीं और तथा मुस्लिम दाहिने और बाँधते थे।

---

1 सरकार, जे० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३६१

2 बर्नियर, एफ०-पूर्वोद्धृत, पृ० १६१-१६२

3 चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ४५

4 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ८०-६०
बदाँयुनी, अब्दुल कादिर-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० २६८
मनूची, एन-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३८-३६
रशीद, ए०-पूर्वोद्धृत, पृ० ५३
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४

समृद्धशाली हिन्दू परिवार के पुरुषों में धोती व बण्डी पहन्ने का चलन था। यह कमर में पटुका बाँधते थे तथा कन्धे पर चादर या शाल डाले रहते थे[1]। शीत ऋतु में विभिन्न किस्मों व रंगों की शाल ओढ़ने का चलन था। दोनों समुदाय के लोग पगड़ी या टोपी धारण करते थे। उस काल में पगडी या टोपी• का बहुत महत्त्व तथा सम्मान था। हिन्दुओं की पगड़ी रंग बिरंगी सीधी और थोड़ी ऊँची होती थी। मुसलमानों में भी रंगीन पगड़ी का प्रचलन था लेकिन अधिकतर लोग सफेद पगड़ी ही पहनते थे[2]। इस क्षेत्र में अत्यधिक गर्मी पड़ने के कारण मोजे पहन्ने का चलन नहीं था। उच्च्व व मध्यम वर्ग के लोग जूते-जूतियाँ पहनते थे, जो कि तुर्की जूते-जूतियों की भाँति आगे से नुकीली तथा ऊपरी भाग खुला हुआ रहता था। इसे पहन्ने और उतारने में सुविधा होती थी इनकी एड़ी ऊँची व नीची दोनों प्रकार की होती थी। इन जूतों में प्रायः जरी से कढ़ाई किया जाता था कभी-कभी रत्न जड़ित भी होते थे[3]।

---

1 श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० ११६
यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० १३३
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४०-४१
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३३

• सूरदास ने पगड़ी के संदर्भ में पाग, 'पगा' अथवा 'पगिया' शब्द का प्रयोग किया है। तथा टोपी को 'कुलही' तथा 'कुलिहया' दोनों शब्दों से सम्बोधित किया है। सूरसागर, भाग-१, पृ०, भाग-२, पृ० १६६३
तुलसीदास ने पगड़ी को पगिया तथा टोपी को कुलही कहा है। गीतावली, अध्याय-१, पृ० ३१-४४।

2 गनी, नजमुल-तारीख-ए-अवध, भाग-२, पृ० ४, ७६।

3 बर्नियर, एफ-पूर्वोद्धृत, पृ० १७४-१७७
तुलसीदास-रामचरितमानस, अध्याय-२, पृ० ३१६, गीतावली-पृ० ४३-४४।

साधारण जनता उत्तम प्रकार के परिधानों में अधिक व्यय करने की स्थिति में नहीं थी अतः इनकी वेशभूषा सादी व साधारण थी। साधारण मुसलमान लम्बा कुर्ता व पायजामा या शलवार, सिर में सादी टोपी पहनते थे। हिन्दू सूती धोती व बण्डी पहना करते थे। अपने निजी जीवन में वे लुंगी व लंगोटी का भी प्रयोग किया करते थे। निम्न वर्ग के लोगों की कोई निश्चित वेशभूषा न थी। निर्धन मुसलमान बहुमूल्य तथा रंग बिरंगे वस्त्रों को न पहनकर सादे वस्त्रों को ही पहनते और अपना शरीर ढ़ँकते थे[1]। इस वर्ग के लोगों की वेशभूषा में लुंगी प्रमुख थी। निम्न वर्ग के हिन्दू लंगोटा पहनते थे। बाबर ने भी अपनी आत्मकथा में तत्कालीन वेशभूषा का वर्णन करते हुए लिखा है कि "हिन्दुस्तानी लंगोटा नामक वस्त्र पहना करते थे"[2]। एक धोती से ही अपना तन ढकते थे। जो कि घुटने तक होती थी। कभी-कभी वे कन्धे पर छोटी चादर भी डाल लिया करते थे। जो कि रात में बिछाने के काम आती थी। यह लोग धूप तथा शीत से बचने के लिए सिर पर पगड़ी धारण करते थे। निर्धन लोग अपने शरीर से तब तक वस्त्र नहीं अतार पाते थे जब तक वह फट नहीं जाते थे[3]।

गर्म देश होने के कारण भारत के गाँव में तथा निम्न वर्ग के लोग बहुत कम कपड़े का उपयोग करते थे तथा उनके शरीर का अधिकांश भाग खुला रहता था। ऐसा केवल उनकी निर्धनता या आर्थिक विपन्नता के कारण नहीं था। वरन् कुछ यहाँ की ऋतु और जलवायु का भी परिणाम था। इसी कारण उच्च

---

1 अशरफ, के० एम०-लाइफ एण्ड कण्डीशन आफ दि पिपुल आफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, १९७० ई०, पृ० १७५।

2 बाबर-बाबरनामा, भाग-२, अनुवादक ए० एस० बेवरिज, दिल्ली, १९७० ई०, पृ० ५१९।

3 चोपड़ा पी० एन०, पूर्वोद्धृत, पृ० ८

वर्ग के लोग मूल्यवान, मंहगे तथा भारी वस्त्रों के स्थान पर गर्मी के दिनों में बहुत हल्के और बारीक कपड़ों का प्रयोग करते थे।

शीत ऋतु में उच्च वर्ग के लोग कमीज या अंगरखे के ऊपर 'दगला' (ओवर कोट) नामक लबादा पहनते थे। साधारण वर्ग के लोग सूती कोट पहनते थे जिसमें रूई भरा होता था। यह काफी टिकाऊ होता था। शीत से बचने के लिए रूई भरी टोपी पहना जाता था[1]।

अन्य सामाजिक वर्गों में ब्राह्मण और साधू अपने सार्वजनिक वेशभूषा के लिए प्रसिद्ध थे। सूबा अवध के ब्राह्मण लोग 'मस्तक' पर तिलक लगाया करते थे और पैरों में खड़ाऊ पहनते थे। साधु व सन्त जन चोलना या 'कथा' पहनते थे[2]। यह ढ़ीला ढाला लम्बा कुर्ता नुमा होता था जो प्रायः आज भी सन्त जनों द्वारा पहना जाता है। योगियों के कमर पर एक छोटी लंगोटी ही यथेष्ट थी। सूफी सन्त खिरका जिसमें अनेक पैबंद लगे होते थे तथा फटे-पुराने कपड़े पहना करते थे। यह शरीर पर बिना सिला कपड़े का लम्बा टुकड़ा लपेट लेते थे। पैरों में काष्ट की चट्टी (चप्पल) तथा सिर पर दरवेश टोपी पहना करते थे। उलेमा वर्ग बड़े-बड़े सफेद साफों, पगड़ी तथा लम्बे बाँह वाले कुर्ता से अलग ही पहचाने जा सकते थे[3]।

स्त्रियों की वेशभूषा –

अवध के हिन्दू तथा मुस्लिम समुदायों के स्त्रियों की वेशभूषा में स्पष्टतया भेद था। उच्च वर्ग की हिन्दू स्त्रियों की वेशभूषा साड़ी व धोती,

---

1 मोलैण्ड, डब्ल्यू० एच०-इण्डिया ऐट दी डेथ आफ अकबर, पृ० २७५-७६

2 सूरदास-सूरसागर, भाग-१, पृ० १५३
दादूदयाल की वाणी, भाग-१, पृ० १५४६

3 श्रीवास्तव, ए० एल०-मध्यकालीन संस्कृति, पृ० २७।

अंगिया, ओढ़नी थी। अधिकांश स्त्रियाँ रंगीन साड़ी या धोती कमर में बाँधती थीं। जिसका आधा भाग उनके ऊपरी शरीर को ढके रखता था[1]। समृद्धशाली हिन्दू परिवारों में लहंगा, दुपट्टे, शलवार या लम्बी कुर्ती धाधरा आदि का भी प्रचलन था[2]। मुस्लिम स्त्रियों के परिधानों में तंग मोहरी का पायजामा, अंगिया तथा एक विशेष प्रकार की कुर्ती (जिसमें आसतीन नहीं होता था) थी। इसके अलावा कुर्ती-शलवार कलीदार तथा कोटी का भी प्रचलन था। इसके ऊपर तीन गज का चुना दुपट्टा सिर पर ओढ़ा जाता था[3]। दुपट्टा तथा ओढ़नी में अन्तर होता था। ओढ़नी की अपेक्षा दुपट्टा छोटा होता था। जिसे विवाह से पूर्व तक लड़कियाँ ओढ़ती थी। विवाह के पश्चात् स्त्रियाँ ओढ़नी ओढती थीं, जो दो हाथ दो बालिश्त चौड़ा और तीन बालिश्त लम्बा होता था।

साधारण वर्ग की हिन्दू स्त्रियाँ मोटी सूती साड़ी या धोती व अंगिया पहनती थी तथा मुस्लिम स्त्रियाँ कुर्ती-पायजामा व ओढ़नी आदि पहनती थी। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ एक ही धोती से अपने सम्पूर्ण शरीर को कमर के ऊपर से नीचे ढकी रहती थी। ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियाँ चोली व अंगिया का प्रयोग कम

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३ पृ० ३४२
हुसैन, युसुफ-पूर्वोद्धृत, पृ० १३३
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३३
चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ११

2 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ६६, भाग-२, पृ० ३४२
मनुची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३४१
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३३
चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ११

3 डीलिट जोन्स-पूर्वोद्धृत, पृ० ८०-८१
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३६

करती थीं। उच्च वर्ग की स्त्रियों में घर के बाहर जूतियाँ या चप्पलें पहन्ने का चलन था। इनमें कफ्शी जूतियों का अधिक प्रचलन था[1]।

उच्च वर्ग के लोगों के वस्त्रों की बनावट में सुन्दरता का विशेष ध्यान दिया जाता था। इस काल में वस्त्र उद्योग के विकास तथा देश के विभिन्न भागों में सैकड़ों किस्म के वस्त्र के निर्माण से स्त्रियों में अनेक प्रकार के नये परिधानों का चलन बढ़ रहा था। नूरजहाँ ने नये-नये चलन (फैशन) के परिधानों का निर्माण किया इनमें नूर-महली, दुदामी, पंचतोलिया, फर्स-ए-चाँदनी, कैनारी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय थे[2]।

उच्च वर्ग के परिधान उत्तम प्रकार के बहुमूल्य कपड़ों जैसे मलमल, तनजेब, शरबती, सिल्क, कमख्वाब, रेशम, किनारी, मखमल आदि से तैयार किया जाता था[3]। साधारण जनता के वस्त्रों में मोटे कपड़े जैसे गिमटी, गाजी, लाही, डोरिया आदि का प्रयोग किया जाता था।

आभूषण –

स्त्रियों की एक प्रमुख विशेषता रही है कि उनकी अभिरुचि सदैव अपने आपको आभूषणों से आभूषित करने की और रही। वे आभूषणों के लिए अपनी अन्य आवश्यकताओं को तिरस्कृत करती हैं, किन्तु उनके लिए आभूषण रहित

---

1 अली, मीर हसन-पूर्वोद्धृत, पृ० ६०-६३

2 प्रसाद, बेनी-हिस्ट्री आफ जहाँगीर, इलाहाबाद, १९६२, पृ० १८३
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३७-३८
चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १४

3 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ६३-६४
चोपड़ा पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ३
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४
यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ३८-३९

रहना अप्रिय है। सूबा अवध में स्त्रियों का आभूषणों के प्रति अनुराग था। कोई स्त्री आभूषण रहित तब होती थी जब वह विधवा हो जाती थी। स्त्रियाँ अपने बाल्यकाल में ही आभूषणों को पहन्ने के लिए अपने कान, नाक छिदवाँ लेती थी। प्रत्येक माता-पिता अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार सोने, चाँदी, पीतल के आभूषण अपनी कन्या को पहनाते थे[1]। विभिन्न वर्गों की स्त्रियों के आभूषणों के आकार, प्रकार, स्वरूप और संख्या में अन्तर होता था। यह उनकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता था।

नाक में नथ पहनाने का प्रचलन हिन्दुओं में विशेष रूप से प्रचलित था। यह बहुत महत्त्वपूर्ण आभूषण था और सुहाग का चिन्ह समझा जाता था। हिन्दू-मुस्लिम के आपसी मेल-जोल के कारण नथ का प्रचलन मुस्लिम स्त्रियों में भी हो गया था। ग्रामीण क्षेत्रों की स्त्रियाँ चार-चार, पाँच-पाँच तोले की नथ पहना करती थीं। नाक में पहने जाने वाले अन्य आभूषणों में नथुनी, बुलाक व फुल्ली थे[2]।

नथ के अतिरिक्त अन्य आभूषणों में कान में कर्णफूल, तरकी, तांटक, तरयौना, चम्पाकली आदि थे। माथे पर शीश फूल की शोभा थी। 'आड' का भी प्रचलन था[3]। सिर पर सिंगार पट्टी तथा गले या कण्ठ में विभिन्न प्रकार की

---

1 श्रीवास्तव अशोक कुमार, हिन्दू सोसाइटी इन द सिक्सटींथ सेन्चुरी, अध्याय-७

2 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३४४, ओझा, पी० एन-पूर्वोद्धृत, पृ० ५५, चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० २६, श्रीवास्तव अशोक कुमार, पूर्वोद्धृत, अध्याय-७, लालदास-अवध विलास, सम्पादक चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, बाँदा, १९८५, पृ० ३६५-३६६।

3 शुक्ल रामचन्द्र (सम्पादक) जायसी ग्रन्थावली, लखनऊ सम्वत् २०१३, पृ० ११०, १६३।

मालाएँ पहनी जाती थी। कण्ठ से सटा हुआ कण्ठाहार जिसे कंठश्री भी कहा जाता था। ह्रदय तक लटकती हुई माला जिसमें वर्तुलाकार रत्न जड़ित होता था। जिसे चौकी कहा जाता था। तीसरी माला कमर तक लटकती हुई होती थी जो एक लड़ी, दुलड़ी, अथवा तिलड़ी तक होती थी[1]। इसके अतिरिक्त हाथों की सजावट के लिए स्त्रियाँ कंगन व चूडियाँ, भुजाओं में बाजुबंद और टाड, उंगलियों में अंगूठियाँ तथा कमर को फुदीदार नीबी, किंकिनी, पेटी आदि से आभूषित करती थी[2]। स्त्रियाँ अपने पैरों को भी आभूषण रहित नहीं रखती थी। पैरों में पायल, घुँघरू तथा उंगुलियों में बिछुवा धारण करती थी[3]।

पुरुषों में आभूषण पहन्ने का चलन था। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में इसका प्रचलन कम था। यह केवल गले में ताबीज और कवच पहनते थे। हिन्दुओं में विशेषकर उच्च वर्ग के पुरुष कानों में कुण्डल, गले में हार या मालाएं, उंगुलियों में अंगूठी व भुजाओं में बाजूबन्द व कमर में कमरपेटी धारण करते थे[4]। इसके अतिरिक्त अन्य वर्गों में आभूषण धारण करने का कोई विशेष चलन नहीं था।

---

1 शुक्ल, रामचन्द्र (सम्पादक) जायसी ग्रन्थवली, लखनऊ, सम्वत् २०१३, पृ० ११०, ११३, श्रीवास्तव अशोक कुमार, पूर्वोद्धृत, अध्याय-७

2 वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ११०, १६४, अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३४३-३४५, चोपड़ा पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० २७-२८, श्रीवास्तव अशोक कुमार, पूर्वोद्धृत, अध्याय-७

3 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३४३-३४४, श्रीवास्तव अशोक कुमार, पूर्वोद्धृत, अध्याय-७

4 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३४१-३४२, मनूची एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३७६, बर्नियर, एफ०-पूर्वोद्धृत, पृ० २२४, तुलसीदास-कवितावली, पृ० ३, रामचरितमानस, अध्याय-१, पृ० ३०४।

उच्च वर्ग के स्त्री-पुरुषों के आभूषण सोने-चाँदी के बहुमूल्य रत्नों से जड़ित होते थे। साधारण वर्ग के स्त्रियों के आभूषण सोने-चाँदी के सादे बनते थे। निम्न तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अधिकतर चाँदी और पीतल के आभूषणों का प्रयोग करते थे। इस काल में आभूषण गढ़ने वालों को ज़रनिशान, कोफ्तगार, मीनाकार, सराहकार, सिम्बाफ, सवादकर, जरकोब आदि कहा जाता था[1]।

सौन्दर्य प्रसाधन –

अवध में उच्च वर्ग के स्त्री एवं पुरुष अपने सौंदर्य वृद्धि तथा आयु छिपाने के लिए विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग किया करते थे। स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों जैसे काजल, मिस्सी, मेंहरी, लाख, गाजा, श्वेतपाउडर, आलता, इत्र, कंघी, चोटी, आईना इत्यादि का प्रयोग करती थी[2]। समकालीन साहित्यों में विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों का उल्लेख मिलता है[3]। स्त्रियाँ स्नान से पूर्व शरीर पर सुगन्धित उबटन लगा कर नहाने के

---

1 हुसैन, युसुफ-पूर्वोद्धृत, पृ० १३४

2 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३४२-३४३
श्रीवास्तव, ए० एल-पुर्वोदृत, भाग-३, पृ० १६६

3 गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में सोलह श्रृगार को 'नवसप्त' शृंगार के रूप में वर्णन किया है। जिसमें उबटन, मज्जन, मिस्सी, स्नान, सुबसन, केश विन्यास, अंजन, मांग में सिन्दूर, आलता (महावर), मेंहदी, ठोठी पर तिल लगाना, आभूषण, फूलों की माला तथा पान खाना आदि सम्मिलित था। रामचरितमानस, अध्याय-१, पृ० २४८-३२२
कवि लालदास ने अपनी रचना में स्त्रियों के सोलह शृंगार का वर्णन किया है जिसमें मज्ज़न (स्नान) वसन (चीर) अंजन् तिलक, चंदन, पुहूपमाल (पुष्पमाला), हार, कुंडल, ताम्बूल, नकबेसरि, अंगिया, (कंचुक), कंकण, वलम,

पानी में सुगन्धित इत्र डालकर स्नान करती थी। तदुपरान्त, केश सज्जा करना, टिकुली व बिन्दी लगाना, शरीर पर इत्र मलना, जूड़े में बनफूल की बेड़ी लगाना, होठों में रंग लगाना, पान खाना, आँखों में काजल या सुरमा इत्यादि सौन्दर्य वृद्धि के लिए अनिवार्य थे। हिन्दुओं में विवाहित स्त्रियाँ माँग में सिन्दूर लगाना शुभ मानती थी[1]। स्त्रियाँ पैरों में आलता (लाल रंग) व हाथों में मेंहदी लगाया करती थी और हाथों की हथेलियों पर बड़ी कुशलता से मेंहदी के बेल-बूटे बनाए जाते थे। नाखूनों पर भी मेंहदी की लाली होती थी। जन-साधारण वर्ग की स्त्रियों में भी श्रृंगार के प्रति विशेष रुचि थी। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ परिवार की आय के अनुसार सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करती थी। परन्तु बन संवर कर रहना उनकी स्वाभाविक प्रकृति थी। हिन्दू स्त्रियाँ अपने केश पीछे की और बाँधती थी। बहुधा ये अपनी केश राशि को सिर के ऊपर शंक्वाकार गूंथ कर उनमें सोने-चाँदी के कांटे लगा लेती थी।

इस काल में पुरुषों में भी श्रृंगार के प्रति रुचि थी। यह विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग न केवल अपनी आयु को छिपाने वरन् सौन्दर्य वृद्धि के लिए किया करते थे। बालों में तेल लगाना या बालों में खिजाब लगाकर उन्हें काला बनाये रखने का पुरुषों में चलन था। कंघी करना, सुगन्धित इत्रों को कपड़ों पर लगाना, पान खाने का पुरुषों में आम रिवाज था।

त्यौहार तथा मनोरंजन –

सार्वभौमिक एकता की भावना तथा सांस्कृतिक जागरूकता को बनाए रखने के लिए जन-साधारण द्वारा सामूहिक रूप से विभिन्न त्यौहारों का

किंकिवी, नूपुर और वेणी आदि थे। अवध विलास, सम्पादक चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, पृ० २२६-३४

1 तुलसीदास-रामचरितमानस, पृ० २४८-३२२

आयोजन प्राचीन काल से होता आ रहा है। सूबा अवध का हिन्दू तथा मुस्लिम समाज धर्म प्रधान होने से दोनों समुदायों के लोग अपने धार्मिक परम्पराओं के अनुसार त्यौहारों को मनाया करते थे।

हिन्दुओं के त्यौहार प्राचीन कथाओं के साथ विभिन्न ऋतुओं से सम्बन्धित थे यह कृषकों के विश्राम ऋतु से मेल खाते थे। इन त्यौहारों को आन्नद एवं उत्साह पूर्वक नृत्य लोक धुनों के साथ मनाया जाता था। हिन्दुओं के प्रमुख त्यौहार बसन्त पंचमी, शिवरात्री, होली, दशहरा दीपावली रामनवमी आदि प्रमुख थे।

'बसन्तपंचमी' का पर्व माद्यमास के शुक्लपक्ष की पंचमी को बसन्त ऋतु के आगमन में मनाया जाता था। इस अवसर पर देवी सरस्वती की आराधना की जाती थी। इस दिन किसान नये अन्न, जौ और गेहूँ की बाली भूनकर घी और गुड़ मिलाकर खाते थे जिसे 'उमी' कहते थे। यह पर्व अबीर-गुलाल बिखेर कर मनाये जाने के लिए प्रसिद्ध था[1]।

शिवरात्री का त्यौहार अवध क्षेत्र में बड़े धार्मिक उल्लास के साथ मनाया जाता था। इस दिन स्त्री-पुरुष आक, धतूरा, बेलपत्र व सिन्दूर आदि से शिव लिंग की पूजा-आराधना करते थे। अधिक गम्भीर धार्मिक मनोवृत्ति के लोग रात्रि जागरण कर भजन कीर्तन करते थे[2]।

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-उकबरी, भाग-३, पृ० ३५३, जायसी, मलिक मोहम्मद-पद्मावत, पृ० ४१७-४२७, चोपडा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ६५, ओझा, पी० एन-पूर्वोद्धृत, पृ० ७६, रोहतगी, सरोजनी, पूर्वोद्धृत, पृ० ४७०-७६

2 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३५३-३५४, जहाँगीर-तुजुके-ए-जहाँगीर, भाग-१, पृ० ३६१, चोपडा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ८४, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ८५, बेगम रेहना- पूर्वोद्धृत, पृ० २६५

'होली' हिन्दू समुदाय के सभी वर्गों का अत्यन्त लोकप्रिय त्यौहार था। फाल्गुन के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को होलिकादहन कर मनाया जाता था। होलिकादहन तथा पूजन के पश्चात् दूसरे दिन प्रातः अबीर, गुलाल, कुमकुम तथा पिचकारी में रंग भर कर होली खेली जाती थी। इसमें स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्ध सभी उन्मुक्त हृदय से सम्मिलित होते थे। इस अवसर पर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, पारस्परिक भेद-भाव भूलकर अद्‌भुत मादकता एवं रसिकता से भर जाते थे[1]। अनेक स्थानों पर संगीत, स्वांग, तमाशों आदि का आयोजन किया जाता था।

चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की नवमी को 'रामनवमी' का त्यौहार राजा रामचन्द्र (ईश्वर का अवतार माने जाने वाले) के जन्म दिन के उपलक्ष्य में मनाया जाता था[2]। श्रावण महीने की शुक्ल पक्ष की पाँचवीं तिथि को 'नागपंचमी' का त्यौहार मनाया जाता था। इस दिन अवध क्षेत्र में नाग की पूजा की जाती थी[3]।

'रक्षाबन्धन' का त्यौहार श्रावण की पूर्णिमा को मनाया जाता था। हिन्दुओं में इस पर्व को विशेष महत्त्व दिया जाता था। यह विशेषतः भाई-बहन का

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३५३, भाग-२, १७३
जहाँगीर, पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० २४५,
तुलसीदास-गीतावली, अध्याय-७, पृ० २१-२२
ओझा, पी० एन० पुर्वोदृत, पृ० ८०,
चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, ६५-६६

2 अबुल फजल, पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३५०, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, ८१, चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ६६, रोहतगी सरोजनी-पूर्वोद्धृत

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३५१,
रोहतगी सरोजनी-पूर्वोद्धृत, पृ० ४७४

त्यौहार था[1] जो उनके बीच सम्बन्धों को सुदृढ बनाता है। इस अवसर पर बहन-भाई की कलाई पर राखी बाँधकर उनके लिए शुभ कामना की प्रार्थना करती थी तथा भाई बहन की रक्षा का संकल्प करता था। पुरोहित लोग अपने यजमानों की दायीं कलाई में राखी बाँधते और दान आदि प्राप्त करते थे। सम्राट जहाँगीर इस पर्व को 'निगाहदश्त' कहा करता था[2]। सम्राट अकबर रक्षा बन्धन के त्यौहार में विशेष रुचि लेता था और अपने हाथों में राखी बंधवाता था[3]। भादो मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को श्री कृष्ण के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता था[4]।

'दशहरा' अश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को विजय सूचक मानकर इस तिथि को प्राचीन काल से भारत मेंविजय दशमी के रूप में मनाया जाता था[5]। हिन्दुओं का ऐसा विश्वास था कि इसी दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी। यह क्षत्रियों और कृषक वर्गों का लोकप्रिय त्यौहार था। शक्ति के उपासक देवी दुर्गा की पूजा करते थे। इस अवसर पर सूबा अवध के नगरों तथा गाँवों में रामलीला का आयोजन किया जाता था।

'दीपावली' का त्यौहार हिन्दुओं में बड़े हर्ष और उल्लास के साथ बनाया जाता था[6]। इसका धार्मिक और सामाजिक दोनों दृष्टि से विशेष महत्त्व था।

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३५१।

2 जहाँगीर-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० २२४

3 बदाँयुनी, अब्दुल कादिर-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३६१-३६२

4 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, ३५२।

5 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३५४

6 वही, -पूर्वोद्धृत, भाग-१ पृ० २१०
जहाँगीर-पूर्वोद्धृत, भाग-१ पृ० ३४५
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ८१

इस अवसर पर घरों की सफाई पुताई आदि की जाती थी। यह विविध रूप से पाँच दिनों तक मनाया जाने वाला पर्वोत्सव था। धनतेरस, रूप चतुर्दशी (नरकाचौदस) अथवा छोटी दीपावली, दीपावली, अन्नकूटोत्सव तथा भैयादूज। दीपावली के दिन गणेश-लक्ष्मी की पूजा की जाती थी तत्पश्चात् दीप पंक्तियों से घर के प्रत्येक भाग को प्रकाशित किया जाता था[1]। कुछ लोग आतिशबाजी भी किया करते थे। यह वैश्यों व व्यापारी वर्ग का लोकप्रिय त्यौहार था। इस अवसर पर कुछ लोगों में जुआ खेलने का भी प्रचलन था। व्यक्ति आगामी वर्ष के लिए अपने भाग्य का शकुन विचारने के लिए उत्सुक रहता था अतः भाग्य आजमाने के लिए जादुई साधन के रूप में जुआ खेलते थे[2]।

अवध में मुसलमानों के प्रमुख त्यौहारों में ईद-उल-फितर, ईद-उल-जुहाँ, शब-ए-बरात, मुहर्रम तथा नौ रोज लोकप्रिय त्यौार थे। इन त्यौहार को मनाने का उद्देश्य धार्मिक था। परन्तु लौकिक दृष्टि से केवल मुहर्रम को छोड़कर जिसमें शोक मनाया जाता था, अन्य सभी त्यौहार मनोरंजन के साधन भी थे।

ईद-उल-फितर रमजान की लम्बी उपवास अवधि के बाद आता था[3]। मुगल काल में इसकी घोषणा तोप दाग कर या बिगुल बजाकर दी जाती थी[1]।

---

1 तुलसीदास ने गीतावली में दीवाली की रात में जगमगाती हुई दीपमालाओं का वर्णन करते हुए कहा है। साँझ समय रघुबीर पुरी की शोभा आजु बनी। ललित दीप मालिका विलोकहि हितकारि अवध धनी। फटिक भीत रिखरन पर राजपति कुचन दीप अनी। जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि सोमित सहस फनी। गीतावली, अध्याय-७, पृ० २०

2 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-१ प० २२१

3 अहमद, निजामुद्दीन-तबकाते अकबरी, भाग-२, पृ० ६०५, बन्रियर, एफ०-पूर्वोद्धृत, पृ० २८०, डेलावेल पिट्रा-पूर्वोद्धृत, पृ० ४२८, चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०३,ओझा, पी० एन-पूर्वोद्धृत, पृ० ८४, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ५५

आगामी प्रातः ईद मनाया जाता था। इस अवसर पर मुसलमान ईदगाह जाकर ईद की नमाज पढ़ते थे, नमाज के पश्चात् सभी लोग एक-दूसरे के गले मिलते और ईद मुबारक कहते थे। ईद के शुभ अवसर पर मुगल सम्राट जहाँगीर स्वयं ईदगाह में उपस्थित होकर सामूहिक नमाज में भाग लेता था[2]। उसका पुत्र सम्राट शाहजहाँ ने अपने पिता के नियमों का पालन किया। सम्राट औरंगजेब ईद के अवसर पर विशेष उत्साह दिखाता था। वह प्रान्तीय सूबेदारों को ईद का त्यौहार मनाने के लिए आदेश भेजता था[3]।

इस्लाम कैलेंडर के बारहवें महीने के 'जुई हिजा' के दसवें दिन पर ईद-उल-जुहा का त्यौहार मनाया जाता था[4]। इस दिन मुसलमान स्नान कर साफ वस्त्र पहनकर ईदगाह में सामूहिक रूप से नमाज़ पढ़ते थे। सम्राट अकबर ईदगाह में उपस्थित होकर जन साधारण के साथ नमाज़ पढ़ता था[5]। इस त्यौहार को बकरीद भी कहते थे। इस अवसर पर सम्राट जहाँगीर स्वयं अपने हाथों से बकरे की कुर्बानी (बलि) करता था[6]। इस दिन जनसाधारण में भी कुर्बानी का प्रचलन था प्रायः सभी घरों में बकरीद के दिन भेड़ों और बकरों की कुर्बानी होती थी।

1 चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०५
2 चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०४
3 चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०४
4 अबुल फजल-अकबरनामा, भाग-२, पृ० ५१, मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३४६, ओझा, पी० एन-पूर्वोद्धृत, ८५, श्रीवास्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २१३, चोपडा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०५, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ५३-५४, बेगम रेहना पूर्वोद्धृत, पृ० २६६
5 अबुल फजल-अकबरनामा, भाग-२, पृ० ३१
6 चोपडा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०५

शबान महीने के चौदहवें दिन शब-ए-बरात का त्यौहार पड़ता था[1]। इसे 'शबरात' या 'शुबरात' भी कहते हैं। इसे मुसलमान अत्यधिक समृद्ध वाली रात मानते थे। साधारणतया लोगों का ऐसा विश्वास था कि इस रात को ईश्वर अपने भक्तों की प्रार्थनाओं को सुनता है और पूरी करता है। इस कारण अधिकांश मुसलमान पूरी रात जागकर कुरान प्झाढ़ते तथा पूर्वजों, मृत सम्बन्धियों एवं मित्र जनों के लिए प्रार्थना करते थे[2]। जीवित लोगों के लिए प्रार्थना करते तथा दुआएँ माँगते थे[3]। साधारण जनता इस त्यौहार के दिन आन्नद व उल्लास में समय बिताती थी। आतिशबाजियों का बहुलता से प्रयोग किया जाता था और घरों तथा मस्ज़िदों को इस लोकप्रिय उत्सव के समय प्रकाशित किया जाता था[4]। घरों में विभिन्न प्रकार की रोटियाँ, मीठे चावल और अनेक प्रकार के मधुर व्यंजन तैयार किये जाते थे[5]।

इस्लामी वर्ष का पहला महीना मुहर्रम है। इस महीने के प्रथम दस दिनों तक शांक मनाया जाता था। पैगम्बर मुहम्मद के द्वितीय पौत्र शहीद हज़रत इमाम हुसैन की पुण्य स्मृति में शोक मनाया जाता था[6]। इस्लामी वर्ष के

---

1 क्रुक विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० २०३-२०४, मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३४६ अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३५३, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ५८-५६, श्रीवास्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २१३

2 ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ८४
चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०२

3 रशीद, ए०-पूर्वोद्धृत, पृ० १२२

4 अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४६-२५०

5 अली, मीर हसन-पूर्वोद्धृत, पृ० ३००-३०२

6 क्रुक विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० १५६-१६१, मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ३४६, पेल्सर्ट, एफ०-पूर्वोद्धृत, पृ० ७५, सरकार, जे० एन०-हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग-३, पृ० ६१, चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १००-१०१, श्रीवास्तव, ए०

तीसरे महीने रबी-उल-अव्वल के बारहवें दिन हज़रत मुहम्मद साहब के जन्म तिथि को 'बाराबफात' के त्यौहार के रूप में मनाने का प्रचलन था[1]। इसे मिलाद-ए-शरीफ के रूप में भी मनाया जाता था। सम्भवतः इसी दिन उनकी मृत्यु भी हुई थी इसे 'अर्स' कहते थे[2]।

मुगल काल में ईरानी त्यौहार 'नौरोज' महत्त्वपूर्ण त्यौहार बन गया था। मुगल दरबार और बड़े-बड़े शहरों तथा सूबों की राजधानी में इस त्यौहार को उत्साह पूर्वक मनाया जाता था। इसका समारोह उन्नीस दिनों तक चलता था, इसमें प्रथम तथा अंतिम दिनों का विशेष महत्त्व था[3]।

मनोरंजन –

मनुष्य के जीवन में अन्य सामाजिक, भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर भी उसकी सांस्कृतिक या भावात्मक आवश्यकताएँ मनोरंजन या मनोविनोद हैं। प्रत्येक मनुष्य का मनोरंजन उसकी व्यक्तिगतरुचि, संस्कारों के अतिरिक्त आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है। मुगलकालीन सूबा अवध में विभिन्न वर्गों की मनोरंजन के प्रति विशेष रुचि थी, जिसके अनेक साधन थे लेकिन कुछ ही मनोरंजन सर्वसाधारण के समझे जाते थे जिनको हर वर्ग एवं जाति के लोग अपनाते थे तो दूसरे केवल उच्च वर्ग द्वारा ही अपनाये

एल०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २१३, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ८४-८५, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ५५-५६, बेगम रेहना पूर्वोद्धृत, पृ० २७२

1 क्रुक, विलियम--पूर्वोद्धृत, पृ० १८८-१६१, २१४
श्रीवास्तव, ए० एल०-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २१३
चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० १०६

2 यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ५६-६०

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० २८६
श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० ७२

जा सकते थे। धनाभाव के कारण साधारण वर्ग के लोगों द्वारा इनका नियोजन करना सम्भव नहीं था।

सूबा अवध के समाज में घरेलू मनोरंजन में मुख्यतः शतरंज[1], ताश[2] (जुँआ) चंदल, मंडल[3], चौपड[4], संगीत व नृत्य[5] आदि था। शतरंज, ताश, चौपड़ का खेल उच्च वर्ग तथा साधारण वर्ग दोनों में सर्वाधिक लोकप्रिय था। शतरंज का खेल उच्च वर्ग अपने खाली समय में खेलते थे। सम्राट अकबर कभी दो

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ३०२, बदायूँनी, अब्दुल कादिर-मुन्तखबउततवारिख, भाग-३, पृ० ४०८, ४६८, जायसी, मलिक मोहम्मद-पद्मावत, पृ० २५७, अशरफ, के० एम०--पूर्वोद्धृत, पृ० २४१, मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ४६०, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ५६-५७, चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ५८, क्रुक विलियम, इस्लाम इन इंण्डिया, पृ० ३३१, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ११८।

2 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ३१८, बाबर-बाबरनामा, भाग-२, पृ० ५८४, गुलबदन बेगम-हुमायुनामा, अनुवाद एस० बेवरिज, दिल्ली, १६७२, पृ० ७७, अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४३, चोपड़ा पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ५६, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ५८-५६, क्रुक, विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० ३३५, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ११८।

3 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ३१५-१६, ख्वादांमीर-कानून-ए-हुमायूँ, अनुवाद, बेनी प्रसाद, कलकत्ता, १८६७, ई० १६४०, पृ० ८०, चोपड़ा पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ६०, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ०६०, क्रुक, विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० ३३३-३३४, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ११८।

4 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० ३१५-३१६, भाग-३, पृ० ३२८, भाग-२, पृ० ५३४, सरकार जे० एन०-स्टडीस इन मुगल इण्डिया, पृ० ८२, अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४३, क्रुक, विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० ५३४, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ११८।

5 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २७४, २६०, भाग-१, पृ० ३१५, गुलबदन बेगम-पूर्वोद्धृत, पृ० ७७, तुलसीदास-पार्वती मंगल, पृ० १५०-१५३, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ६०-६१, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ११८।

स्थानों तथा कभी-कभी एक साथ चार स्थानों से एक साथ खेलता था[1]। अन्य वर्गों में भी यह खेल रुचि के साथ खेला जाता था[2]। ताश के खेल का प्रचार सम्राट बाबर ने किया था[3]। अकबर ने इस खेल में कुछ संशोधन किया था इस काल में ताश काफी लोकप्रिय हो गया था[4]। निम्न वर्ग में 'नर्द' बाजी का अधिक प्रचलन था अवकाश के समय यह ताश खेलते थे[5]। चौपड़ एक प्राचीन खेल है जो मुगल काल में सभी वर्गों के लोगों का मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था[6]। सम्राट अकबर ने चौपड़ से मिलते-जुलते एक नए खेल चंदल-मंडल का अविष्कार किया था। यह चौसठ गोटों तथा चार पांसों से एक वृत्ताकार बोर्ड पर खेला जाता था[7]। घरेलू मनोरंजन के साधनों में नृत्य एवं संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान था किन्तु इसका अधिकतर उच्च वर्ग के लोग ही आन्नद लिया करते थे। इस काल में अक्सर ही किसी के अतिथि सत्कार, उत्सव, समारोहों आदि में नृत्य व संगीत के आयोजन के साथ ही शराब, भोजन आदि की भी व्यवस्था की जाती थी[8]।

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, ३२०।

2 जायसी मलिक मोहम्मद-पद्मावत, पृ० २५७।

3 बाबर-बाबरनामा, भाग-१, पृ० ३०७, अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २२४

4 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, ३१६-३२०, मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ४६०, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ५६, अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २२४, क्रुक, विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० ३३३

5 अली, मीर हसन--पूर्वोद्धृत, पृ० २५२

6 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३२८, अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २४३, क्रुक विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० ५३४

7 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ३१६

8 अबुल फजल-पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २५८, बदायूँनी, अब्दुल कादिर-पूर्वोद्धृत,

घर के बाहर किये जाने वाले मनोरंजन में शिकार, जानवरों की लड़ाई, चौगान आदि कुछ खेल उच्च वर्गों के लोगों के मनोरंजन के साधन थे। मैदानी खेलों में चौगान सबसे प्रसिद्ध था। यह घोड़े पर चढ़कर गेंद व लम्बी छड़ी से खेला जाता था। सम्राट अकबर ने चौंगान खेल को विशेष प्रोत्साहन दिया इसने चौगान के खेलने के लिए रोशनी देने वाली गेंद बनवाई थी, जिससे रात के अंधेरे में भी इसे खेलना संभव हो गया था[1]। शिकार खेलना मनोरंजन के उत्तम साधनों में था, धनी लोग हाथी, शेर, चीता तथा जंगली बकरों आदि के शिकार के लिए जंगलों में जाया करते थे। अकबर ने एक विशेष प्रकार की शिकार की व्यवस्था की थी, जिसे 'कमरगा' कहते थे[2]। सूबा अवध का वन क्षेत्र, बहराइच, खीरी, हरदोई, गोण्डा क्षेत्रों में था यह अधिकांशतः तराई क्षेत्रों में फैला हुआ था। इन सभी वनों में शिकार के लिए अच्छे पशु भी उपलब्ध थे।

मुगल काल में जानवरों तथा पक्षियों को पालना और आपस में लड़ाना सभी वर्गों का लोकप्रिय मनोरंजन था। हाथियों, चीतों, शेरों, तेंदुए, हिरण, चित्तल, ऊँट, जंगली सूअर, भैंसे आदि के युद्ध और उनके हार-जीत का लोग आन्नद लेते थे[3]। सबसे भयंकर लड़ाई शेर और हाथियों की होती थी। इन

भाग-२, पृ० ६५, मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ६, अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २३७-३२८

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ३०६-३१०, बदायूँनी, अब्दुल कादिर-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० ८६, क्रुक विलियम-पूर्वोद्धृत, पृ० ३३६, यासीन, मोहम्मद-पूर्वोद्धृत, पृ० ११८

2 चोपड़ा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ६६

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २७८, भाग-२, पृ० ३६६
अहमद, निजामुद्दीन-तबकाते अकबरी, अनुवाद बी०डे, भाग-२, पृ० ६६, २५०
डीलिट, जोन्स-पूर्वोद्धृत, पृ० ८१
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० १६१

हिंसक पशुओं को पालने-साधने और उनकी देखभाल के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता था। और यही कर्मचारी हाथियों और शेरों को कठहरे में लाकर छोड़ते तथा लड़ाई के अन्त में विजयी और पराजित पशुओं को अपने नियन्त्रण में रखते थे। ये कर्मचारी पशुओं को नियंत्रित करने के लिए कोड़े, बल्लम, लोहे की दहकती गर्म सलाखों और आतिश बाजियों का प्रयोग करते थे[1]। लड़ने वाले शेर नेपाल की तराई से मँगवाये जाते थे। शेर को शेर से लड़ाने के अतिरिक्त शेर को तेंदुए, हाथी और भैंस से भी लड़ाया जाता था। चीतों की लड़ाई बड़ी रक्त पिपासु लड़ाई होती थी[2]। ऊँटों की लड़ाई, बारहसिंगों की लड़ाई बहुत पसन्द की जाती थी। साधारण जनता कम खर्चीले पशुओं की लड़ाई से अपना मनोरंजन किया करती थी। इनमें बकरों, भेड़ों, कुत्तों आदि की लड़ाई थी। युवा लड़के मुर्गा, बुलबुल, तीतर जैसे पक्षियों की लड़ाई देखकर अपना मनोरंजन किया करते थे।

अवध के उच्च वर्ग से लेकर जनसाधारण तक में पक्षियों की लड़ाई का खेल अत्यंत लोकप्रिय था। जनसाधारण में इनकी लोकप्रियता का एक और कारण यह था कि जहाँ पशुओं की लड़ाई का खेल व्यय साध्य होने से उच्च वर्ग तक सीमित रहा, वही कम खर्चीला होने के कारण पक्षियों की लड़ाई का खेल उच्च वर्ग के साथ-साथ साधारण जनता में भी लोकप्रिय हो गया था और सभी वर्ग के लोग इसका आन्नद उठाते थे। पक्षियों के लड़ाई के खेल में मुख्यतः मुर्गा, बटेर, तीतर, गुलदुम, कबूतर, तोते आदि पक्षी लड़ाए जाते थे, किन्तु इनमें मुर्गाबाजी, कबूतरबाजी तथा बटेरबाजी अत्यधिक लोकप्रिय हुए[3]।

---

1 शरर, अब्दुल हलीम-गुजिस्ता लखनऊ, पृ० १५७

2 शरर, अब्दुल हलीम-पूर्वोद्धृत, पृ० १५७

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ३१०-३११, बदायूँनी, अब्दुल कादिर-मुन्तखबत तवारिख, भाग-३, पृ० १४७,मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ०

इसके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर कुश्ती, दंगल, मल्लयुद्ध का आयोजन किया जाता था[1]। आँख निचौली, बध्धाखेल, भेड़-बकरी आदि के खेल ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित थे[2]।

अवध में कुछ खेल बच्चों में लोकप्रिय थे जैसे पतंग उड़ाना, गेंद खेलना, झूला, आँख मिचौली, लट्टू घुमाना, झूठी लड़ाई का खेल, वृक्षों पर चढ़ाना आदि से अपना मनोरंजन करते थे[3]। इसके अतिरिक्त सपेरा आज के समान लोकप्रिय था। यह जहर के दांत निकालकर अपनी पेटी में साँप रखते थे तथा गली मुहल्लों में बीन बजाकर साँपें का तमाशा दिखाया करते थे, बीन की आवाज सुनकर सभी स्त्री-पुरुष, बच्चे साँप का खेल देखने के लिए एकत्रित हो जाते थे।

मनोरंजन के क्षेत्र में नटों और बाजीगरों का एक अलग समुदाय था। प्राचीन काल में नटों और बाजीगरों का वर्ग शुद्ध भारतीय वर्ग था इस वर्ग के सभी लोग हिन्दू थे किन्तु मध्यकाल में कुछ परिवारों ने इस्लाम धर्म अपना लिया और नटों और बाजीगरों के वर्ग में हिन्दुओं के साथ-साथ बड़ी संख्या में मुसलमान भी उपस्थित थे[4]। नट और बाजीगर अपने भिन्न-भिन्न करतबों से

४६७, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ७५, क्रुक, विलियम-इस्लाम इन इंण्डिया, दिल्ली, १६७२, पृ० ३३६

1 अबुल फजल-अकबरनामा, भाग-१, पृ० २४८
बदायूँनी, अब्दुल कादिर-पुर्वोदृत, भाग-३, पृ० १४७
मनूची, एन०-पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० १६१
ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ७५

2 श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २०८

3 श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २०८

4 आजकल माह अप्रैल-मई १६६६ ई० शीर्षक हिन्दुस्तान के बाजीगर दिल्ली।

देखने वालों का मनोरंजन करते थे। इसमें से कुछ लोग अपने साथ सिखाए हुए बन्दर आदि भी रखते थे, जो मालिक के इशारे पर तरह-तरह के खेल दिखाया करता था। बहुरूपियों का भी एक वर्ग उपस्थित था जो आम जनता की रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करके जन साधारण का मनोरंजन करता था यह रूप अधिकांशतः धार्मिक और सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होते थे[1]।

मेले तथा धार्मिक स्थानों की तीर्थ यात्रायें भी जन साधारण के लिये मनोरंजन तथा आन्नद का अवसर होता था। अनेक शासक आये और गए, प्राकृतिक प्रकोप के कारण जनता को असहाय कष्ट उठाने पड़े परन्तु वह इन सभी कष्टों के बावजूद भी बड़े उत्साह से तीर्थ स्थानों में यात्रा करने तथा मेले में आन्नद का अनुभव करते थे। सामाजिक तथा धार्मिक परिवर्तन भी इसके अस्तित्व को समाप्त न कर सके, प्रत्येक युग ने इनके महत्त्व की अभिवृद्धि में अपना योगदान दिया है।

मुगल कालीन सूबा अवध में मेले एवं तीर्थ स्थानों की यात्रा बड़ी महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय थी। सालभर के तारीखों में से कुछ दिन ऐसे निर्धारित किए गये थे जिनमें सूबा अवध की हिन्दू जनता अपने स्थानीय सीमाओं में मेले का आयोजन करती थी। जिनमें भारी संख्या में स्त्री-पुरुष, बच्चे एकत्रित होते, पवित्र स्थान में स्नान करते एवं मूर्तियों के पूजा करते थे। तथा इन स्थानों के धार्मिक जुलूसों में भाग लेते थे। व्यापारियों द्वारा लगाई गई दुकानों से सामानों की खरीद करना भी इन मेलों का महत्त्वपूर्ण अंग था। ग्रामीण स्त्रियों के लिए इस प्रकार के मेले विशेष महत्त्व रखते थे, क्योंकि यही वह अवसर होता था

---

1 अशरफ, के० एम०-हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, पृ० २५७

जब यह स्त्रियाँ अपने श्रम और संघर्षपूर्ण जीवन में शांति और सौहर्द्ध का अवसर प्राप्त करती थी। ऐसे अवसरों पर वह अपने दूर-दराज के मित्रों, सम्बन्धियों एवं सजातीय बन्धुओं से मिलने का आन्नद उठाती और घूमने का मौका प्राप्त करती थी। कुछ मेलों में हिन्दू मुसलमान दोनों भाग लेते थे। ये सभी संयुक्त रूप से मनोरंजन के कार्यों में भाग लेते थे तथा व्यापारिक क्रिया कलापों में सक्रिय रहते थे। मेला विशेष रूप से निम्न वर्ग तथा निर्धन लोगों के लिए मनोरंजन का प्रमुख साधन होता था। मेलों में समानों का क्रय-विक्रय भी खूब होता था। जिससे इसका आर्थिक महत्त्व भी था। अवध में तीर्थ स्थानों तथा सूफियों के मज़ारों पर लोग श्रद्धा-भक्ति के कारण भारी संख्या में एकत्र होते थे। फलस्वरूप यह दृश्य भी एक मेले की तरह हो जाता था।

अवध में लगने वाले मेलों में से कुछ निश्चित समय पर तथा कुछ विशेष अवसरों पर ही लगते थे। इनमें से प्रमुख मेले का वर्णन निम्नवत है-

अयोध्या में अनेक धार्मिक मेले लगते थे। श्री रामचन्द्र जी के जन्म स्थान होने के कारण यहाँ चैत्र मास में रामनवमी का बहुत बड़ा मेला लगता था। मुगल काल में देश के सब भागों से यात्रियों के समूह अयोध्या के दर्शन के लिए आते थे। अयोध्या हिन्दू भारत की सात पवित्र नगरियों में से एक है[1]। हिन्दू लोग श्री राम के जन्म का महोत्सव मनाते हैं और उनके कीर्ति का गुणगान करते हैं[2]। उस दिन बहुत से श्रद्धालु भगवान श्री राम का ध्यान करके उनके नाम का जप करते थे[3]। सरयू नदी का दर्शन स्पर्श और जलपान पापों

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० ३३४-३६
सीताराम, अवधवासी लाला-अयोध्या का इतिहास, पृ० ११

2 तुलसीदास-रामचरितमानस, अध्याय-१, पृ० ४७

3 तुलसीदास-रामचरितमानस, अध्याय-१, पृ० ४७

को हरता है यह नदी बड़ी ही पवित्र है। इसकी महिमा अन्नत है[1]। ऐसा लोगों का विश्वास था। इसी प्रकार गुप्ततार घाट पर क्वार एवं कार्तिक मास की अमावस्या को स्नान का मेला लगता था[2]। इन मेलों का आज भी प्रचलन है। अयोध्या के निकट सूरजकुण्ड भी एक तीर्थ स्थान है। मुगल काल में दूर-दूर से श्रद्धालु यहाँ आते थे[3]।

सीतापुर जिले में नैमिखार पवित्र तीर्थ स्थान है जिसे अब नेमखार कहा जाता है। यहाँ सोमवारी अमावस के दिन स्नान का बड़ा भारी मेला लगता था[4]। हजारों की संख्या में लोग प्रतिवर्ष इस तीर्थ स्थान के दर्शन के लिए आते थे। सम्राट् अकबर के काल में गोमती नदी इसके निकट से बहती थी। तथा उसके इर्द-गिर्द बहुत से मंदिर थे[5]। यहाँ एक तालाब है जो 'ब्रह्मावर्त कुण्ड' के नाम से प्रसिद्ध है उसका पानी भीतर इतना उबलता है और चक्कर करता है कि उसमें आदमी डूब नहीं सकता और जो कुछ भी इसमें डाला जाता है, वह ऊपर आ जाता है[6]। उसके निकट एक गुफा है जो एक छोटी नदी का उद्गम स्थल है। मुगलकाल में यह नदी एक गज चौड़ी और चार अंगुल गहरी थी तथा गोमती नदी में गिरती थी[7]। ब्राह्मण वर्ग इसके विषय में विचित्र कहानियाँ कहते

---

1 तुलसीदास-रामचरितमानस, अध्याय-१, पृ० ४७

2 प्रसाद, कुँवर दुर्गा 'महर', अयोध्या का इतिहास, पृ० १४-१८

3 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८३

4 सहाय, मुंशीराम, तम ा-अफजल-उत-तवारिख, लखनऊ, १८७६, भाग-२, पृ० १८३-८४, सीताराम, अवधवासी लाला- पूर्वोद्धृत, श्रीवास्तव ए०एल०- अवध के प्रथम दो नवाब, पृ० २७८

5 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८३

6 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८३

7 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८३

थे और इसकी पूजा करते थे[1]। अबुल फजल ने लिखा है कि इस नदी की रेत पर महादेव जी का आकार प्रकट होता था और तुरंत मिट जाता था। चावल तथा अन्य जो कोई भी चीज उसमें फेंकी जाती थी उसका चिन्ह नहीं रह जाता था[2]। वहाँ पर एक स्थान है जिसे ' चिराभित्रि' कहते थे। जहाँ से होली के पर्व पर स्वयं लपटें निकलती थी। जिसको देखकर आश्चर्य होता था[3]।

इसके अतिरिक्त घाघरा नदी के किनारे पर बेगमगंज, जिसे पूर्व में दिलासीगंज के नाम से जाना जाता था। उसके दो किलोमीटर पूर्व सिरवा नामक गाँव में नदी के किनारे पर कार्तिक सुदी पूर्णमासी तथा चैत्र माह की रामनवमी के दिन बहुत बड़ा मेला लगता था जो हिन्दुओं के महान ऋषि शृंगी ऋषि का अपभ्रंश था[4]। लखनऊ से चालीस कोस दूर के बैसवाड़ा के 'हड़का' नामक स्थान पर श्री देवी सुदर्शिनी के प्रसिद्ध मन्दिर में भी भारी मेला लगता था[5]।

अवध में अन्य तीर्थ यात्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान सालार मसूद गाजी की मजार है। जो बहराइच शहर में स्थित है[6]। मुसलमान इस स्थान का बड़ा सम्मान करते थे[7]। इनकी कब्र पर प्रत्येक वर्ष ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार को

---

1 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८३

2 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८३

3 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८३

4 गजेटियर आफ दि प्राविन्स आफ अवध, भाग-१, लखनऊ, १८७७, पृ० ६३

5 सहाय, मुंशीराम, 'तमन्ना' पूर्वोद्धृत, भाग-२, पृ० १६६

6 अशरफ, के० एम०-पूर्वोद्धृत, पृ० २५१, श्रीवास्तव, ए० एल०-अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २१४, ओझा पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ८५

7 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८२, चतुर्वेदी, पशुराम, सूफी - काव्य संग्रह, प्रयाग, सम्पत् २०१३, पृ० ३५

एक बहुत बड़ा मेला लगता था[1]। दूर-दूर के भागों से यहाँ प्रत्येक वर्ष लोग विभिन्न प्रकार के झण्डों को जो अनेक रंगों के होते तथा अन्य भेंटों के साथ यहाँ आते थे और सालार मसूद गाजी की मजार को भेंट चढ़ाते तथा दर्शन करते थे[2]। इसी स्थान पर बाल रख नामक एक महान् दर्वेश भी रहते थे। दरगाह के अन्दर सीधी और एक कोने में एक छोटा सा गोल हौज़ है जो बालाकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं[3]। कुछ हिन्दू इसे अग्निकुण्ड बालारख तथा कोई बाला राख की धूनी भी कहते थे। जनता में यह मेला 'बालापीर' के नाम से प्रसिद्ध था। इसके अलावा लखनऊ के शाहखमन पीर, हज़रत शाह मीना शाह के मजार पर उर्स का बड़ा मेला लगता था जो कई दिनों तक चलता था। इस अवसर पर दूर-दूर से हजारों की संख्या में लोग आते और श्रद्धा भाव से दर्शन करते थे। बिलग्राम में ख्वाजा अमादुद्दीन बिलग्रामी, मीर अब्दुल वाहिद के मजारों पर दर्शनार्थियों की बहुत भीड़ जमा होती थी और भारी मेला लगता था। रूदौली के मखदूम शाह अब्दुल हक के मजार पर प्रत्येक वर्ष उर्स का आयोजन होता था, इस अवसर पर हजारों की संख्या में लोग दरगाह के दर्शन हेतु आते थे और श्रद्धा भाव से धन, वस्त्र तथा अन्य आदि चढ़ाते थे[4]। इसका प्रचलन आज भी है। अयोध्या में मुनी पर्वत के समीप 'शीस' अय्यूब तथा 'नूह' की

---

1 रिज़वी , अतहर अब्बास - उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-१, पृ० २७७
गनी, नजमुल-तारिख-ए-अवध, खण्ड-३, लखनऊ, १६७६, पृ० २७२-७३

2 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८२, ओझा, पी० एन०-पूर्वोद्धृत, पृ० ८५, श्रीवास्तव ए०एल० अवध के प्रथम दो नवाब, पृ० २७६

3 बहराइच गजेटियर, पृ० ११८

4 बाराबंकी गजेटियर, पृ० ५४

मजार हैं। जिसके दर्शन के लिए लोग आते थे[1]। मेलों तथा तीर्थ स्थलों का समाज में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता था। अवध में भी यही स्थिति थी।

समाज में हिन्दू तथा मुसलमानों के मध्य धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ता ही गया। दोनों ही जातियों के रीति-रिवाजों, भाषा, धर्म, आचरण पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ा था। दोनों ही जातियों में वर्णगत संकीर्णताएँ थीं। यदि हिन्दू समाज वाह्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र व निम्नोत्तर जातियों में विभाजित था तो मुस्लिम समाज भी शासक अधिकारी वर्ग, सैय्यद, शेख़, पठान इत्यादि में विभाजित था। दोनों समाज असमानता पर आधारित था। समाज व राजनीति दोनों पर धर्म का प्रभाव था। परन्तु जिन वर्गों के पास अत्यधिक धन सम्पत्ति थी, उन्होंने बड़े-बड़े अन्तःपुर या हरम में अनेक स्त्रियों को रखना, नौकर-चाकर रखना, बिलासी जीवन व्यतीत करना तथा भोग-विलास को जीवन का एक मात्र लक्ष्य बनाना प्रारम्भ कर दिया। दोनों ही समाज में स्त्रियाँ पुरुषों पर आश्रित थी। दहेज प्रथा, बाल विवाह, पर्दाप्रथा जैसी कुप्रथाएँ विद्यमान थीं। स्त्रियों का अधिकांश समय शृंगार, नये-नये वस्त्र व आभूषण करने, सुगन्धित वस्तुओं का उपयोग सौंदर्य बढ़ाने के लिए करने आदि में व्यतीत होता था। आर्थिक रूप से तंग स्त्रियाँ दो समय का भोजन जुटाने में ही व्यस्त रहती थीं। दोनों ही समाज में उलेमा, पण्डित, मौलवी, सूफी-सन्तों का प्रभाव रहा।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि समाज में रिश्वत की बिमारी कब से फैली। किन्तु सलतनत काल से ही इसके उदाहरण मिलने प्रारंभ हो जाते हैं। अब्दुल्ला ने तारीख-ए-दाऊदी में इस संदर्भ में कुछ संकेत दिए हैं।

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १४५, प्रसाद, कुंवर दुर्गा 'महर'-पूर्वोद्धृत, पृ० १४-१८

शेरशाह को कुछ मुगल-मंत्रियों के भ्रष्ट होने की जानकारी थी[1]। शेख मुश्ताकी के अनुसार इब्राहिम ने मियाँ हुसैन फारमूली की हत्या करवाने के लिए चंदरी के शेख फरीद दरियाबादी को १०० सोने की मुहरें और १० गाँव देकर अपने पक्ष में कर लिया था[2]। इस कहानी का ऐतिहासिक महत्त्व कुछ भी हो इससे भारतीय समाज में रिश्वत के अस्तित्व की पुष्टि अवश्य हो जाती है। जुआ अत्यंत प्राचीनकाल से समाज में प्रचलित था।

उपरोक्त अभिशापों के अतिरिक्त भौतिक रूप से जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति करने पर भी मानसिक रूप से अवध का समाज एक सीमा तक जड़ता का शिकार था। स्वतंत्र रूप से सोचने और वर्तमान के संदर्भ में अर्थहीन हो चुकी रूढ़ियों को तोड़ने की प्रवृत्ति सामान्यतः नहीं थी। सैद्धांतिक रूप से यह समाज अपने सदस्यों को स्वतंत्र चिंतन और अपने व्यक्तित्त्व के सर्वांगीण विकास की छूट देता है, किन्तु व्यवहार में लीक से हटकर चलने वाले की राह में तरह-तरह के रोड़े अटकाता है। आदर्श और यथार्थ, सिद्धांत और व्यवहार तथा कथनी और करनी का अंतर समाज को खोखला बना रहा था।

1 अब्दुला-तारीखे दाउदी (सम्पादक) शेखअब्दुर्र रशीद, अलीगढ़, १९५४, पृ० ११४

2 रिज़वी, एस० ए० ए०-उत्तर तैमूर कालिन भारत, भाग-१, पृ० १६८

तृतीय अध्याय
शिक्षा एवं साहित्य

भारतीय समाज ने सदैव ही शिक्षा की उपादेयता को समझते हुए इसे प्रोत्साहित किया है। प्राचीन काल से ही यहाँ शिक्षा अत्यन्त्र सुव्यवस्थित तथा संगठित रही। उस समय शिक्षा पाठशालाओं एवं गुरुओं के आश्रम में प्रदान की जाती थी। जहाँ बालक उपनयन संस्कार के पश्चात् प्रवेश करता था। गुरुओं का आश्रम प्रायः आबादी से दूर स्थित होता था। इन आश्रमों में वेद पुराण, वेदांग, इतिहास सहित दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, गणित, कालक्रम गणना, सैन्य विज्ञान, नैतिक शास्त्र आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता था।

भारत में ग्यारहवीं शताब्दी तक बड़े बड़े विश्वविद्यालय विकसित हो चुके थे। इनमें तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला आदि प्रमुख विश्वविद्यालय थे। इन्ही से प्राथमिक पाठशालायें भी संलग्न थी। बाद मे समय में हिन्दू, राजा, सरदारों एवं सामन्तों ने शिक्षा को संरक्षण तथा प्रोत्साहन देना जारी रखा। मठों मन्दिरों, पाठशालाओं, टोल में हिन्दू शिक्षा दी जाती रही। अवध शैक्षिक गतिविधयों में उल्लेखनीय प्रगति करता रहा।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त तुर्की शासकों ने भी शिक्षा प्रसार हेतु अनेक प्रकार की संस्थाओं जैसे मकतब, मदरसे ख़ानकाहों की स्थापना की। यह सभी राजकीय संरक्षण के कारण अधिक फलती-फूलती रही[1]। किन्तु इससे हिन्दू समुदाय पर कोई आँच नहीं आई। शैक्षिक प्रगति में हिन्दू-मुसलमान की रूचि सराहनीय थी। इस काल में उच्चशिक्षा के पाठ्यक्रम में धर्मशास्त्र के अध्ययन पर बल दिया जाता था। इन संस्थाओं में जो मुख्य विषय पढ़ाये जाते थे वह तफसीर (धर्म ग्रन्थों की व्याख्या), हदीस (परम्परायें),

---

1 रशीद, ए० - सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इडिया, कलकत्ता, १९६९ ई०, पृ० १५०

फ़िक (न्यायशास्त्र) थे। अन्य विषयों में व्याकरण, साहित्य, तर्कशास्त्र, कलाम (मुस्लिम धर्म विदों के विचार) आदि थे। ख़ानकाहों में प्रमुखतः रहस्यवादी दर्शन और सूफी जीवन की शिक्षा प्रदान की जाती थी[1]।

मुगल शासन काल में शिक्षा की अत्यधिक उन्नति हुई। मुगल शासक शिक्षा एवं विद्या प्रेमी होने से इस और विशेष ध्यान दिय। जिससे इसे नवीन दिशा मिली तथा इसके प्रसार के लिए आवश्यक प्रयास किये। मुगल काल में शिक्षा तथा साहित्य के प्रमुख केन्द्र के रूप में सूबा अवध अपने शिक्षण तथा साहित्यिक गतिविधियों के लिए बहुत प्रसिद्ध हुआ। यहाँ के शिक्षण संस्थानों की ख्याति सुनकर दूर-दूर से लोग यहॉ अध्ययन करने आते थे। अवध के शिक्षण संस्थान धार्मिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्र रहे। हिन्दू शिक्षा के प्रमुख केन्द्र अयोध्या, कोटवा आदि थे। मुस्लिम शिक्षा केन्द्र लखनऊ, अमेठी, दरियाबाद, खैराबाद, गोरखपुर, बहराइच जैसे बड़े नगरों में ही नहीं बल्कि बिलग्राम, काकोरी, गोपामऊ, सोहाली तथा जायस जैसे छोटे कस्बों में भी थे[2]। यह शिक्षण संस्थायें विद्वानों, अध्यापकों तथा धर्मगुरूओं द्वारा चलाये जाते थे। राज्य द्वारा स्थापित शिक्षण केन्द्रों को शासन की और से वित्तीय सहायता मिलती थी। इसके अलावा विद्वानों व धर्मगुरूओं को भी शिक्षण कार्य के हेतु शासन की ओर से वजीफें (आर्थिक वृत्ति) तथा जागीरें प्राप्त थी। हिन्दू शिक्षाण संस्थायें भी विद्वानों, धर्मगुरूओं द्वारा चलायी जाती थी, जिन्हें हिन्दू सरदार, स्थानीय राजा

---

1 निजामी, खलीक अहमद- स्टडीस इन मेडिवल इडिया हिस्ट्री एण्ड कल्चर, अलीगढ़, १६५६ ई०, पृ० ८१-८२

2 हई, एस०ए०- इण्डिया ड्यूरिंग मुस्लिम रूल, अनुवादक एम. अहमद, लखनऊ, १६७७ ई०, पृ० १८१-१८५, जाफर, एस०एम०- एजूकेशन इन मुस्लिम इडिया, दिल्ली, १६७३ई०, पृ० १७.१८, लूनिया, बी०एन०- मुगल कालीन भारत का राजनैतिक एवं सास्कृतिक इतिहास, भोपाल, १६७१, पृ० ६६८-६६६

व जमींदारों आदि से अनुदान प्राप्त होता था। इन पर राज्य का सीधा हस्तक्षेप नहीं रहता था। इस काल में शिक्षा का मुख्य आधार धर्म रहा जो उलेमाओं व धर्मगुरूओं द्वारा चलायी जाती थी[1]।

सूबा अवध के हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही समाज में शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व था। धार्मिक व्यक्तियों, विचारकों एवं चिन्तकों का ध्यान शिक्षा की और रहा। धर्म, प्रशासन, न्याय के क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए शिक्षा अनिवार्य थी। शिक्षा का प्रचलन उच्च वर्ग तथा मध्यम वर्ग में अधिक था। जन साधारण में शिक्षा का प्रचलन अपेक्षाकृत कम था। मुगल शासकों ने शिक्षा के प्रसार हेतु विशेष ध्यान दिया। तत्कालीन वातावरण इसके लिए उपयुक्त था। समाज में अपेक्षाकृत अधिक शान्ति, सुरक्षा एवं समृद्धि थीं। नितान्त गरीब वर्ग कभी शिक्षा के व्यापक स्वरूप के अन्तर्गत नहीं रहा। पारम्परिक रूप से शिक्षा की पद्धति चलती रही और जो इसके लिए साधन सम्पन्न थे वे शिक्षित होते रहे।

मुस्लिम शिक्षा –

मुगल कालीन सूबा अवध में तीन प्रकार की शिक्षण संस्थऐं थी। मकतब, मदरसे तथा खानकाह इसके अलावा अनेक विद्वान व शिक्षक अपने निवास स्थान पर व्यक्तिगतरूप से शिक्षा प्रदान करते थे।

मुस्लिम परिवारों में शिशु की शिक्षा 'बिस्मिल्लाखानी' या मकतब संस्कार से प्रारम्भ होती थी[1]। इस अवसर पर मुल्ला या काजी शिशु को कुरान के चौथे

---

[1] अबुल फजल- अकबरनामा, भाग-१, कलकत्ता, १९४८ई०, पृ० २८८ जाफर, एस०एम०- पूर्वोद्धृत, पृ० ८०-१०३, लुनिया, बी०एन०- मुगलकालीन भारत का राजनैतिक एवं सामाजिक इतिहास, भोपाल, १९७१, पृ० ६६३

सरकार, जे०एन० स्टडीस इन मुगल इडिया, कलकत्ता, १९१९ई०, पृ० २९९ ला, एन.एन. - प्रमोशन आफ लर्निग इन इण्डिया डयूरिंग मुहम्मडम रूल, दिल्ली, १९७३, पृ० १७-१८

अध्याय से कुछ पंक्तियां पढ़कर सुनाता था और दोहराने को कहता था। इसी समय उसका हाथ पकड कर तख्ती पर उससे 'बिस्मिल्लाह -उल-रहमान-उल-रहीम' लिखवाता था यदि शिशु हठी होताथा और सीखने से इन्कार करता था तो उससे केवल ' बिस्मिल्लाह' कहलवाया जाता था इसके साथ ही उसकी शिक्षा प्रारमभ होती थी[2]।

प्राथमिक शिक्षा मकतब में प्रदान की जाती थी। यह मस्ज़िदों से संलग्न होते थे या सम्पन्न परिवारों के लोग अपने बालकों के लिए घर में शिक्षण नियुक्त कर देते थे। जहॉ परिवार व आप-पास के बालक-बालिकायें शिक्षा प्राप्त करते थे। इस बैठक को भी मकतब कहते थे[3]। यहॉं के शिक्षकों के भरण-पोषण का दायित्व उन परिवारों पर होता था जिनके यहॉं के बच्चे यहॉ शिक्षा ग्रहण करते थे। इसके अलावा इनकी व्यवस्था सम्मानित व दानशील नागरिकों द्वारा किया जाता था। सूबा अवध के प्रत्येक शहर कस्बा व गॉंव में मकतब थे। जहॉं मौलवी, मियॉजी या पेशी, तथा इमाम द्वारा शिक्षा प्रदान किया जाता था। इन शिक्षकों को बड़ी श्रद्धा व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यह मकतब के अनुशासन को बनाये रखते थे। मकतब में विद्यार्थियों को भूमि पर पंक्तिबद्ध

[1] रशीद, ए- पूर्वोद्धृत, पृ० १५०, यासीन, एम०-ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इंडिया, लखनऊ, १९५८ ई०, पृ० ६३, रावत, पी०एल०- हिस्ट्री आफ इंडियन एजूकेशन, आगरा, १९५६ ई०, पृ० ६३

[2] अबुल फजल- अकबरनामा, भाग-१ पृ० २७०, अशरफ, के० एम० - हिन्दूस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियॉ, अनुवादक के एस०लाल दिल्ली, १९६० ई०, पृ० १८३, रावत, पी०एल०-पूर्वोद्धृत, पृ० ६३

[3] सहाय, बी०के०- एजूकेशन एण्ड लर्निंग अंडर द ग्रेट मुगल, बम्बई, पृ०६ जाफर, एस०एम० - सम कल्चरल आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल, इन इडिया, दिल्ली, १९७२ई०, पृ० ७६, रशीद, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० १५८

बैठाकर लिखना-पढ़ना सिखाया जाता था। अध्यापक स्वयं चबूतरे या किसी ऊँची चीज पर बैठता था।

उच्च शिक्षा मदरसे में प्रदान की जाती थी। मुगल कालीन में सूबा अवध में उच्च शिक्षा का व्यापक विकास एवं प्रसार हुआ विशेषतः सम्राट शाहजहॉ तथा औरंगजेब के समयअवध तथा लखनऊ अपने शिक्षण तथा साहित्यिक गतिविधियों के रूप में विख्यात थे। यहॉ विभिन्न क्षेत्रों से विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे।

अठ्ठारहवी शताब्दी में विशेषकर लखनऊ का फिरंगी महल अपनी उच्च शिक्षा के लिए देश- विदेश में विख्यात हुआ। प्रसिद्ध विद्वान तथा सूफी मुल्ला कुतुबद्दीन जो लखनऊ से बत्तीस मील दूर सोहाली में पठन-पाठन तथा शिक्षण कार्य करते थे। इनकी मृत्यु के बाद सम्राट औरंगजेब ने फिरंगी महल' इनके परिवार को रहने के लिए प्रदान कर दिया था[1]। इनके पुत्र मुल्ला निजामुउद्दीन ने 'फिरंगी महल' में एक मदरसे की स्थापना किया था कालांन्तर में यह धार्मिक शिक्षा, न्याय शास्त्र तथा अरबी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया। लखनऊ में ही शाह पीर मोहम्मद का टीला जहॉ सम्राट शाहजहॉ के काल में सुन्दर मस्ज़िद का निर्माण कराया गया था। यहॉ भी दूर-दूर से विद्यार्थी आकर अध्ययन करते थे। उनके भोजन, आवास तथा वस्त्र आदि का प्रबन्ध मुगल शासन की ओर से होता था। इसके लिए सम्राट की ओर से हर माह एक निश्चित धनराशि मिलती थी[2]।

मदरसे शसकों, अमीरों व स्थानीय समृद्ध मुसलमानों द्वारा दिये गये आर्थिक अनुदानों से चलाये जाते थे। मुगल काल में मदरसों की संख्या अधिक न थी जब कि मकतब अधिकतर मुस्लिम आबादी में एक और कभी-कभी कई

---

1 हलीम, अब्दुल 'शरर'- गुजिश्ता लखनऊ, लखनऊ १६४५, पृ० २६

2 बेगम रेहना- अवध के सामाजिक जीवन का इतिहास, दिल्ली, १६६४

होते थे। हर मस्जिद में एक मकतब होते थे जिनका कार्य धर्म के साथ शिक्षा प्रदानकरना भी था[1]। कभी-कभी मकबरों तक में मकतब होते। मदरसें ज्यादातर बड़े नगरों तथा शहरों में ही थे।

मुगल काल में सूफी सन्तों की खानक़ाहें भी शिक्षा के केन्द्र होते थे। जहॉ विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण करने आते थे। ख़ानक़ाह की स्थापना अधिकांशतः सूफी सन्तो द्वारा होती थी। इनके द्वारा वह अपने विचारों तथा आर्दशों का प्रचार-प्रसार भी करते थे[2]। शासकों व अमीरों द्वारा भी ख़ानक़ाहों की स्थापना की गयी थी। इन ख़ानक़ाहों की व्यवस्था के लिए शासकों द्वारा अनुदान दिया जाता था[3]। ख़ानक़ाहों में मुख्यतः विधि शास्त्र तथा धर्म शास्त्र की शिक्षा प्रदान की जाती थी[1]। अवध क्षेत्र में काफी संख्या में ख़ानक़ाहें थी[2]।

---

1 सहाय, बी०के०- पूर्वोद्धृत, पृ० ४

2 सरकार, जे०एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० ३००, सहाय, बी०के०- पूर्वोद्धृत- पृ० ५ ओझा, पी०एन०- सम० आस्पेक्ट्स आफ मेडिवल इंडिया कल्चर, रांची, १९६१, पृ० ६०-६१

3 उत्तर प्रदेश के क्षेत्रिय संग्रहालय मेंशाहजहॉ और औरंगजेब के शासन काल के दो दस्तावेज मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि सरकार द्वारा ख़ानक़ाहों को अनुदान दिया जाता था। प्रथम दस्तावेज सरकार बहराइच के परगना फिरोजाबाद के सम्बन्ध में है जिसमें १४ दिसम्बर १६३६ ई० में परगना अधिकारी फिदईखान द्वारा एक परवाना जारी किया गया है कि गाँव सियापुर के लिए जिसमें समस्तं करों जैसे मुकरारी, सहंग, पेशकश को वसुल करने के लिये मना किया गया है। यह क्षेत्र इस गाँव के शेख हमीर फहीद उल जमानी को उनके ख़ानक़ाह की व्यवस्था हेतु प्रदान किया गया था। कैलेंडर, ओरियन्टल रिकार्डस, प्रकाशन, स्टेट आरकाइव, इलाहाबाद, भाग-१, पृ० ८८

द्वितीय दस्तावेज भी सरकार बहराइच के परगना फिरोजाबाद के गाँव सिपाहीपुर के सम्बन्ध में है। ७ अक्टूबर १६८३ ई० में परगना अधिकारी खानवदेश खान द्वारा एक परवाना जारी किया गया जिसमें कहा गया कि सिपाहीपुर तथा रंगरेजपुर गॉव शेखइज़ाज उल्ला को इनकी ख़ानक़ाह चलाने

इसके अतिरिक्त अनेक विद्वान व्यक्तिगतरूप सेशिक्षा प्रदान करते थे इनकी विद्वता से प्रभावित होकर अनेक स्थानों सें विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। इनके निवास स्थान ही शिक्षा केन्द्र बन जाया करते थे। सूबा अवध के ऐसे प्रमुख विद्वानों में अमेठी के शेख निजामउद्दीन, काकोरी के शेख भिखन खैराबाद के शेख-उल-हिदवा, अमरोहा के शेख अबन, अवध के मीर अलाउद्दीन, लखनऊ के शेख हम्जा, शेख पीराक, बिलग्राम के शेख अल्हदाद, गोपामऊ के काजी मुबारक आदि थे[3]। इनके निवास स्थान ही शिक्षा केन्द्र बन गये थे।

पाठ्यक्रम –

भक्तब के पाठ्यक्रम के अतगर्त सर्वप्रथम विद्यार्थी को अक्षर ज्ञान तथा शब्द ज्ञान कराया जाता था। जब विद्यार्थी को पढ़ना-लिखना आ जाता था तो उसे कुरान की शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक विद्यार्थी को कुरान कंठस्थ करना पड़ता था। इसके उपरान्त इनको अरबी तथा फारसी का व्याकरण पढाया जाता और शेखसादी द्वारा रचित 'गुलिस्तान' और 'बोस्तान' का अध्ययन करवाया

के लिए प्रदान किया जाये। कैलेंडर आफ ओरियन्टल रिकार्डस, भाग- १, इलाहाबाद पृ० ८८

1 निजामी, खलीक अहमद- पूर्वोद्धृत, पृ० ८०-८१
सहाय, बी०के० - पूर्वोद्धृत, पृ० ६

2 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, अनु० जैरेट एव सरकार, कलकत्ता, १९४८ ई०, भाग-३, पृ० ५३१

3 बदायुँनी अब्दुलकादिर- मुन्तखब- उत्तवारिख, अनुवादक डब्ल्यू हेग, भाग-३, कलकत्ता, १९२५ ई०, पृ० २७, ४३, ४५, ६३, १०१, १०४, १०५, १३२, १३४, १३५, १८८, ४१०

जाता था[1]। विद्यार्थियों को कुछ कवितायें जैसे युसुफ जुलेखा, लैला और मंजनू, सिकन्दर नामा[2] आदि पढाये जाते थे। सम्राट अकबर ने पाठ्यक्रम में कुछ अन्य उपयोगी विषयों को सम्मिलित किया था। विद्यार्थी के कुछ बड़े होने पर प्रारम्भिक गणित, बोलचाल का ढंग, पत्र व्यवहार, आवेदन-पत्र लिखना, घरेलू विषय, रियाजी (मात्रा विज्ञान) सरकारी कानून, इतिहास आदि की शिक्षा दी जाती थी[3]। सुलेख पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

मकतब की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए मदरसे में प्रवेश लेता था। उस समय कोई विशेष रस्म अदा नहीं करना होता था। इस काल में शिक्षा पर धर्म का प्रभाव अत्यधिक रहा। सभी स्थानों पर पढ़ाये जाने वाले मुख्य विषय धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, हदीस (परम्परायें) व्याकरण, साहित्य, शब्द विज्ञान, तर्कशास्त्र, कलाम आदि पारम्परिक विषय थे। मुगल सम्राट बाबर तथा हुमायूँ के समय तक पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अतः पाठ्यक्रम में मुस्लिम धर्मशास्त्र तथा अन्य परम्परागत विषयों की ही प्रधानता रही[4]।

सम्राट अकबर मध्य युगीन भारत का प्रथम शासक था जिसनें पाठ्यक्रम में सुधार की आवश्यकता को समझा। उसे भारत में इस्लामी शिक्षण संस्थाओं

---

1 जाफर, एस०एम०- सम कल्चरल आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इडिया, दिल्ली, १६७२ ई०, पृ० ७६

2 रशीद,ए- पूर्वोद्धृत, पृ० १५१-१५२, रावत, पी०एल०- हिस्ट्री आफ एजूकेशन, आगरा, १६५६ ई०, पृ० ६३

3 अबुल फजल - आईन-ए-अकबरी, अनुवादक एच० ब्लाकमैन, भाग-१, कलकत्ता-१६३६, पृ० २८६

4 श्रीवास्तव, ए०एल०- अकबर महान्, अनुवादक भगवानदास गुप्त, भाग-२, आगरा, १६७२ ई० पृ० ३०७

का एक सापन नहीं भाया। मदरसों में जो विषय पढ़ाये जाते थे, उनसे छात्रों मेंवह उदार मनोवृत्ति और दृष्टिकोंण नहीं विकसित हो पाता था जिसका भारत जैसे हिन्दू प्रधान देश के नागरिकों को आवश्यकता थी। अतएव अकबर ने पाठ्यक्रम में सुधार करने का प्रयास किया और यह निश्चित किया कि "हर विद्यार्थी को नैतिक शिक्षा, गणित, गणित के विशेष कायदें, कृषि, ज्यामिति, रेखा गणित, शरीर विज्ञान, गृहविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, औषधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, तब्बी (भौतिक विज्ञान), रियासी (मात्रा विज्ञान), इलाही (धर्मशास्त्र) अन्य विज्ञान तथा इतिहास की पुस्तकें पढ़नी चाहिए और इन सभी का ज्ञान धीरे-धीरे प्राप्त कर लेना चाहिए[1]"। अकबरने हिन्दू विद्यार्थी के लिए निर्देश दिया कि "संस्कृत विद्यालयों के छात्रों को व्याकरण, न्याय, वेदान्त और पतंजलि का भाष्य पढ़ना चाहिए। उसने इस बात पर बल दिया कि " किसी को भी इन विषयों की जिनकी इस समय आवश्यकता है, उपेक्षा नहीं करनी चाहिए[2]।" यह वास्तव में मदरसों के पाठ्यक्रम में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ही था। जो अकबर के पूर्व समय में केवल मुस्लिम धर्मशास्त्र और पाठ्य विषयों को तो पढ़ाते चले जा रहे थे। पर भारत से सम्बन्धित विषयों की अवहेलना करते रहे थे। अकबर ने हिन्दी, भारतीय इतिहास और हिन्दू दर्शन के पढ़ाये जाने पर भी विशेष बल दिया। वह अपने इन सभी निर्देशों को गम्भीरता से पालन कराने को उत्सुक था जैसा इस से पता चलता है कि उसने स्वयं अपने पुत्रों और पौत्रों को इन विषयों को पढ़ाये जाने की व्यवस्था की थी उदाहरण के लिये अकबर का सबसे छोटा पुत्र दानियाल हिन्दी का विद्वान था और हिन्दी में कविता करता था[3]। उसका पौत्र शाहजहॉ खुसरों शिवदत्त से हिन्दू दर्शन पढ़ता था। शिवदत्त को

---

1 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २८६

2 वही, - पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० २८६

3 जहाँगीर- तुजुक-ए-जहाँगीरी, अनुवादक रोजर्स एवं बेवरिज, भाग-१, पृ० ३६

अपने युग का भट्टाचार्य कहा जाता था उस शास्त्र में कुछ ही उसके जोड़ थे[1]। शिक्षा के मामले में अकबर किन्हीं जातिय, धार्मिक, भाषावार और भौगोलिक सीमाओं को नहीं मानता था। यहॉ तक कि उसने जैसुइट पादरी मॉसरेट को अपने पुत्र मुराद का शिक्षक नियुक्त कर दिया था और वह उसे पुर्तगाली भाषा सिखाता था[2]।

मुगलकालीन उच्चशिक्षा के पाठ्यक्रम पर मुगल शासकों के व्यक्तिगतरूचियों का प्रभाव रहा। बाबर ने गणित, ज्योतिष तथा भूगोल के अध्ययन की व्यवस्था किया। हुमायूँ के शासन काल में ज्योतिषशास्त्र, काव्य, खगोलशास्त्र, गणित, भूगोल जैसे विषयों को प्राथमिकता प्रदान की गई। अकबर ने ज्योतिष शास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र, दर्शन व चिकित्साशास्त्र के अध्ययन पर विशेष बल दिया। शाहजहॉ ने साहित्य, इतिहास, गणित, छन्दशास्त्र और लेखनकला जैसे विषयों के प्राथमिकता प्रदान किया[3]। औरगजेब के शासनकाल में इतिहास, भूगोल, युद्धकला, राजनीति, दर्शनशास्त्र कूटनीति आदि विषयों के अध्ययन पर बल दिया गया[4]।

मुगलकाल में सभी शिक्षण संस्थाओं में पाठ्यक्रम और अध्यापन प्रणाली लगभग एक जैसी थी लेकिन कुछ शिक्षा केन्द्र किसी एक विषय के विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध थे उदाहरण के लिए पंजाब नक्षत्र शास्त्र और गणित, दिल्ली

---

1 अबुल फजल- अकबरनामा, अनुवादक एच० बेवरिज, दिल्ली, १९७३, भाग-३ पृ० ६६५

2 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २८८-८९

3 सक्सेना, बी०एम०- मुगल सम्राट शाहजहॉ, पृ० २५८, प्रो० राधेश्याम- मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, इलाहाबाद, १९८७ ई०, पृ० २९२

4 रावत, पी०एल०-पूर्वोद्धृत, पृ० ६६

इस्लाम की परम्पराओं, रामपुर तर्कशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्र तथा लखनऊ न्यायशास्त्र एवं सदाचार की शिक्षा के लिये देश में विख्यात था[1]।

मुगल कालीन सूबा अवध के मदरसों में जो पाठ्यक्रम प्रचलित था। उसका अनुमान १८वीं सदी के पाठ्यक्रम से हो सकता है। यह पाठ्यक्रम लखनऊ में फिरंगी महल के प्रसिद्ध विद्वान् मुल्ला निजामुद्दीन १८वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में निश्चित किया था, यह उस पाठ्यक्रम पर आधारित था जो कि इस देश में मुस्लिम शासन के प्रारम्भ में प्रचलित था। इस पाठ्यक्रम के 'दर्ज-ए-निजामी' कहते थे। इसमें ग्यारह विषय सम्मिलित किये गये और सबके लिए अलग- अलग पुस्तकें थीं। ये विषय निम्नलिखित हैं-

१. सर्फ (विभक्ति और क्रिया पदों के रूप) इनमें मिज़ान, मुशैव, सर्फ़े मीर, पंचगज, जुबदा, फसूल-ए-अकबरी और शफ़िया पुस्तके पढ़ायी जाती थी।

२. नह्व (व्याकरण और वाक्य रचना), इसकी नह्व मीर, शरह-ए-भाता, आमिला, हिदायतुन, नह्व क़ाफ़िया, शरह-ए-जामी मान्य पुस्तकें थीं।

३. मन्तीक (तर्कशास्त्र), इसकी शुग़रा कुब्रा, इसाग़ोजी तहजीब, शर्फ-ए-तहज़ीब, क़ुतुब-ए-मा, मीर और सल्लामत उल्मा पुस्तकें थीं।

४. हिकमत (दर्शन शास्त्र), इसमें मैबाज़ी, सद्र, शम्स-ए-वज़ीगा पुस्तकें पढ़ायी जाती थी।

५. रियाजी (गणित) इसकी पुस्तकें थी- खुलासा, तुल हिसाब, तहरीरे उकलीद्स, मक़ालैउला, तशरी उल अफलाक, रिसाल-ए-कौशजिया, शरहे चगमानी बाने अब्बल।

---

1 कीय, एफ०ई०- एहिस्ट्री आफ एजूकेशन इन इडिया एण्ड पाकिस्तान, कलकत्ता, १९५९, पृ० १४६, श्रीवास्तव, ए०एल०- मध्यकालीन संस्कृति, पृ० ६४, लूनिया, बी०एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६६७

६. बालागट (साहित्यशास्त्र), इसकी मान्य पुस्तकें थी-मुख्तसिर मानी, मुतव्वल से मानी क़तलुतक।

७. फ़िक़ (न्यायशास्त्र), इसकी किताबे थीं। शरहें वाक्या अब्बलिन हिदाया अखेरिन।

८. उसूल-ए-फ़िक- (न्यायशास्त्र के सिद्धान्त), इसकी मान्य पुस्तकें नरूल अनवर, तौहिद तलविह, मुसल्लीमस सुबूत (मबादी-ए-कल्मा) थी।

९. क़लाम (तर्कविद्या), इसकी मान्य पुस्तकें नसफी, शहर-ए-अक़ैदे जलाली मीर जविद और शरह-ए-मवाक़ीफ थी।

१०. तफ़सीर (धर्म-ग्रन्थ टीका), इसकी मान्य पुस्तकें ज़लालैन और बैज़ाबी थी।

११. हदीस (परम्पराएं), इसका मान्य ग्रन्थ मुश्क़ात अल्मासवीह था।

कुछ समय बाद चार विषय और भी इस पाठ्यक्रम में जोड़ दिये गये थे जो निम्न थे-

१. अदब (साहित्य), इसकी पुस्तकें नफ़हत-उल-यमन, सबा मुअल्लाका, दीवान-ए-मुत बी, मुक़ामत-ए-हरीरी और हमसा थी।

२. फ़रायज़ (कर्तव्य) इसकी पुस्तक शरीफ़िया थी।

३. मनाज़रा (वाद-विवाद), इसकी कोई निश्चित पुस्तक न थी।

४. उसूले ह्दीस (ह्दीस के सिद्धान्त)

मुगलकाल में सैनिक शिक्षा का भी अत्यधिक महत्त्व था। शासक वर्गो में सैन्य शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। सैनिक शिक्षा के लिए संस्थाएँ स्थापित की गई थीं जहाँ योग्य प्रशिक्षिकों द्वारा घुड़सवारी तलवार

चलाना, भाला चलाना, घेरा डालना आदि की शिक्षा दी जाती थी। साधारण सैनिकों को भी इसी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी[1]।

शिक्षण विधि –

इस काल में प्राथमिक स्तर पर मकतब में शिक्षा बहुत साधारण ढंग से दी जाती थी। बालक को 'कलमा' याद कराया जाता था। इसके बाद विद्यार्थियों को कुरान की कुछ आयतें बतलाई जाती थी[2]। जब बालक की उम्र लगभग सात वर्ष हो जाती थी। तब उसे धार्मिक शिक्षा दी जाती थी और उसे पढ़ना-लिखना और साधारण गणित सिखाया जाता था[3]। अकबर ने शिक्षण पद्धति में परिवर्तन करने का प्रयास किया। उसका विचार था कि विद्यालयों के बालकों को बहुत सी पुस्तकें पढ़ाकर उन्हें याद कराकर काफी समय व्यर्थ किया जाता हैं इसलिये उसने आदेश दिया कि पहले बालक को अक्षर लिखना सिखाया जाय और फिर उनके विभिन्नरूप याद कराये जायें। इसके पश्चात् उसे मिले-जुले शब्द लिखना सिखाया जाय फिर उसे गद्य और कविता पढ़ायी जाय और "ईश्वर की प्रशंसा में कुछ कविता की पंक्तियाँ अथवा अलग-अलग लिखे कुछ वाक्य रटा दिये जाय। परन्तु इसका ध्यान रखा जाय कि वह हर बात स्वयं ही समझना सीखे, शिक्षक उसकी थोड़ी सहायता कर सकता है[4]।" संक्षेप में, अकबर ने इस पर बल दिया कि शिक्षण में प्रमुख भाग शिक्षक का नहीं अपितु विद्यार्थी का होना चाहिए[1] उसने इस प्रकार जैसे आधुनिक शिक्षण पद्धति की पहल की थी, जिसके अनुसार विद्यार्थियों को ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वयं

---

1 रावत, पी०एल०- पूर्वोद्धृत, पृ० १०१-१०२

2 कीय, एफ०ई०- पूर्वोद्धृत, पृ० १०८,१३३

२. कीय, एफ०ई०- पूर्वोद्धृत, पृ०,१३३

३. अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २८८-२८६

परिश्रम करना पड़ता था और शिक्षक का कार्य उन्हें सहायता प्रदान करना था[1]। सम्राट अकबर द्वारा विकसित यह नयी पद्धति अधिक समय तक न चल सकी धीरे-धीरे उसका ह्रास होने लगा। यही कारण था कि औरंगजेब ने अपने शासनावधि में शिक्षा में नये परिवर्तन की आवश्यकता समझा[2]।

मदरसों की शिक्षण विधि प्रायः मौखिक होती थी। शिक्षक व्याख्यान देते थे। और विद्यार्थियों को किताब पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे। तिब्बी (भौतिक विज्ञान), रियाजी और वैज्ञानिक शिक्षा में प्रयोग करने की सूविधा थी[3]। शिक्षक व्यक्तिगतरूप से विद्यार्थियों की शिक्षा पर ध्यान देते थे। यद्यपि मदरसों में योग्य और अनुभवी शिक्षक नियुक्त किये जाते थे।, फिर भी बौद्ध शिक्षा प्रणाली की तरह मानीटर (कक्षा का वरिष्ठ विद्यार्थी या कक्षा नायक) पद्धति प्रचलित थी[4]। इस व्यवस्था से शिक्षक की अनुमति से ऊँची कक्षा के छात्र निचली कक्षा के छात्रों को पढ़ाते थे। इस व्यवस्था को शिक्षक को कठिन परिश्रम के बाद थोड़ा विश्राम मिल जाता था। पढ़ने और लिखने का कार्य अलग-अलग होता था। एक काम पूरा कर लेने के बाद ही दूसरा काम छात्र प्रारम्भ कर सकता था[5]।

सम्राट अकबर इस व्यवस्था में संतुष्ट नहीं था, क्योंकि इससे बहुत समय नष्ट होता था। उसने इस दोष को दूर करने के लिये प्राचीन भारतीय पद्धति का अनुसारण किया और लिखने-पढ़ने का कार्य छात्रों से साथ-साथ लिया जाने

---

[1] अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २८८

[2] रावत, पी० एल० - पूर्वोद्धृत, पृ० ६८

[3] अबुल फजल- पूर्वोद्धृत, भाग-१, पृ० २८६, जाफर, एस०एम०-एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया, पृ० २०

[4] जाफर, एस०एम०- पूर्वोद्धृत, पृ० ५,६, रावत, पी०एल०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६६

[5] जाफर, एस०एम०- वही, , पृ० ६
रावत, पी०एल०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६६

लगा[1]। जिन मदरसों में धर्म, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र और राजनीति जैसे विषयों की शिक्षा दी जाती थी वहाँ विश्लेषणात्मक तरीकों को प्रयोग में लाया जाता था।

मध्यकाल में स्वध्याय की पद्धति भी प्रचलित थी। छात्र अकेले अध्ययन करते थे और समय-समय पर अपने शिक्षक से निर्देश प्राप्त करते थे। इस तरीके में तोते की तरह रटनेकी प्रक्रिया थी[2]।

शिक्षक –

शिक्षक अपनी विद्वता, वात्सल्य, नम्रता व सौम्यता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विद्यार्थी को आर्कषित व प्रभावित करते थे तथा इस बात पर बल देते थे कि अध्ययन काल में छात्र कर्म व वचन से शुद्ध रहते हुए शिक्षा प्राप्त करता रहे। शिक्षकों की ईमानदारी पर कोई सन्देह नहीं करता था। यद्यपि उनकों अधिक पारिश्रमिक नहीं मिलता था, परन्तु समाज के सभी वर्गो के लोग इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे[3]।

मदरसों में उन शिक्षकों का अत्यधिक आदर किया जाता था जो बिना नोट या पुस्तक के व्याख्यान देते थे, लोग उन्हें कई पीढ़ियों तक याद रखते थे। शिक्षक छात्रों से कोई निर्धारित शुल्क नहीं लेता था। किन्तु छात्रगण शिक्षकों को उपहार आदि दिया करते थे। पुराने छात्र अपने जीवन में स्थिर होने पर अपने शिक्षकों को समय-समय पर भेंट आदि भेजते थे। कुछ विद्यार्थी प्रतिदिन अपने शिक्षकों को भेंट दिया करते थे।, चाहे वह भेंट कितनी साधारण

---

1 जाफर, एस०एम०- सम कल्चरल आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, दिल्ली, १९७२, पृ० ७७-७९

2 कीथ, एफ०ई०- पूर्वोद्धृत, पृ० १३६

3 जाफर, एस०एम०- पूर्वोद्धृत, पृ० ४

क्यों न हों[1]। कक्षायें प्रातः काल से दोपहर तक चलती थी और फिर एक घंटे के अवकाश के पश्चात् अपरान्ह में लगा करती थीं। छात्र संध्या को घर चले जाते थे।

छात्रों में सदाचार अनुशासन और विनम्रता अच्छे गुण माने जाते थे। इसका उल्लंघन करने पर उन्हें शिक्षक द्वारा शारीरिक दण्ड दिया जाता था[2]। हलांकि राज्य की और से इस सम्बन्ध में कोई नियम न रहने के कारण शिक्षक दण्ड देने के लिए अपने विवेक से काम लेता था[3]। शिक्षक जहॉ अनुशासन भंग करने पर दण्ड दिया करते थे वहाँ योग्य, कुशल व चरित्रवान छात्रों को पारितोषक देकर प्रोत्साहित भी करते थे।

मुस्लिम शिक्षा पद्धति में परीक्षा की कोई नियमित प्रणाली नहीं थी। शिक्षक अपने छात्रों को योग्यतानुसार ऊँची कक्षा में प्रवेश दे देता था[4]। मदरसे में पूरीशिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद शैक्षणिक विशेषता की सनद या प्रमाण-पत्र दिया जाता था। जिसे दस्तरबन्दी या पकड़ी बाँधना कहते थे[5]। जब शिक्षक यह निश्चित कर लेता कि उसे जितना ज्ञान छात्र को देने था वह प्रदान कर चुका है तो एक विशिष्ट शैक्षणिक समारोह में शिक्षक द्वारा छात्र के सिर पर पगड़ी बाधी जाती थी। इसी प्रकार का समारोह निजामुदीनऔलिया, जो बाद में प्रसिद्ध सूफी संत बने, के लिए हुआ जब उन्होंने मौलाना अलाउद्दीन उसूली के अन्तर्गत अपनी शिक्षा पूरी की थी[6]। वह छात्र जो तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र

---

1 रशीद, ए० पूर्वोद्धृत पृ० १६१

2 जाफर, एस०एम० पूर्वोद्धृत पृ० ८०-८१

3 रावत, पी०एल०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६६

4 रशीद,ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० १६२

5 हुसैन युसुफ- पूर्वोद्धृत, पृ० ६२

6 रशीद,ए०-पूर्वोद्धृत, पृ० १५३

में विशेष योग्यता प्राप्त करते थे उन्हें फाजिल की उपाधि प्रदान की जाती। जो धर्मशास्त्र में विशेष ज्ञान प्राप्त करते थे उन्हें 'आलीम' और साहित्य में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने पर 'काबिल' की उपाधियाँ दी जाती थी। उपाधि वितरण के लिए समारोह का आयोजन किया जाता था[1]।

स्त्री शिक्षा –

मुगल काल में सूबा अवध के समाज में स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचलन नहीं था। अनेक सामाजिक प्रतिबन्ध स्त्री शिक्षा में रूकावट बने रहे। बाल्यवस्था में ही बालिकायें थोडी बहुत शिक्षा घर या मस्ज़िदों से संलग्न मकतबों में प्राप्त कर लिया करती थीं। उच्च एवं समृद्धिशाली परिवारों में हरम में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की भी उचित व्यवस्था होती थी। वह घर. के अन्दर ही शिक्षा प्राप्त करती थी। अधिकांशतः बालिकाओं का विवाह के साथ ही उनका अध्ययन समाप्त हो जाता था। इसके बाद ऐसा कोई कार्य-कलाप नहीं होता था जिससे शिक्षा में उनकी रूचि बनी रहे। निम्न वर्ग के परिवारों की स्त्रियाँ प्रायः निरक्षर होती थीं।

बालिकाओं को पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा तथा गृहविज्ञान की शिक्षा प्रदान की जाती थी। जिसका उद्देश्य साधारण ढंग से लिखना-पढ़ना तथा परिवार चलाना होता था। स्त्री शिक्षा की कोई विधिवत संस्था नहीं रही हलांकि स्त्री शिक्षा की बात से समाज अज्ञात नहीं था। यह किसी-ना-किसी रूप में प्रचलित रही। हरम के अन्दर शिक्षा की समुचित व्यवस्था रहती थी।

---

1 हुसैन, युसुफ- ग्लिम्पसेंस आफ मेडिवल इडिया कल्चर, बम्बई, १९६२, पृ० ९२

हिन्दू शिक्षा –

सूबा अवध में हिन्दू शिक्षा पद्धति पारम्परिक ढंग से काम करती रही और सूबे के विभिन्नभागों में विद्वानों, शिक्षाविदों, अध्यापकों को स्थानीय शासकों, सामान्तों व जमींदारों का संरक्षण प्राप्त होता रहा। हिन्दू शिक्षा पाठशालाओं, टोल या विद्यालय तथा व्यक्तिगतशिक्षकों द्वारा प्रदान की जाती थी[1]। प्राथमिक शिक्षा पाठशलाओं में दी जाती थी। जो अधिकाशतः मन्दिर या मठों से संलग्न होते थे। ग्रामों में फसल कटने के समय दिए गये पारम्परिक अनुदानों से यहाँ के प्राथमिक शिक्षण केन्द्रो की व्यवस्था होती थी[2]। उच्च शिक्षा के लिए टोल या चतुष्पदी था। जिसे चौपारी के नाम से भी पुकारा जाता था। इनकी व्यवस्था अनुदानों से होती थी। यह विद्यालय हिन्दू जनसंख्या वाले क्षेत्रों में स्थापित थे। सूबा अवध में हिन्दू शिक्षा का मुख्य केन्द्र उन्हीं स्थानों पर स्थित था, जहाँ हिन्दू तीर्थ तथा सुप्रसिद्ध विद्वानों का निवास था। इसके लिए हिन्दू लोग तीर्थो तथा अन्य पवित्र स्थानों को पसन्द करते थे। क्योंकि तीर्थयात्रियों से विशेष सहायता प्राप्त होने की अपेक्षा रहती थी। इस प्रकार जीवन-यापन की समस्या से निश्चिन्त होकर यहाँ शिक्षक विद्या अध्ययन तथा अध्यापन के कार्य में लगे रहते थे। अयोध्या हिन्दू शिक्षा का सुप्रसिद्ध केन्द्र था।

---

1 ओझा, पी०एन०- सम आस्पेक्ट्स आफ नार्दन इडिया सोशल लाइफ, पटना, १९६१ ई०, पृ० ६४, सहाय, बी०के०- पूर्वोद्धृत, पृ० ४६, बनारसीदास- अर्थकथानक, सम्पादक नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९५७ ई०, पृ० ४८

2 ओझा, पी०एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० ८०, श्रीवास्तव, ए०एल०- मध्य कालीन संस्कृति, पृ० ६६

हिन्दू बालकों को उपनयन संस्कार के बाद अक्षर बोध कराया जाता था[1]। उसके बाद तख्ती पर हरि या ॐ या श्री लिखवाकर उसका विद्याध्ययन प्रारम्भ होता था। इसके लिए शुभ तिथि और समय ज्योतिष से परामर्श करके निश्चित की जाती थी।

पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को अक्षर बोध, पढ़ना-लिखना, साधारण गणित तथा धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। इसके पश्चात् व्याकरण का ज्ञान करवाया जाता था। पाठशाला की शिक्षा से विद्यार्थी बहुत कुछ सीख जाता था। व्यापारियों के लड़के प्राथमिक शिक्षा से ही इतने निपुण हो जाते थे कि अपना व्यापार संभाल लेते थे[2]। छात्रों को बाँटो और पैमानों का ज्ञान भी कराया जाता था। प्राथमिक स्तर पर छात्र पेन्सिल या स्याह तख्ते का प्रयोग नहीं करते थे लिखने के लिए लकड़ी की पट्टियों पर खड़िया या घुली हुई खड़िया मिट्टी का प्रयोग करते थे। छात्र चटाइयों में बैठकर शिक्षा प्राप्त करते थे और शिक्षक चौकी पर बैठते थे। विद्यार्थियों के सुन्दर लिखावट पर बल दिया जाता था।

उच्चशिक्षा टोल या विद्यालय में प्रदान की जाती थी[3]। इन विद्यालयों में छात्रों को संस्कृतभाषा, साहित्य, पुराण, वेद, दर्शनशास्त्र, आर्युविज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, खगोलविज्ञान आदि का अध्ययन कराया जाता था[4]। उच्च कक्षाओं में लिखने के लिए छात्र स्याही और कागज का प्रयोग करते थे। हिन्दू गणित में विशेष रूप से निपुण होते थे। गणित के कठिन प्रश्नों का समाधान

---

1 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० २८८-२८६, जहाँगीर- तुजुक ए-जहाँगीरी अनुवादक रोर्जस एवं बेवरिज, भाग-१, पृ० ३५७

2 बनारसीदास- अर्धकथानक, पृ० २७

3 सहाय, बी०के० पूर्वोद्धृत, पृ० ३२-५५

4 श्रीवास्तव, ए०एल०- मध्यकालीन संस्कृति, पृ० ६६

बड़ी निपुणता के साथ मौखिक रूप सेही कर लेते थे। ब्राह्मण ज्योतिष में बड़े कुशल थे और वे सूर्य ग्रहण या चन्द्रग्रहण के मिनट-मिनट के समय का सही अनुमान लगा लेते थे। ये मौसम विज्ञान में भी अच्छी जानकारी रखते थे तूफान आने या वर्षा होने का पूर्वानुमान करते थे।

मुगलकाल में हिन्दू शिक्षण विधि भी प्रायः मौखिक होती थी। प्राथमिक स्तर में शिक्षक छात्रों को संस्कृतके अक्षरों की जानकारी देता था। बाद में संयुक्ताक्षर और कठिन शब्द बताए जाते थे। इसके पश्चात् पुस्तकों से चुने हुए शब्दों को लिखाया जाता और उसका अर्थ समझाया जाता था। अन्त में व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। उच्च शिक्षण पद्धति में व्याख्यान तथा स्वाध्ययन पद्धति प्रचलित थी। शिक्षण संस्थाओं मे शिक्षक प्रत्येक छात्र पर ध्यान देता था तथा उसके सन्तुलित विकास में सहयोग प्रदान करता था। शिक्षा प्रदानकरने के लिए शिक्षक छात्रों से कोई शुल्क नहीं लेता था क्यों कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार विद्यादान श्रेष्ठ कार्य माना जाता था किन्तु छात्रों को गुरूओं की सेवा करनी पड़ती थी और विशेषकर त्यौहारों , पर्वो आदि पर कभी-कभी उपहार भी देने पड़ते थे।

कक्षायें प्रातःकाल से प्रारम्भ होती थी। सर्वप्रथम छात्रों को पहले दिन का पाठ दोहराना पड़ता था। उसके पश्चात् ही नया पाठ प्रारम्भ किया जाता था। जो छात्र अपना पाठ याद नहीं करते थे या कामचोरी करते और उचित व्यवहार नहीं करते, उन्हें शारीरिक दण्ड दिया जाता था। उन दिनों यह माना जाता था कि दण्ड न देने से छात्र बिगड़ जाता है। अपराधी छात्र को कभी-कभी कक्षाएं समाप्त होने के पश्चात् एक-दो घण्टे रोक लिया जाता था, और कभी उन्हें कष्टदायक आसनों का दण्ड दिया जाता था[1]।

---

1 ओझा, पी०एन०- पूर्वोद्धृत, पृ० ८८-८९

सूबा अवध के हिन्दू विद्वान तथा सन्त व्यक्तिगतरूप से अपने निवास स्थान में शिक्षा प्रदान करते थे। यहाँ दूर-दूर से छात्र वेद, पुराण, उपनिषद, दर्शनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करने आया करते थे। सम्राट अकबर ने १५८० ई० में सभी जातियों के विद्वानों को भूमि और नगद अनुदान देने की व्यवस्था की। अकबर की इस नीति से हिन्दू शिक्षा का भी प्रसार हुआ[1]।

हिन्दू शिक्षण संस्थाओं में भी कोई वार्षिक परीक्षा की व्यवस्था नहीं थी। शिक्षक का अपने छात्रों के साथ निकट सम्पर्क होता था। अतः उसकी योग्यता का अनुमान लगाने में उसको कठिनाई नहीं होती थी। इसी आधार पर वह छात्र को उँची कक्षा में उत्तीर्ण कर देता था। विशिष्ट छात्रों को शिक्षक अपने ढंग से परीक्षा लेकर सार्वभौम, पीयूषवर्ष, पक्षधर, उपाध्याय, महामहोध्याय आदि उपाधियॉ प्रदान करता था।

स्त्री शिक्षा –

हिन्दू समाज में स्त्री शिक्षा की कोई नियमित व्यवस्था नही थी। अनेक सामाजिक प्रतिबन्धों ने उनकी स्वतंत्रता को सीमित कर दिया था। बाल्यवस्था में बालिकायें बालकों के साथ पाठशालाओं में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर लिया करती थीं। उनके लिए किसी प्रकार के अलग विद्यालय की व्यवस्था नहीं थी। सम्पन्न परिवारों में बालिकाओं की शिक्षा के लिए अलग से अध्यापिकायें नियुक्त कर दी जाती थी[2]। बालिकाओं को घर में ही कुशल गृहणी बन्ने के लिये घरेलू

---

1 श्रीवास्तव, ए०एल०- अकबर दी ग्रेट, भाग-३, पृ० २३६-२४०

2 श्रीवास्तव, ए०एल०- मेडिवल इण्डिया कल्चर, आगरा, १९६४ ई०, पृ० ११३, मध्यकालीन संस्कृति, पृ० ६६

काम-काज कि शिक्षा दी जाती थी[1]। इस प्रकार की पूर्णशिक्षा वह माँ के घर से सीख कर आती थी। विवाह के पश्चात् पति के आय व्यय का हिसाब तथा सीमित आय में ही गुजारा करने की शिक्षा उसे सास के द्वारा मिलती थी। इससे केवल मौखिक गणित का ज्ञान हो पाता था[2]। उच्च वर्ग तथा मध्यम वर्ग की महिलायें सामान्यतः साक्षर होती थीं। उन्हें संस्कृतव हिन्दी भाषाओं का ज्ञान होता था, जिससे वे धर्म ग्रन्थ पढ़ने में समर्थ होती थीं। इस काल में अनेक हिन्दू स्त्रियों ने विविध विषयों पर कवितायें लिखीं।

---

[1] कीय, एफ०ई०- पूर्वोद्धृत, पृ० ७३, मनुस्मृति, मेधा तिथि की टीका के साथ, कलकत्ता, १६३२, भाग-४, पृ० ११

[2] कीय, एफ०ई०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६४

साहित्य

सूबा अवध अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के लिये प्रख्यात था। मुगल राज्य के संरक्षक एवं प्रोत्साहन नीति से साहित्य का अत्यधिक विकास हुआ। मुगल शासक स्वयं विद्वान तथा विद्याप्रेमी थें अतः वह लेखको व विद्वानों को प्रोत्साहन प्रदान करते रहे। इस काल में अमीरो, जमींदारों व धनी व्यक्तियों द्वारा भी विद्वानों को संरक्षण मिलता रहा।

मुगल काल में अवध क्षेत्र में फारसी ,अरबी व उर्दू भाषाओ के साहित्य के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य का भी विकास हुआ[1]। भक्ति तथा सूफी आंदोलन के प्रभाव स्वरूप सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति में परिवर्तन के साथ साहित्य धारा में भी नया मोड़ उपस्थित हुआ। विद्वानों तथा सन्त कवियों ने धर्म प्रचार करने के लिये ईश्वर स्तवन मे ही अपने काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया। इन्होनें धार्मिक महत्त्व सम्पन्नतीर्थ स्थान को अपना केन्द्र बिन्दु बनाया और अपने निवास स्थान की भाषा में साहित्यों की रचना की। धीरे-धीरे इन केन्द्रो की भाषा ने साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर लिया। अवध क्षेत्र में जिस क्षेत्रीय भाषा को प्रधानता मिली उसमें अवधी भाषा प्रमुख थी। इसके अतिरिक्त , ब्रजभाषा , फारसी ,अरबी, उर्दू , भाषा मे भी साहित्यों की रचना की गई। 'अवधी भाषा का सर्वप्रथम उल्लेख अमीर खुसरो ने 'नूह सिपेहर' में किया है। भारत की कई भाषाओं के नाम जो भिन्न-भिन्न भागों मे बोली जाती हैं उनमें अवधी का भी उल्लेख किया है[2]। सिन्धी, लहौरी, कश्मीरी, भावरी, धीरसमुद्री ,तिलगी ,कुबरी, गोरी, माबरी, गुजरी, बंगाली तथा अवधी भारत वर्ष में भिन्न-भिन्न

---

1 लूनिया ,बी०एस० - मुगलकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भोपाल, १६७१ ,पृ० ११-१३

2 रिज़वी,एस०ए०ए० -खिलजी कालीन भारत, अलीगढ़, १६५४ ई०, पृ० १८०-८१

भागो में बोली जाती थी। संस्कृत भाषा का प्रयोग केवल ब्राह्मण करते है[1]। अवधी भाषा को यह नाम अवध प्रदेश की भाषा होने के आधार पर मिला था[2]।

समाज में बोलचाल का ढंग और वार्तालाप सामाजिक रीति रिवाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक विकसित और सभ्य समाज अपनी भाषा मे विकास करता है। कुछ इसी प्रकार की स्थिति अवधी की भी थी। कुछ विद्वानों ने १२वीं से १४वीं शताब्दी के प्राकृत अपभ्रंश के ग्रंथों 'राउलवेल' 'उक्तिव्यक्ति प्रकरण' तथा 'प्राकृत पैगलम' आदि में अवधी के प्रारम्भिक रूप में ढूढने का प्रयास किया है[3]। जिस प्रकार प्रत्येक भाषा की उत्पत्ति और विकास मे बहुत समय लगता है, और उस भाषा पर तत्कालीन समाज में प्रचलित भाषाओं का भी प्रभाव पड़ता है। उसी प्रकार अवधी भाषा की भी उत्पत्ति और विकास मे अनेक प्रवाहो का समावेश रहा। उपरोक्त काव्यों में अवधी का जो रूप और पूर्व रूप प्राप्त होता है। वे अपने आप में किसी भाषा का पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं करते अतः इन्हें कोई विशिष्ट नाम न देकर अवधी की निकटतम पूर्वज भाषा कहा जा सकता हैं[4]। १४वी शताब्दी में अवधी भाषा का जो सुनिश्चित स्वरूप मुल्ला दाउद की रचना चंदायन मे मिलने लगता हैं ,उसका रूप प्राकृत पैगलम् के कुछ छन्दो राउलवेल और उक्तिव्यक्ति प्रकरण में मिल जाता है। अतः भाषा के विकास क्रम की दृष्टि से इन रचनाओं की भाषा और अवधी भाषा में गहरा सम्बध है। यह भाषा अवधी के कई-कई पूर्व रूपों से युक्त है[5]। १४वीं शताब्दी

---

[1] वही, पूर्वोद्धृत

[2] सक्सेना, बाबूराम -. इवाल्यूशन आफ अवधी, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, १६३७ ई० पृ० ६

[3] त्रिपाठी,विश्वनाथ-प्रारम्भिक अवधी का अध्ययन, इलाहाबाद, १६७२ ई०, पृ० ६-१०

[4] त्रिपाठी, विश्वनाथ -पूर्वोद्धृत,पृ० २२-२८

[5] त्रिपाठी,विश्वनाथ-पूर्वोद्धृत,पृ० २२-२८

के पूर्व भी अवधी भाषा का साहित्य किसी-ना-किसी मात्रा में अवश्य विद्यमान होगा उसके प्रारम्भिक रूप में छिट-पुट रचनायें यंत्र-तंत्र अवश्य पायी जाती है[1]।

मुगल काल मे अवधी भाषा में अनेक श्रेष्ठ काव्यों की रचना हुई। यह समय अवधी साहित्य का स्वर्ण युग रहा। जिनका सूत्रपात सुफियों के उत्कृष्ट प्रेमाख्यान• काव्यों से हुआ। आलोच्य कालीन अवधी साहित्य को

---

1 वही, - पूर्वोद्धृत ,पृ० १- ३०

• सूफियों ने ईश्वर तक पहुचने के लिये प्रेम का आश्रय लिया। उन्होनें व्यक्ति तथा ईश्वर के मध्य प्रेमी तथा प्रियतमा का सम्बंध स्थापित किया। उनके अनुसार प्रेमी (आशिक़) प्रेम के द्वारा ही अपनी प्रियतमा (माशूका) के निकट पहुँच कर उसमें विलीन (फ़ना) होकर अंतिम अवस्था 'बका' में पहुँच सकता है या आत्मा का परमात्मा में आत्मसात् हो जाता है। सूफियों ने अपने सिद्वांतो तथा साघनाओं के निरूपण के लिये ऐतिहासिक तथ्यों लोक-कथाओं तथा काल्पनिक भावनाओं के आधार पर प्रेमाख्यानों की रचना किया। सूफी कवियों की भावना सूफीवाद के सिद्वातों पर आधारित थी। अतः उनकी रचनाओं से उनके आध्यात्मिक विचारों का परिचय मिलता है। सूफी प्रेमाख्यान के प्रत्येक रचियता उसे प्रारम्भ करते समय ईश्वर की स्तुति करते है और उसकी सृष्टि रचना के कार्य का कुछ न कुछ परिचय देते है। फिर वह क्रमशः हजरत मुहम्मद और उनके चार खलीफाओं का प्रशंसात्मक उल्लेख करते है। और अपने पीर गुरू का परिचय देते है। इसके अनंतर कवि अपने समकालीन बादशाह की प्रशंसा करते है। और तब अपना पता बता देते है। बड़ी-बड़ी प्रेमाख्यानों मे ये सारी बाते विस्तारपूर्वक दी गयी है। और छोटी कहानियों मे इनमें से एकाध बाते छोड़ दी गयी है। कथा के प्रधान पात्रों के स्थान एवं परिवार आदि का भी

अध्ययन की सुविधा के लिये को चार भागो में विभाजित किया है। प्रेम काव्य, सन्त काव्य,राम काव्य, कृष्ण काव्य, इन काव्यों के अधिकांश कवि अवध क्षेत्र के निवासी थें या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनका सम्बध किसी न किसी रूप में इस क्षेत्र से अवश्य था[1]।

सूफी प्रेमाख्यान –

भारत में मुसलमानों के आगमन के साथ ही सूफी साधको का भी प्रवेश हुआ। अब तक सूफी काव्य अरब और फारस में प्रचलित थे। और इनकी रचना अरबी फारसी ,तुर्की आदि भाषाओं मे की जाती रही । भारत में आने के बाद यहाँ की सभ्यता ,संस्कृति ,भाषा, जन-जीवन आदि का प्रभाव सूफी काव्यों पर विशेष रूप से पड़ा जिससे सूफी काव्यों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। भारत में सूफियों ने अपने मत के प्रचार और प्रचार के लिये अरबी, फारसी के

कुछ न कुछ परिचय दिया गया है। काव्य में नायक व नायिका के प्रेमभाव का गंभीर्य प्रदर्शित करने के लिये उनका लगन के आरम्भ हो जाने पर, बहुधा उनके विरह का वर्णन पूरे विस्तार के साथ किया गया है। और उसमें बारहमास तक आ जाते है। कथा के अंत मे संयोग हो जाने पर, कभी-कभी उसे दुःखान्त भी बना दिया गया है। जिसका प्रभाव संसार की अनित्यता पर भी पडता है। कवि मंझन ने अपनी रचना मंधुमालती के अंत में इस बात का खुद प्रगट किया हैं कि कवि लोग प्रायः दुःखान्त कहानियां लिख दिया करते है। उन्होंने स्वयं सुखान्त रचना ही है। आगे चलकर जान कवि ने भी ऐसा किया है। चतुर्वेदी परशुराम सूफी काव्य संग्रह, प्रयाग सम्वत् २०१३, पृ० ६६-७०

1 चतुर्वेदी, पशुराम सूफी काव्य संग्रह सम्वत् २०१३, पृ० ६६- ७०

अतिरिक्त सूफी काव्यों की रचना की क्षेत्रीय भाषाओं मे भी करने लगे[1]। इनके लिये संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, आदि भाषायें दुरूह थी। साथ ही यह जन साधारण के के लिये सहज रूप से ग्रहण भी नही थी। अवध क्षेत्र के सूफी सन्त व कवियों ने अधिकांशतः अवधी भाषा को अपने काव्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इस भाषा की कोमलता और मधुरता वर्ण्य विषय के सर्वथा अनुकूल थे। सूफी कवियों के कथानक जो अब तक अरब और फारस से संबधित थें वह अब प्रायः भारतीय होने लगें। इन सूफियो ने भारतीय लोक-गाथा की भांति चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन , साक्षात् दर्शन, तथा सौदर्य कथन के माध्यम से प्रेम की अभिव्यजना किया। भारतीय जीवन और संस्कृति के चित्रण के साथ-साथ ऋतुवर्णन, बारामासा, गृहस्थ जीवन की समस्याओं का उल्लेख किया। इनके प्रेमाख्यानों में ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा कल्पना भावों को ही विशेष महत्त्व दिया है[2]। अवधी के प्रमुख सूफी कवियों और उनके प्रेमाख्यानों का विवरण निम्न है।

मौलाना दाऊद –

अवधी भाषा के सूफी प्रेमाख्यानों की काव्य परम्परा का प्रथम ग्रन्थ (अब तक ज्ञात काव्यो में) मुल्ला दाउद कृत चंदायन है[3]। चंदायन की अब तक तीन प्रतियां प्रकाश मे आ चुकी है[4]। मौलाना दाउद जौनपुर के डलमऊ (डलमौ)

---

[1] तिवारी, मुक्तेश्वर- मध्यकालीन सूफी और संत साहित्य, इलाहाबाद १९८४, पृ० ७५- ७८

[2] चतुर्वेदी पशुराम सूफी काव्य संग्रह पृ०-६१

[3] चतुर्वेदी ,पशुराम-सूफी काव्यय संग्रह, पृ० ६२- ६८

[4] विश्वनाथ प्रसाद(सम्पादक) चंदायन,आगरा, १९६३ ई०, डॉ० परमेश्वरीलाल (सं०) चंदायन, बम्बई, १९६४ ई०, डॉ० माता प्रसाद गुप्त (सं०) चंदायन, आगरा, १९६७ ई०

नामक स्थान के रहने वाले थे। इन्होंने १३७६ ई० (७८१ हिजरी) में चंदायन काव्य की रचना किया[1]।

अब्दुल कादिर बदायूँनी के अनुसार" फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में वजीर मलिक मकबूल खाने जहाँ की मृत्यु के बाद यह पद तथा उपधि उसके पुत्र जूनाशाह को प्राप्त हो गयी उनके सम्मान में दाउद ने लौरिक तथा चंदा की प्रेमकथा पर आघारित चंदायन की रचना किया[2]। यह कथा बुदेलखण्ड छत्तीसगढ़ ,रायपुर मिर्जापुर आदि क्षेत्रों मे लोकगाथा के रूप में प्रचलित थी। कवि ने इस रचना के लिये लोकगाथा के स्थूल रूपरेखा का आश्रय लिया पर उसने उसके विस्तारो को भिन्न रूप मे भरा, यह नवीनता दाउद का निजी कर्तृत्व था[3]। चंदायन की कथा स्वयं मे बड़ी अनूठी थी। इसे नायिका प्रधान काव्य भी कहा जा सकता है। इसके सभी पात्र चांद को केंद्र बनाकर अपना

---

[1] मौलाना दाउद ने अपनी रचना के स्तुति खण्ड में इसकी रचना तिथि इस प्रकार दी है।

बरिस ज्ञात से होई इक्यासी। तिहि याह कवि सरसेठ भासी।
साहि फिरोज दिल्ली सुलतानू। जौना साहि वजीर बाखानू।।
दलमउ नगर बस नौरंगा । ऊपर कोट तले वह गंगा।।
धरमी लोग बसहि भगवन्ता । गुरूगाहक नागर जसवन्ता।।
मलिक बयां पुतु उधारन धीरू। मलिक मुबारक तहा कमीरू।।
दाऊ चेह कवि गाई, मन महि लेहु बिचारि
जुरत बोलु चित राखहु टूटत लेहु सँवारि।।

गुप्त कालीन परमेश्वरीलाल,सम्पादक चंदायन पद-१७,पृ० १३

[2] बदायूँनी ,अब्दुल कादिर-मुन्तखब-उल-तवारीख, अनुवाद एस०ए० रेकिंग, भाग-१, पृ० ३३३

[3] गुप्त, माताप्रसाद -चंदायन, पृ० ३६

कार्य करते है सामान्यतः प्रेमकाव्यों म नायक-नायिका की और आकर्षित होता है और उसे प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता है, किन्तु इसमें चांद ही लोरिक को प्राप्त करने के लिये प्रवृत दिखती है। इस प्रेमाख्यान मे प्रेम की पुकार ,विरह व्याकुलता, आत्मसपर्मण आग्रह, प्रिय के लिये सर्वस्व त्याग के भावों की प्रधानता है। काव्य में तत्कालीन मंदिरो, मठो, योगियो मे आयी बुराइयों की और भी ध्यान दिया गया है। काव्य में सूफी तत्व विद्यमान है। दाउद स्वयं सूफी थे अतः सूफी सिद्वान्तों का निरूपण करने के लिये ही उन्होनें चंदायन की रचना किया[1]।

इस लोकप्रिय कथानक को लेकर दक्खिन के प्रसिद्व कवि गव्वासी ने अपने प्रेमाख्यान 'मैना सतवन्ती' कवि साधन ने 'मैनासत,' दौलत काजी ने बंगला प्रेमाख्यान 'सती मैना' और 'लोर चन्द्राणी' तथा फारसी कवि हमीदी ने 'अस्मत नामा' प्रेमाख्यान की रचना की। इससे इस प्रेमाख्यान की लोकप्रियता का अनुमान हो जाता है। शुद्व प्रेमाख्यान की दृष्टि से चंदायन अवधी के प्रारम्भिक प्रेमाख्यानों मे आज भी विद्यमान है काव्य की भाषा सीधी सादी और तद्भव बहुल अवधी है।

कुतबन –

कुतुबन सूफी प्रेमाख्यान परम्परा के उत्कृष्ट कवि थे। इन्होनें १५०३ ई०(६०६ हिजरी) में मृगावती प्रेमकाव्य की रचना किया[2]। इनको जौनपुर के

---

[1] तिवारी, मुक्तेश्वर मध्यकालीन सूफी और सन्त साहित्य, इलाहाबाद, १६८४, पृ० ६८

[2] मृगावती के रचनाकला का उल्लेख स्वयं कवि ने किया है। " इनहि के राज एहि रे हम रहे। नौ से नौ जौ सवंत ऊं है डा० माता प्रसादउ गुप्त (सम्पादित) मृगावती , आगरा, १६६६८ छन्द-११, पृ० ८, शुल्का, रामचन्द्र- हिन्दी साहत्य का इतिहास, वाराणसी, सम्वत् २०२६, पृ० १०७

सुल्तान, हुसैनशाह का प्रश्रय प्राप्त था। कुतुबन जौनपुर के सोहरावर्दी सम्प्रदाय के सूफी शेख बूढ़न के शिष्य थे[1]। मृगावती काव्य मे कवि ने लौकिक प्रेम कथा का वर्णन किया है। जिसमें अलौलिक प्रेम का संकेत है। कवि ने मिलन मार्ग में त्याग तथा कष्टो का निरूपण कर ईश्वर प्रेम का स्वरूप प्रस्तुत किया है। अनेक लोक विश्वासों ,योग ,वियोग, विरह, पीडा और प्रेम की आकुलता पर विशेष बल दिया गया है। इसका वातावरण सर्वत्र भारतीय रखा गया है।कवि की भाषा में अवधी का अपरिमार्जित और ग्रामीण रूप दृष्टिगोचर होता है। काव्य में दोहा, छन्दो, चौपाई आदि का प्रयोग किया[2]। संस्कृतके तद्‌भव शब्दो का प्रयोग स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है।

मलिक मोहम्मद जायसी –

मलिक मोहम्मद जायसी अवध प्रान्त के जायस ग्राम के रहने वाले थे। जायस को उन्होनें धर्मस्थान भी कहा है। उसका आदि नाम उदयान का उल्लेख कर उसके पूर्व इतिहास का परिचय देने की भी चेष्ट की है[3]। इस प्रकार उस ग्राम के प्रति उनके आकर्षण एवं उनके नाम के आगे जायसी शब्द

---

1 सेस बूढन जग सांचा पीरू, नाव लेत सूध होय सरीरू। कुतबन नाउ लै रे पांधरे, सुहरावर्दी दुहुँ जग निर भरे ।। डा० माता प्रसाद गुप्त (सम्पादक)मृगावती, छन्द-६, पृ० ४ चतुर्वेदी पशुराम - पूर्वोद्धृत ,पृ० ६६- ६६

2 चतुर्वेदी,परशुराम-पूर्वोद्धृत ,पृ० ६७

3 जायसनगर धरम अस्थान्। तहां आई कवि कीन्ह बखानू ।।

आचार्य पशुराम चतुर्वेदीकृत सूफी काव्य संग्रह मे उल्लेखित 'पद्मावत' में दिया है। प्रयाग ,१६४३ ई०, पृ० ११७

जायस नगर मोर अस्थानू। नगरक नाव आदि उदयानू ।।

पशुराम चतुर्वेदी कृत सूफी काव्य संग्रह में उद्‌घत 'आखिरी कलाम' मे दिया है। पृ० ११७

से भी उनके साथ घनिष्ट सम्बध जान पड़ता है। यह चिश्ती सम्प्रदाय के सूफी निजामुददीन औलिया की परम्परा के शेख अशरफ जहांगीर के शिष्य थे[1]। इनका सम्बध सूफी शेख मुहीउद्दीन से भी था[2]। इन्हें सूफी दर्शन का अच्छा ज्ञान था इनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ पदमावत्, आखिरी कलाम तथा अखरावट है। पद्मावत् अवधी प्रेमाख्यान साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी रचना ६२७ हिजरी (लगभग १५२० ई०) में प्रारम्भ हुई और लगभग बीस वर्ष के पश्चात् ६४७ हिजरी(१५०४ ई०) में पूर्वा हुई[3]। इस प्रेमकाव्य में कवि ने रतनसेन व पद्मावत की प्रेम कथा तथा रतनसेन की पत्नी नागमती के विरह संताप को काव्योचित रूप दिया है। मानव हृदय को स्पर्श करने सुंदर प्रेमतत्वों को वाणी प्रदान की है[4]।

---

[1] सैयद असरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।।
लेसा हियें प्रेम कर दीया। उठी जोति भा निरमय हीया।।
मानिक एक पाएउ उजियारा । सैयद असरफ पीर पियारा।।
कुल जगमह दीपक विधि धरा, जहाँगीर चिश्ती निरमरा।
चतुर्वेदी ,पशुराम -पूर्वोद्धृत , १२१-२२

[2] गुरू मोहदी खेवक मै सेवा। चलै उताइल जेहिकर खेवा।।
पा-पाएउ गु मोहिदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा।।
वही, पूर्वोद्धृत पृ० १२२

[3] चतुर्वेदी ,पशुराम - सूफी काव्य संग्रह ,पृ० ११८-११६ ॐ

[4] प्रीति बेलि ऐस तन डाढा। पलुहत सुख बाढत दुख बाढा
प्रीति बेलि कै अमर को बोई। दिन-दिन बढ़ै छीन नहि होई।
शुक्ल, रामचन्द्र, सम्पादक, जायसी ग्रंथावली, काशी, सम्वत् २०१३ चतुर्वेदी, पशुराम पूर्वोद्धृत, १६५६, पृ० १०७-८, शुक्ल, रामचन्द्र, पूर्वोद्धृत, छन्द, ६६५, ३०१-३०४

पद्मावत का कथानक शुद्व भारतीय पात्रों को लेकर भारतीय परिवेश में ही लिखा गया है। इसके घटनाक्षेत्र, अलौलिक पात्रों के क्रिया-कलाप, नायक-नायिका के आमोद-प्रामोद एवं विरह-वियोग आदि प्रायः सभी बातें भारतीय है। जायसी से पूर्व के कवियों की रचनाये काल्पनिक थी। किन्तु जायसी ने कल्पना के साथ-साथ एतिहासिक घटनाओं का भी समावेश किया है। जायसी सूफी कवि थे और अपनी इस रचना को भारतीय सांचे में ढालते समय भी वे अपने मूल उद्देश्य को नही भूलते जहॉं कही भी अवसर पाते है वहॉं अपने इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को अक्षुण्य बनाये रखने का प्रयत्न किया है। पद्मावत् प्रेमकाव्य के द्वारा सम्पूर्ण सूफीवादी दर्शन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें कवि ने अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये गुरू की महत्ता तथा सूफीवाद की शिक्षाओं पर प्रकाश डाला है। प्रेममार्गी अन्य सूफी कवियों के काव्य से पद्मावत की कथा की विषेशता है। कि इसमें कवि ने साधना मार्ग, उसकी कठिनाइयों और सिद्वि स्वरूप की भी व्यजना सहजता से किया है।

जायसी के काव्य की भाषा तत्कालीन बोल-चाल की अवधी है। इसकी रचना दोहा, चौपाई, सोरठा में है। काव्य की भाषा सरल व परिष्कृत है। फारसी तथा अरबी के प्रचलित शब्द और मुहावरे बड़े स्वाभाविक रूप से भाषा मे प्रयुक्त हुए है। काव्य का कलापक्ष परिष्कृत है। भावो की रमणीयता उनकी अभिवंयजना दोनों में मनोमरता है। पद्मावत में श्रंगार, शांत, वीर आदि रसो का विवरण भारतीय परम्परा के अनुसार किया गया है। साथ ही साथ उसमें अनेक प्रकार के अलंकारो की भी योजना पाई जाती है[1]। पद्मावत फारसी की मसनबी

---

[1] (क) सरवर तीर पद्मिनी आई। खोया छोरि केरू मुकलाई।
सीरत मुख, अंग मलयीगिर वासा। नागिन आदि लीन चहुंपासा।।
ओ नई घटा मरी जग छाहां । सखि के सरना लीन जनु राहा।

शैली पर लिखे होने पर भी भारतीय काव्य के तत्वो से परिपूर्ण है। उसमें ओज की अपेक्षा प्रसाद और माधुर्य गुणों की प्रधानता है। पद्मावत को एक उत्कृष्ट अवधी सूफी काव्य रचना माना जाता है।

मंझन –

सूफी कवि मंझन ने प्रेमाख्यान मधुमालती की रचना १५४५ ई० (९५२ हिजरी) में किया था[1]। मधुमालती की कथा भारतीय साहित्य में बडी लोकप्रिय रही है। इसकी कथा का आधार लोक प्रचलित कहानी थी। इसमें पद्मावत के समान ऐतिहासिक नामों और घटनाओं की छौक नहीं दी गयी है। इनकी रचना से पता चलता है कि कवि का साधना स्थल चुनार था। इनके गुरू शेख मुहम्मद थें[2]।

भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महचन्द्र देखावा।।
(ख) दसन-दसन सौ किरिन जो फूटहि ।
सब जग जनहु फूल झरी छूटहि।
जानहुँ ससि मँह बीनु देखावा।
चौकि परै किछु कहै न पावा।।
शुक्ल ,रामचन्द्र ,जायसी ग्रन्थावली ,पृ० १०३-१२०, चतुर्वेदी, पशुराम , पूर्वोद्धृत, प्रयाग, १९५६, पृ० ८२

1 सन नौ सौ बावन जब भये । सती पुरूष कलि परिहरि गये।
जब हम जिय उपजी अभिलाषा । कथा एक बाधऊ रस भाखा।।
मधुमालती चतुर्वेदी ,पशुराम -पूर्वोद्धृत ,पृ० ११६ गुप्ता माताप्रसाद, सम्पादक मधुमालती, इलाहाबाद, १९६१ ई० छन्द ६६, पृ० ३३, चतुर्वेदी पशुराम, पूर्वोद्धृत, पृ० ११६

2 (क) गढ़ बनूप बसिनगर चर्नाढी। कलयुग महंलंका सौ गाढी।
पुरूष दिसा जरगो फिरि आई। उत्तम पछिम गंगा गढवाई।।
गुप्त माताप्रसाद- पूर्वोद्धृत, छन्द, पृ० १५-२०

सूफी कवि मंझन ने मधुमालती प्रेमकाव्य में कनेसर के राजकुमार मनोहर तथा महारस की राजकुमारी मधुमालती के प्रेम द्वारा ईश्वर व साधक के प्रे म स्वरूप को प्रस्तुत किया है। कवि ने परम तत्व की प्राप्ति के लिये प्रेम-साधना को मुख्य रूप से प्रश्रय दिया है। सृष्टि के प्रारम्भ में प्रेम का ही प्रवेश हुआ अतः सृष्टि का मूल कारण प्रेम है। जिसके हृदय में प्रेम की पीर उत्पन्न हो जाती है। उसी का जीवन सफल होना बताया जाता है[1]। मधुमालती काव्य में प्रेम के विकास क्रम मे स्वप्न दर्शन तथा प्रत्यक्ष दर्शन का बडा सुंदर वर्णन किया है[2]। कवि ने ईश्वर के सम्बंध में विचार प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है। वह सर्वव्यापी है। उसके समान दूसरा नही न भविष्य में होगा वह एक होते हुए भी अनेक होकर प्रकट होता है। वह सारे संसार का कर्ता है। और वही, भिखारी तो कही राजा के वेश में विराजमान है[3]। सृष्टि के संबंध में उनका

(ख) शेख मुहम्मद पीरू अपारा। सात समुद नाउ कउहारा।

वही, . छन्द १५,पृ० १४, चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धृत,पृ० ११६

[1] (क) प्रथमहि आदि प्रेम परिवस्टी। तौ पाछै भई सफल सिरिस्टी।

उपजाति सिस्टि प्रेम सो आई। सिस्टी रूपभर प्रेम सवाई

वही, छन्द ३३, पृ० २७

[2] (क) उठेउ सूर जग मएउ अंजोरा। केवर उठ बिरहे झकझोरा।।

चेत हरेउ जिउ गा बौराउ। क्या नगर मई विरह दो हाई।।

वही, छन्द १५३,पृ० १२८

(ख) कंवल भांति परगासे। पुरूख निरखि मुख सूर।

देखत प्रेम पिरीत पुब्बके। हिय मंह अंकूर ।। वही, छन्द, ७५, पृ० ६२

[3] (क)गुपुत रहे पसाट जग। बंरसै सख व्यापक सोई।

दुजा कोर न आहै। और भावा नाहि कोई।। वही, छन्द, ४, पृ० ६

(ख)अलख निंरजन करता । एक रूप बहु भेश।

मान्ना था कि मुहम्मद परमात्मा से पृथक हो गये और उन्ही के विरह में स्वयं सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुये। मुहम्मद दीपक रूप में पैरा हुये और उसी का प्रकाश सर्वत्र व्याप्तहुआ। उन्होंने सारी सृष्टि को ईश्वर का रूप माना है। और मुहम्मद साहब को भी ईश्वर का ही रूप माना है[1]। मंझन ने अपने काव्य में ईश्वर के विविध रूपों को सफलता पूर्वक चित्रित किया है[2]।

कतहूँ बान भिखारी । कतहूं आदि नरेश।। वही, छन्द २,?पृ० ४

[1] (क) सुनहूँ अब तेही के बाता। परगट मा जोहि बिरह विधाता।

सइहि सरीर सिस्ट जौ आवा। औरि सिस्टि सम ओहि कर भावा।

उदई जोति प्रगट सम ठाऊ । दीपक सिस्टि मुहम्मद नाऊँ।।

वही, छन्द८,पृ० ८

(ख) ऊंचे कहौ पुकारि कै, जगत सुने सम कोई।

परगट नाऊं मुहम्मद, गुपुत जो जानिय सोई। वही, छन्द ८, पृ०६

[2] देखत ही पहियानी तही। एक ही रूप जेहि छहरयो मोही।

एक रूप कुत अहै छयाना। एही रूप ख सृष्टि समाना।।

यही रूप प्रकटे बहुत भेसा। एही रूप जंग रंग नेरसा।

एही रूप प्रकट रूपा। एही रूप जेही भाव अनूपा।।

एही रूप सब नैन्नद जोती। एही रूप सब सागर मोती।

एही रूप सब फूलन्ह वासा। एही रूप रस भंवर बेरासा।।

एही रूप ससिहर सौ सुरा, एही रूप जग पूरी अपूरा।

एही रूप अंत आदि निदाना । एही रूप धरि धरसों धियाँना।।

एही रूप जलधर औ महिअर। भाउ अनेग देखाऊँ।

आप गवाई जो रे कोई। देख सो किछु देखै पाऊँ।।

गुप्ता माता प्रसाद, पूर्वोद्धृत छन्द १२० ,पृ० १०० चतुर्वेदी पशुराम-पूर्वोद्धृत, पृ० १२३-१२४

मंझन के मधुमालती प्रेमकाव्य की रचना अवधी में किया है। किन्तु कवि की भाषा में वह परिष्कार तथ माधुर्य नहीं है। जो जायसी की अवधी में उपलब्ध होता है। काव्य में भारतीय संस्कृति एंव प्रतीको का उल्लेख है।उसकी रचना दोहा व चौपाइयों के क्रम में हुई[1]। रसो तथा अलंकारो का प्रयोग किया गया है।

उसमान –

कवि उसमान ने चित्रावली सूफी प्रेमकाव्य की रचना १६१३ ई० (१०२२ हिजरी) में किया[2]। इसकी रचना सूफी कवियों की प्रेम गाथाओं की पद्वति पर ही हुई। उसमान ने चित्रावली में लिखा है इस कथा को मैने अपने हृदय से उत्पन्न किया है। जो कहते समय मीठी जान पड़ती है, और सुनते समय भी मघुर और सुंदर लगती है। इसे मैने जैसा सूझ पड़ा वैसा ही बनाया है, और जिसे यह जैसी सूझ पड़ेगी वैसी ही वह इसे बूझ पायेगा[3]। उसमान ने इस काव्य को अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। कलात्मकता की और विशेष ध्यान रखा

---

1 चतुर्वेदी, पशुराम, पूर्वोद्धृत, पृ० १६५६ ई०, पृ० ७०-७१

2 सन सहत्र बाइस जब जहे। तब हम वचन चारि एक कहे।।
कहत न करेज लोह भा पानी। सोई जान पीर जिन्ह जानी।।
कही न जग पतियाउ कोउ, सुनि अचरज संसार।
होहि छहों रितु एक ठौ। जहांगीर दरबार।।
वर्मा, जे० (सं०) चित्रावली, काशी, छन्द ३३, पृ० १४, छन्द ३३ पृ० १४ चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धृत ,पृ. १२८

3 कथा एक मै हिए उपाई। कहत मीठ औ सुनत सुहाई।।
कहौ बनाय वैस मोहि सूझा। जेहि जग सूझ सौ तैसे बूझा।।
वही, , पृ० १४-१५, चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धृत ,पृ० १२७

गया है। चित्रावली की कुछ पंक्तियों से स्पष्ट होता है। कि कवि उसमान की काव्य रचना का उद्देश्य यश प्राप्ति का था[1]। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उसमान ने चित्रवली की रचना की लेकिन इसका अर्थ यह नही कवि ने सूफी प्रेमाख्यान परम्परा को अपनी आंखों से ओझल होने दिया है।

उसमान गाजीपुर के निवासी थे। गाजीपुर का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। उसमान के पिता का नाम शेख हुसेन था[2]। चित्रवाली की रचना कवि ने जहांगीर के शासन काल मे किया था। कवि की रचना पूर्णतः प्रसूत है। फिर भी उसने अपने काव्य कौशल द्वारा इसके पात्रों को ऐसे ढग से चित्रत कर दिया है। कि प्रायः सजीव लगते है[3]। कवि ने नारनौल के शाह निजाम को तथा बाबा हाजिम दोनों को अपना पीर माना है[4]। चित्रावली काव्य में नेपाल के राजा धसीधर पंवार के पुत्र राजकुमार सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की प्रेमकथा का वर्णन किया है। काव्य के प्रारम्भ में कवि ने ईश्वर स्तुति के

---

1 आदि हुता विधि माथे लिखा। अच्छ पढै हम सिखा।।
देखत जगत चला सब जाई। एक बचन पै अमर रहाई।।
वचन समान सुधा जग नाही, जेहि पाए कवि अमर रहाही।
औ जो यह अमिरित सो पागे । सोरू असर जग भए समागे।
मोहूं चाउ उठा पुनि हीए। होउं अमर यह अमिरित पीए।।
वही, , पृ० ११४, चतुर्वेदी, पशुराम, पृ० १२७

2 गाजीपुर उत्तम अस्थान दिव स्थान आदि जग जाना।
गंगा मिलि जमुना तेह आई। बीच मिली गोनती सुहाई।।
कवि उसमान बसै तेहि गाऊ । सेख हुसैन तनै जग नाऊ।।
वही, छन्द २४ ,पृ० १०, चतुर्वेदी,पृ० १२७

3 चतुर्वेदी ,पशुराम काव्य संग्रह -पृ० १२८

4 चित्रावली छन्द, २१,२२,पृ० ६-१० चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धृत, पृ० १२७-१२८

उपरान्त ,पैगम्बर मुहम्मद साहब, चार खलीफाओं ,सम्राट जहाँगीर तथा अनेक सूफियों की प्रशंसा की है। काव्य में प्रेम का उदय चित्र दर्शन से दिखाया गया है[1]। अनेक आश्यचर्य जनक कथानक रूढियों का वर्णन किया गया है और रूप, प्रेम, विरह को सृष्टि का मूल आधार स्वीकार किया गया है। प्रेम, सौन्दर्य, विरह, प्रेम पथ पर कठिनाई आदि का कलात्मक वर्णन किया गया है[2]।

---

[1] बहुरि कुंवर जो पीछे देखा। अपुरूष रूप चित्र एक देखा।
जानि सजीउ जीउ भर जाना। भयें ढाढ उठि कुंवर सुजाना।।
चित्रावली, छन्द, ८३, पृ० ३३

[2] (क) आदि प्रेम विधि ने उपराजा।
प्रेमहि लागि जगत सब छाजा।।
आपन रूप देखि सुख पावा।
अपने हिये प्रेम उपनावा।। वही, , छन्द २६, पृ०१३

(ख) जहां रूप निज बनिज पसारा। आई प्रेम तह कीय व्यवहारा।।
जो विधि रूप मया करि दीन्ही । प्रेम चकोर नैन करि दीन्ही।।
वही, छन्द ३०, पृ० १३

(ग) पीर सोई जो नही कुछ औषधि मूरि उपाय।
एहिकर हितू जो होई कोई, सो पूछे फुसलाय। वही, , छन्द ६५, पृ० ३८

(ङ) कहेसि कुंवर यह पथ दुहेला। अस जनि जानु हँसी और खेला। अगम पहार विषम गढ घाटी । पंखन जाई चढै नहि चीटीं।। खोह खराट जाइ नहि लांघी देखि पतार काँप नर जाँघी। जाई सोर जो जिउ पर तेजा। सार पासली लौह कलेजा। वही, छन्द २०३,पृ० ७८

(घ) विरह अग्नि उर मंह बरैं, एहितन जानै सोइ। सुलगै काठ बिलूत ज्यौ, धुंआ न परगट होइ। वही, , छन्द ४२६,पृ० १५२

काव्य की भाषा अवधी है। इनकी भाषा शैली जायसी के पद्मावत से बहुत कुछ साम्य रखती है। भाषा अधिक प्रौढ तथा परिमार्जित है कहावतो तथा लोकोत्तियों का प्रयोग बड़ी स्वाभाविकता से किया गया है।

न्यामत खां(जान कवि) –

अवधी के सूफी प्रेमाख्यानों की परम्परा की छठी कडी में जानकवि का नाम आता है। इनका पूरा नाम न्यामत खां था। यह जहांगीर शाहजहां के समय काफी प्रसिद्व हुये[1]। इनके अब तक कुल ८२ ग्रंथ प्राप्त हो चुके है। इसमें से ७० ग्रंथ हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग में सुरक्षित है। शेष १२ ग्रथ विभिन्न संग्रहालयों ,राजस्थान के भण्डारो और कुछ व्यक्तियों के पास है। अभी तक प्राप्त ८२ ग्रंथ उनकी अमर अक्षय कीर्ति के आलोक स्तम्भ है। सम्भवतः हिदी के किसी भी मध्य युगीन कवि के इतने अधिक ग्रंथ सुरक्षित रूप में नही मिले है। कवि ने अपने कृति 'क्यामखां' रासों मे फतेहपुर के चौहन वंशीय नवाबो का परिचय दिया है। उसी में अपने पिता अलफ खां का भी परिचय दिया है। इनके पांच पुत्र थें जिनमें न्यामत खां (जान कवि) द्वितीय पुत्र थें क्यामखां रासों मे कवि जान ने क्यामखानी नवाबो का परिचय और इतिहास दिया है। इसी में कई स्थलों पर उन्होंने अपना नाम नियामत या न्यामत भी दिया है[2]। यह जाति के मुसलमान थें उनके पूर्वज चौहान वंशीय क्षत्रिय थे इसका कवि जान ने क्यामखां रासों साभिमान वर्णन किया है[3]। अपनी रचना

---

[1] चतुर्वेदी ,पशुराम -पूर्वोद्धृत , १४०-१४०

[2] न्यामत संपूरन है जरूर हाजिर हजूर होत।
न्यायम और करामत पूरन होहि सुखी जे दुखी ताकि आए।
पाठक, शिव सहाय-हिदी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन दिल्ली। १६७६ पृ० १३३

[3] आलिफखान दीवान को बहुत बडो है गोत ।

'छीता' की प्रारम्भिक पक्तियों में इन्होंने अपने गुरू का नाम शेख मुहम्मद बतलाया है। शेख को चिश्ती सम्प्रदाय तथा अपने को उनके सम्प्रदाय को सूफी अनुयायी कहा है। कवि जान के प्रेमाख्यानों के नाम प्रायः नायिका के ही नाम पर है। जान कवि की अवधी में रचित प्रेमाख्यान कनकावती ,कामलता, पुहुपलता, रत्नावती, बुद्विसागर, छीता, प्रमुख है[1]। 'कनकावती' प्रेमकाव्य में भरथनेर के राजा भरथ के एक मात्र पुत्र परमरूप तथ सिधुपुरी के राजा की पुत्री कनकावती की प्रेम कथा का वर्णन है। इसकी १६१८ ई (सम्वत् १६७५) में किया गया था[2]। 'कामलता' हसपुरी के राजा रसाल तथा सुन्दरपुरी की शासिका कामलता की प्रेम पर आधारित कथा है। इसकी रचना १६२२ ई०(१६७८ सम्वत्) में किया गया था[3]। 'रूपमंजरी' हस्तिनापुरी के राजा हस्तिमल के पुत्र ज्ञानसिह तथा कंकन पुर के राजा कर्ण की पुत्री रूपमंजरी के प्रेम कथा का वर्णन है। इस काव्य में अन्य छोटे प्रेमाख्यानों की अपेक्षा मार्धुयता तथा रसात्मकता अधिक है। इसकी रचना १६२७ ई (सम्वत् १६८५) में की गयी थीं[4]।

चहुआन की जोत को और न जग मे होत।।
जिती जात राजपूत की। सगरे हिन्दुस्तान।
सबसे निहचै जानियों बडो गोत चहुआन ।।वही, पूर्वोद्धृत, पृ० १३३

1 तिवारी ,मुक्तेश्वर - मध्ययुगीन सूफी और सन्त साहित्य, पृ० ६६

2 सोहल मैं पचसत्तरै जहांगीर के राज।
तीन धौंस मे जान कवि यहुसाज्यों सब राज।।
शुक्ला, सरला- जायसी के परवर्ती हिदी सूफी कवि और काव्य लखनऊ, सम्वत् २०१३, पृ० ३७४- ७६, चतुर्वेदी, पशुराम -पर्वोद्धृत , पृ० १४०

3 सोलह सै अठहत्तर, कथा कथी कवि जान।
पीर विषोरहु भूलि जिन, अनवन बाँ चहुँबान।।
तिवारी, मुक्तेश्वर-पूर्वोद्धृत, पृ० १०४, चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धृत पृ० १४१

4 संवत् सोलह सै पचासी अगहन मास कथा प्रकासी।

'पुहुपलता' काव्य में प्रेमपुरी की राजकुमारी सुकेसी तथा कंकनपुरी के राजकुमार सुरपति की प्रेम कथाएंव सिरीनगर के राजकुमार पुरूषोत्म के परोपकार की महत्ता का वर्णन किया गया है। इस काव्य काल १६२७ ई० (१०३७ हिजरी है)[1] 'रत्नावली' काव्य में अमृतपुरी के राजा जगराई के पुत्र महि मोहन तथा रूपपुरी की राजकुमारी रत्नावली की प्रेम कथा का वर्णन किया गया है। काव्य में सर्वप्रथम निर्गुण ब्रह्म की वन्दना है। इसका रचना काल कवि ने सम्वत् १६६१. (१६३४ ई०) बताया है[2]। 'बुद्विसागर' या 'मधुकरमालती' काव्य में मुधकर तथा मालती की प्रेम कथा का वर्णन किया गया है। इस कथा में प्रेम साधना की कठिनाइयों का बडा ही विकट वर्णन किया । काव्य की रचना १६३४ ई० (सम्वत् १६६१) में किया गया[3]। 'छीता' प्रेम काव्य देवगिरी की राजकुमारी छीता तथा राम की प्रेम कथा पर आधारित है। इसमें छीता के सतीत्व की रक्षा को प्रधानता दिया गया है। छीता और राम की कथा को सीता-राम की कथा से साम्य दिखाने का प्रयास किया गया है। इस काव्य की रचना १६३६ ई० (१६६३सम्वत्) में की गयी थी[4]। 'कदलावती' प्रेम काव्य रूपपुरी के राजकुमार शीश तथा मदनराई की राजकुमारी की प्रेम कथा है। प्रेम का उदय चित्रदर्शन

तिवारी, मुक्तेश्वर- पूर्वोद्धृत, पृ० १०५

1 नाँव धरयो वरषा पुहुप, सुनि रीझत अतिप्रान।
सन सहंस सौंतीस में कथा कथहि यह जान।। वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० १०५

2 शुक्ला,सरला, - जायसी के परवर्ती हिदी कवि और काव्य, पृ० ३७८
पाठक, शिव सहाय- पूर्वोद्धृत, पृ० १४०-१४१

3 सोरह से इक्यानवे हफिगन बदयेक।
जानि कवि कीनी कथा करिके ग्यान विवेक।।
वही, पूर्वोद्धृत, पृ० ३७८, चतुर्वेदी, पशुराम ,पूर्वोद्धृत, पृ० १४१,१४७-४८

4 सोरह से जु तिरानबे । कथा कथी यह जान ।
कातिग सुद छठ पूरन। छीताराम बखान।।
तिवारी, मुक्तेश्वर, पूर्वोद्धृत, पृ०१०८, चतुर्वेदी, शुराम, पूर्वोद्धृत, पृ० १४१-१५२

से होता है। काव्य में प्रेम साधना में कठिनाइयों तथा गुरू की महत्ता का वर्णन किया गया हैं इस काव्य की रचना कवि ने १०२७ हिजरी (१६७१ ई०) बताया है[1]।

शेख नबी –

ये जौनपुर जिले में दोसपुर के निकट मऊ के निवासी थे। इन्होंने 'ज्ञानदीप' सूफी प्रेमाख्यान काव्य की रचना किया यह जहांगीर के समकालीन थे[2]। इस काव्य में नैमिषार मिस्रिष के राजा शिरोमणि के पुत्र ज्ञानदीप तथा विद्यानगर के राजा सुखदेव की विदुषी कन्या देवयानी के प्रेमकथा का वर्णन किया है। इस प्रेम का विकास प्रत्यक्ष दर्शन से किया गया है[3]। कथानक मे भारतीय वातावरण और संस्कृति का अवलोक़न किया जा सकता है। यह अवधी भाषा में लिखी गयी है। सूफी काव्य परम्परा का उत्कृष्ट काव्य है। काव्य का रचनाकाल कवि ने १६१६ (१०२६ हिजरी) बताया है[4]।

---

1 द्वादस दिन में कवि, करी सुमिरि जगदीश।
तबहि सनयो कहत है, येकस सन् सतईस।
वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० १०८-१०६ पाठक, शिवसहाय-पूर्वोद्धृत, पृ० १४०-१४१

2 पाठक, शिव सहाय-पूर्वोद्धृत, पृ० ११७

3 जबही द्रिस्टि कुवर पर पडी। धरी पुहुमी जनु डाइन छरी।।
तवारी, मुक्तेश्वर-मध्यकालीन सूफी और सन्त साहित्य, पृ० १३७

4 एक हजार सन रहे छबीसा। राज सुतही गनहु बरीसा।।
संवतसोरह सै छिछंतरा। उक्ति गंरत कीन्ह अनुसरा।।
तिवारी, मुक्तेश्वर- पूर्वोद्धृत, पृ० १३७-३८

आलम –

कवि आलम की प्रमुख रचना 'माधवानल कामकन्दला' थी। जिसका रचना काल १५८३ई० (सम्वत् १६४०) माना जाता है[1]। इस काव्य में माधवनल तथा कामकन्दला की प्रेम कथा का वर्णन किया गया है। काव्य का प्रारम्भ ईश्वर और पैगम्बरों की स्तुति से किया गया है। कवि आलम ने नारी सौन्दर्य, नख शिख वर्णन तथा संयोग-वियोग वर्णन बडी ही सहजता और आर्कषक ढंग से किया है। यह कथा पूर्णरूप से स्वच्छन्द प्रेम की एक रोचक कहानी है। इसमें एकान्ततः लौकिक प्रेम का ही वर्णन हुआ। जिसमें सूफी प्रेमवाद के धार्मिक दार्शनिक तत्वों का अभाव सा है[2]। आलम की भाषा अवधी का परिष्कृत रूप है। इसमें स्थान-स्थान पर संस्कृतके तत्सम और तत्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा मे परिमार्जन, परिष्कार और प्रवाह सर्वत्र उपलब्ध होता है।

मुगलकाल के उत्तरार्द्व मे सूफी प्रेमाख्यानों की प्रचुरता कम होने लगी उत्तर मुगलकाल में अवधी में लिखे गये प्रमुख सूफी प्रेमाख्यान काव्य कवि कासिमशाह कृत हंस जवाहर, नूर मुहम्मद कृत इन्द्रावती ,शेख निसार कृत युसूफ जुलेखा, ख्वाजा अहमद कृत नूरजंहा, शेखरहीम कृत भाषा प्रेम रस, मोहम्मद नसीर कृत 'प्रेमदर्पण' आदि थे।

मुगल काल में अवध में अवधी साहित्य के अन्तर्गत सूफी प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त गैर सूफी प्रेमाख्यानों की भी रचना की गयी है। जिसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सूफी तत्व विद्यमान रहें। फिर भी उनमें बहुत कुछ भिन्न भाव

---

1 चतुर्वेदी, पशुराम, पूर्वोद्धृत, पृ० ६२

2 तिवारी, मुक्तेश्वर-पूर्वोद्धृत, पृ० ११४ पाण्डेय, श्याम मनोहर, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १०५-१०, २२१

मिलते है[1]। सूफी प्रेमाख्यानों के रचनाकार जहां सूफी थे और जिनका मुख्य उद्देश्य सूफी प्रेमाख्यानों के माध्यम से सूफी सिद्वांतों और साधना का निरूपण करना था। वहां गैर सूफी प्रेमाख्याना के रचनाकार न तो सूफी थे और न उनकी रचना का उद्देश्य ही सूफियाना प्रचार था। फिरभी समकालीन होने के कारण इन गैर सूफी प्रेमाख्यानो पर सूफी की छाप स्पष्ट दृष्टि गोचर होती है[2]। अवधी साहित्य के गैर सूफी प्रेमाख्यानों के कवि़यां मे ईश्वरदास, पुहुकर, नरपति व्यास, सूरदास, दु:खहरनदास आदि प्रमुख थे[3]। जिन्होंने अवधी में अपने काव्य ग्रथों की रचना किया।

ईश्वरदास –

कवि ईश्वरदास ने सत्यवती कथा काव्य की रचना सम्वत् १५५८ (१५०१ई०) में किया। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर सिकंदर लोदी आसीन था। काव्य की रचना मसनवी और पौराणिक संवादात्मक शैली पर आधारित है। भाषा एवं साहित्यिक महत्त्व के साथ ही इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व अत्यधिक है। कथा का नायक ऋतुपर्ण अभिशप्त हो कोढी हो जाता है। जिसे सत्यवती अपने सतीत्व के प्रभाव से अच्छा करती है। इसे कई विद्वानों ने प्रेमाख्यान कहा है[4]। किन्तु इसे प्रेमाख्यान मात्रा इसलिये उपयुक्त नही होता है कि इसमें प्रेम काउभार प्रदर्शित नहीं हुआ है। बल्कि सत्य की महिमा का

---

[1] आचार्य पशुराम चतुर्वेदी ने ऐसी प्रेमगाथा को संत प्रेमगाथा के नाम से अभिहित किया है। चतुर्वेदी, पशुराम -सूफी काव्य संग्रह ,प्रयाग ,सम्वत् २०१३, पृ० ६२

[2] चतुर्वेदी पशुराम -पूर्वोद्वत, पृ० ६२

[3] वही, -पूर्वोद्धृत, पृ०६२

[4] कुल श्रेष्ठ, कमल- हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य, अजमेर, १९६५, पृ० १२

निरूपण हुआ है[1]। सती महात्म्य के महत्त्व को दिखलाना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। स्थान-स्थान परनीति, धर्म, भाग्य प्रारब्ध पर भी चिंतन किया गया है[2]।

पुहुकर –

कवि पुहुकर ने 'रसरतन' प्रेमकाव्य की रचना १०३५ हिजरी (१६१६ई०) में किया। इस काव्य में कवि ने रंभा तथा सोम के प्रेमकथा का वर्णन किया है। इस रचना शैली में सूफी प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। यह प्रेमाख्यान पद्वति में लिखा गयाा है। काव्य के प्रारम्भ में कवि द्वारा निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्म की उपासना की गयी है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनो पक्षो का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। सूफी प्रेमाख्यानों की भांति ही प्रेममार्ग की कठिनाईयां, सहेली का सहयोग, चमत्कार, प्रदर्शन आदि के चित्रण इस प्रेमाख्यान में मिलते है[3]। कवि की भाषा प्रवाहमयी है। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दो तथा कही-कही प्रसंग के आवश्यकतानुसार डिंगल भाषा के शब्दो का प्रयोग कर उसे अधिक सजीव एवं ओजपूर्ण बना दिया है। ऐसे प्रसंग सेना के संचालन और युद्व वर्णन में है। कवि ने चयन में विशेष ध्यान दिया है[4]।

---

[1] तिवारी, मुक्तेश्वर- पूर्वोद्धृत, ११३

[2] आपन कर्म सब भजु, जो विधि लिखा लिलाई।
जोग जतन तप कुछ न होई। आप करम भजै सब कोई।
तिवारी, मुक्तेश्वर कृत मध्ययुगीन सूफी और सन्त साहित्य के, पृ० ११३ में उद्धृत है।

[3] तिवारी ,मुक्तेश्वर -पूर्वोद्धृत, पृ० ११८

[4] वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ११८

नरपति व्यास –

अवधी गैर सूफी प्रेमाख्यानों की श्रृंखला में तीसरा काव्य नरपति व्यास कृत नल दमयन्ती की कथा है। इसके अंतर्गत नल तथा दमयन्ती के प्रेम गाथा का वर्णन है। कवि ने दमयन्ती के सौंदर्य विरह आदि का वर्णन बड़े ही रहस्यात्मक ढंग से किया है। काव्य की रचना दोहा -चौपाई छन्द ो मे की गयी है[1]।

सूरदास –

कवि सूरदास ने 'नलदमन' कथा की रचना किया[2]। यह लखनऊके गोवर्धन दास के पुत्र थे। इस काव्य का रचना काल सम्वत् १७३० (१६७३ ई०) किया है[3]। कविकी भाषा में अवधी के परिमार्जित रूप का दर्शन होता है। भाषा शुद्व ,सरस और प्रवाहमयी युक्त है।

दुःखहरनदास –

इन्होंने 'पुहुपावती' काव्य की रचना किया[4]। यह सन्त मलूकदास के शिष्य और गाजीपुर के निवासी थे। इनके काव्य का रचनाकाल सम्वत् १७३० (१६७३ ई०) है[5]। काव्य की भाषा तथा भाव व्यंजना शुद्ध एवं प्रवाह युक्त है। कवि ने भाषा क्षेत्र में जायसी को अपना आदर्श माना है।

---

[1] वही, -पूर्वोद्धृत,

[2] चतुर्वेदी,पशुराम-पूर्वोद्धृत, पृ० ६२

[3] चतुर्वेदी,पशुराम-पूर्वोद्धृत, पृ० ६२

[4] चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धृत, पृ०६२

[5] वही, पूर्वोद्धृत, पृ०६२

मुगलकालीन अवधी साहित्य विकास के अन्तर्गत सूफियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इन्होंने अपने सिद्धान्त और साधनाओं के निरूपण के लिये भारतीय कथाओं और लोक कथाओं को आधार बनाया। प्रेमाख्यान परम्परा को प्रभावित होकर समानान्तर कुछ गैर सूफी प्रेमाख्यान भी लिखे गये है[1]। सूफियों के प्रेमाख्यानों में काल्पनिकता का अपेक्षाकृत अधिक समावेश हुआ है[2]। इसके विपरीत गैर सूफी प्रेमाख्यान काव्यो में पौराणिक आख्यानों को अधिक मात्रा में अपनाया है[3]। तथा लौकिक प्रेम का चित्रण किया गया है[4]। सूफी काव्यों मे नायक-नायिकाओं के वियोग पक्ष का वर्णन विशेष रूप से कियागया है[5]। तथा नायक-नायिकाओं के अविवाहित रूप मे उत्पन्न प्रेम को प्रस्तुत किया है। उनके विवाहोपरान्त वाली दशा का वर्णन कम किया है। सम्भवतः उनका प्रमुख उद्देश्य यह रहा होगा कि किन्ही पुरूषों और स्त्रियों के बीच रागात्मक संबंध स्थापित कर उसके उत्तरोतर दृढकर हाते जाने का वर्णन किया जाये तथा उन दोनों का मिलन हो जाने पर उस दशा को केवल फल प्राप्ति समझ, कर वही से छोड़ दिया जाये। गैर सूफी काव्यों में प्रायः प्रेमी नायक एवं नायिका के उस जीवन को भी वही, महत्त्व दिया गया है जिसे वह मिलनोपरान्त व्यतीत करते है। इनकी दृष्टि में सम्भवतः वह वैवाहिक जीवन का आदर्श रहा होगा जो भारतीय समाज की एक विशेषता रही है और जिसके विशिष्ट अंग दाम्पत्य सुख व पतिव्रत धर्म है। इसके अलावा स्थूल बातो मे ये काव्य प्रायः एक समान निर्मित हुए है। काव्य के प्रारम्भ मे दोनो ही वर्गो के कवियों ने मंगलाचरणो से

---

[1] वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ६२ तिवारी, मुक्तेश्वर, पूर्वोद्धृत, पृ० ११८

[2] वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ६७-६६, तिवारी, मुक्तेश्वर -पृ० ११०

[3] वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ६२

[4] तिवारी,मुक्तेश्वर -पूर्वोद्धृत, पृ०११८

[5] वही, पूर्वोद्धृत, पृ० ७०

किया है। मूल कथा का आरम्भ करते समय प्रायः नायक व नायिका के जन्मादि का वर्णन किया है। जहां तक भाषा प्रयोग एवं छन्द योजना का प्रश्न है। दोनों प्रकार की रचनाओ में लगभग एक ही आर्दश का पालन हुआ है।

सन्त साहित्य –

सन्त शब्द एक विशेष वर्ग के भक्तों के लिये प्रयुक्त होता है। जिसमें निर्गुण भक्तों को गिना जाता है[1]। इन संतो ने ईश्वर के निर्गुण रूप को स्वीकार किया था। इन्होंने अपने भक्ति साधना में गुरु को विशेष महत्त्व दिया। भक्ति की सिद्वि के लिये गुरू सेवा के साथ-साथ स्वतंत्र चिंतन, स्वानुभूत ज्ञान और सत्संग पर बल दिया। सतों ने अपना कार्यक्षेत्र जन-सामान्य को बनाया। मानव-मानव के बीच समानता के भाव को जागृत करने का प्रयास किया। साथ ही सामाजिक रूढियों, अंधविश्वासों के निरूपण मे भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनके द्वारा रचित साहित्य को सन्त साहित्य का गया। सन्त साहित्य की भाषा अधिकांशतः सधुक्कडी भाषा कही जाती है। परन्तु कुछ ऐसे कवि थें जिन्होंने अवधी भाषा के माध्यम से अपने साहित्य की रचना की। हमारे आलोच्य कालीन अवधी के प्रमुख सन्त कवि और कृतियां निम्न है।

मूलकदास –

मुगल काल में संत कवियों में अवधी के माध्यम से काव्य रचना करने वालों में सर्वप्रथम कवि मूलकदास थें। इनका जन्म इलाहाबाद के कड़ा नामक स्थान में सम्वत् १६३१ (१५७४ ई०) में हुआ था[2]। उनकेपूर्वज खत्री जाति के कक्कड़ थे। यह बचपन से ही उदार, परोपकारी तथा धर्मः परायण थे। यह

---

[1] तिवारी, मुक्तेश्वर-पूर्वोद्धृत, पृ० १५०

[2] तिवारी, मुक्तेश्वर-पूर्वोद्धृत, पृ० १८०- १८१ ताराचन्द - इनफ्लुयेन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद, पृ० १८६

भ्रमण शील साधक थे। अपना अधिक समय देशाटन तथा सत्संग में व्यतीत किया। यह स्वभावतः निर्भीक तथा निश्चित थें इनमें सेवा भावना की प्रधानता थी दीन हीनों की सेवा करना इनका धर्म था। यह सदैव परोपकार में संलग्न रहा करते थे। यह हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के समर्थक थे[1]। इन्होंने सर्वसाधारण की भाषा में अपने उपदेशों का प्रचार किया। मूलकदास ने राम अवतार, ज्ञानबोध तथा सुख सागर की रचना अवधी भाषा के माध्यम से किया है। इनके साहित्य में अवधी का सुस्पष्ट तथा सुन्दर रूप उपलब्ध होता है। कवि की भाषा में संस्कृतके तद्भव तथा फारसी शब्दो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा में खड़ी बोली का प्रभाव दिखायी पड़ता है[2]।

मथुरादास –

यह मूलकदास के शिष्य तथा निकट सम्बधी थें । इनका जन्म सम्वत् १६४० (१५८३ ई०) में हुआ था। इन्होंने मूलकदास के जीवन-चरित्र से सम्बंधित 'ग्रंथ परिचयी'की रचना अवधी के माध्यम से किया[3]। इनकी भाषा अवधी का अपरिमार्जित और ग्रामीण रूप है।

चरनदास –

अवधी भाषा के सन्त साहित्य के कवियां की श्रृंखला में तीसरा नाम चरनदास का आता है[4]। इनका जन्म राजपूताना के मेवात प्रदेश के डेहरा ग्राम

---

[1] वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० १६०

[2] दीक्षित, त्रिलोकी - अवधी और उसका साहित्य, राजकलम प्रकाशन, दिल्ली, पृ० ३०

[3] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ०३०- ३१

[4] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३१ हिदी भाषा शब्द कोष, खण्ड -१, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी १६७६, पृ० २८१

में सम्वत् १७६० (१६०३ई०) मुरलीधर के घर में हुआ था। पिता की मृत्यु के बाद दस वर्ष की अवस्था में यह दिल्ली चले आये और जीवन पर्यन्त वही, रहे। दिल्ली में ही इन्होंने समस्त ग्रन्थों की रचना की। इनके प्रसिद्व ग्रन्थ है। ज्ञानस्वरोदय, अष्टांगयोग, पंचोपनिषदसार, भक्ति पदार्थ, अमरलोक अखण्ड धाम, सन्देह सागर, भक्ति सागर आदि है । इनके प्रमाणिक ग्रन्थो की संख्या २१ है। कवि के अधिकांश ग्रंथो और साहित्यों की रचना अवधी भाषा में हुई। परन्तु उसमें खड़ी बोली का विकासमान रूप परिलक्षित होता है[1]। कवि की भाषा संस्कृत के तद्भव, फारसी एवं अरबी के शब्दों के से प्रभावित है[2]।

रामरूपजी –

यह संत चरनदास के शिष्य थे और उनके समकालीन कवि थे। इनका प्रसिद्व ग्रंथ 'गुरू भक्ति प्रकाश' है जिनमें कवि ने चरनदास के चरित्र एवं अन्य विषेशताओं का उल्लेख किया है[3]। इस ग्रथ की रचना अवधी भाषा मे की गयी है। इस ग्रथ की भाषा अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक है। भाषा में प्रवाह है। और आवश्यकतानुसार शब्दों को विकृत भी कर लिया गया है[4]।

इन कवियों के अतिरिक्त सहजोबाई, दयाबाई, परमदास आदि ऐसे कवि थे जिनके काव्यों में अवधी के शब्दो की बहुलता है। परन्तु फिर भी इनके साहित्य की भाषा को अवधी नहीं कहा जा सकता। उनकी भाषा ब्रज या भोजपुरी के अधिक निकट प्रतीत होती है।

---

[1] दीक्षित, त्रिलोकीनाथ- पूर्वोद्धृत, पृ० ३१

[2] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३१

[3] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ०३१

[4] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३१ -३२

मुगल काल में अनेक सन्तों ने अपने साहित्य की रचना अवधी के माध्यम से किया हालांकि उनकी साहित्य की भाषा बहुत ही परिष्कृत नहीं है। भाषा के द्वारा भावों का प्रकाशन कवियों का प्रधान लक्ष्य था। उन्हें भाषा विषयक प्रयोग करने का न तो समय ही था, और न अभिरूचि ही। बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य पर अधिक बल देते थे। इसी कारण काव्य की आत्मा के प्रति वे विशेष अनुरक्त थे। सन्तों ने काव्य सर्वसाधरण के लिये लिखा था। काव्य लिखने की महत्त्वांकाक्षा से वे प्रेरित न थे। अतः उनकी रचनाओ में उत्तम काव्य की खोज करना बहुत उचित नही है। सन्त साहित्य किसी भी सहित्य से कम भाव प्रवण नहीं है। उनका ध्यान काव्य सौष्टव की और नही था। किन्तु जहां तक स्वानुभूति और लोक मंगल का सम्बंध है। सन्त काव्य का महत्त्व अक्षुण्य है। अपनी सरलता, सहजता, सहज भाव बोध, युगीन संदर्भ, मानवीयें गुणों की प्रतिष्ठा और तत्व बोध की दृष्टि से यह काव्य अपूर्व है। साथ ही उदात्त अनुभूति और हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति की दृष्टि से वह कम प्रभावशाली नहीं रहे।

रामकाव्य –

साहित्य के क्षेत्र में राम के महत्त्व की स्थापना ई०पू० आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी कृति रामायण में किया था। इसके बाद भी पुराणो, जातक ग्रथों, संस्कृत के नाटको आदि मे राम कथा का उल्लेख होता रहा। पूर्व मध्यकाल में भी राम कथा को लेकर अनेक साहित्यों की रचना होती रही। कवि चन्दवरदाई ने अपनी कृति पृथ्वीराजरासों में दशावतारों के वर्णन के प्रसंग में रामकथा का उल्लेख किया है। चौदहवीं शताब्दी में रामानंद ने उत्तर-भारत मे राम भक्ति भावना का प्रचार किया। १६वीं शताब्दी में भक्त कवि तुलसीदास ने अपनी रचनाओं द्वारा राम भक्ति को चरम पर पहुँचाने का प्रचास किया। उन्होंने अवधी में रचित 'रामचरितमानस' में राम के रूप मे ऐसे चरित्र को प्रति स्थापित

किया जो युग-युग के लिये अजस्र प्रेरणा का स्रोत बन गया। आचार्च रामचन्द्र शुक्ला के अनुसार -यद्यपि रामान्नद की शिष्य परम्परा के द्वारा देश के बडे भाग में राम भक्ति निरन्तर होती आ रही थी। और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थें, पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में राम की महिमा परमोज्वल प्रकाश १६वीं शताब्दी में तुलसीदास की वाणी द्वारा स्फुटित हुआ[1]।

मुगल काल में अवधी साहित्य में रामकाव्य की अबाध धारा प्रवाहित हुई। तुलसीदास ने अन्नतर अनेक कवि हुये जिन्होंने अवधी के माध्यम से रामकाव्यों की रचना किया[2]। राम काव्य की कुछ विशेष प्रवृत्तियां रही। राम काव्यों में विष्णु के रूप में राम की भक्ति का वर्णन किया गया। सभी कवियों ने राम को सर्वोच्य व सर्वश्रेष्ठ बताया। किन्तु अन्य देवी देवताओं की भी उपेक्षा नहीं की गयी। वैष्णव धर्म के आर्दशों को सम्मुख रखकर सेवक सव्य भाव पर बल दिया। राम काव्यों में ज्ञान और कर्म के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी भक्ति को श्रेष्ठ माना गया है। राम का अत्यन्त मर्यादित रूप प्रस्तुत किया है। इन कवियों ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया तथा जीवन की विविधताओं का सहज चित्रण किया। अवधी रामकाव्य के प्रमुख कवि तथा उनकी कृतियों का विवरण निम्न है।

गोस्वामी तुलसीदास –

अवधी में राम काव्य की रचना करने वालों में प्रथम नाम गोस्वामी तुलसीदास का आता है। इन्होंने अवधी के माध्यम से रामचरित मानस महाकाव्य की रचना करके इस भाषा को मधुर, सुसंस्कृत और परिकृष्त बना दिया।

---

1 शुक्ल रामचन्द्र, हिदी साहित्य का इतिहास वाराणसी, पृ० १२५-१२७

2 दीक्षित, त्रिलोकी नाथ, पूर्वोद्धृत, पृ० ३४-३५

तुलसीदास का जन्म १५३२ में बांदा जिले में राजापुर नामक ग्राम में हुआ था[1]। उनके पिता का नाम आत्मा राम व माता का नाम हुलसी था। तुलसी काशी में वेद, पुराण, वेदांग, उपनिषद, शास्त्र, रामायण, इतिहास आदि का विधिवत अध्ययन किया। विद्या प्राप्त करने के उपरान्त वे राजापुर आ गये। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। कुछ समय के उपरान्त तुलसी सांसारिक सुखों को त्याग कर राम की भक्ति में लीन हो गये। इन्होंने सम्वत् १६३१ (१५७४ई०) में रामचरित मानस काव्य की रचना प्रारम्भ की[2]। इनके माध्यम से राम भक्ति की अबाध धारा प्रभावित हुई। जो आज भी किसी न किसी रूप में साहित्य के पृष्ठो में दृष्टिगत होती है। मध्यकालीन भारत में सबसे बड़ी जरूरत लोक धर्म और संस्कृत के बिखरे तारों को एकत्र करने की थी[3]। तुलसी ने इस भगीरथ प्रयन्त का बीडा उठाया और समन्वय का मार्गदर्शन प्रस्तुत किया।

मध्ययुगीन धार्मिक, सामाजिक, और साहित्यिक, पुर्नजागरण मे रामान्नद की परम्परा में सगुण भक्ति कवियों में तुलसीदास लोक मानस के अति निकट रहें यही कारण है कि अपने देशकाल और समाज का चित्रण उनकी कृतियों में प्रतिबिम्बित हुआ। उन्होंने तत्कालीन हिन्दू समाज को भक्ति और प्रेम का मार्ग

---

[1] गुप्त, माताप्रसाद, -तुलसीदास ,प्रयाग, १९७२ पृ० १३८- १४०शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाराणसी, पृ० ८८ द्विवेदी, हाजरी प्रसाद, हिन्दी साहित्य, दिल्ली- १९६४, पृ० १४६

[2] सादर सिवहि नाइ अब माथा। बसउं बिसद राम गुन गाथा। संबता सोरह सौ एकतीस । करउं कथा हरिपद धीर सीसा।। गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, गोरखपुर, १९७० बालकाण्ड, पृ० १२६

[3] चन्द्र, सावित्री शोभा-समाज और संस्कृति ,दिल्ली, १९७६ ,पृ० १७६- १९०

दिखाने का कार्य किया[1]। तुलसी ने व्यक्ति के जीवन में विभिन्न प्रकार के परस्पर सम्बंधी तथा उसके प्रति कर्तव्यो का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढ़ग से रामचरित मानस में किया। वास्तव में रामचरितमानस एक विशाल ज्ञान कोष के रूप में जनता के सम्मुख रखा।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के अन्नतर अवधी में बरवै रामायण पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञाप्रश्न ,रामललानहछु, वैराग्य, संदीपिनी की रचना किया। इन्होंने ब्रजभाषा में भी काव्यों की रचना की थी इनमें मुख्यतः श्रीकृष्ण गीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली और दोहावली है[2]। तुलसीदास ने अपनी रचनाओ में मुख्यतः अवधी का प्रयोग तो किया है परन्तु ब्रजभाषा को भी नहीं छोड़ा है। इसके अतिरिक्त उर्दू, फारसी, संस्कृत, अरबी, अपभ्रश, गुजराती, बंगाली राजस्थानी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र किया है। तुलसी का अवधी भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इनके काव्यों में रामचरितामानस, पार्वती मंगल, जानकीमंगल में बैसवाड़ी अवधी, रामलला नहछू और बरवै रामायण में पूर्वी अवधी तथा रामाज्ञाप्रश्न और वैराग्य संदीपिनी में पश्चिमी अवधी की प्रधानता है[3]। तुलसी की भाषा और शब्दावली व्याकरण सम्मत है। अवधी में काव्य ग्रंथों की रचना करते समय कवि की दृष्टि अवधी के व्याकरणिक प्रयोगो और भाषा विषयक प्रमुख प्रवृत्तियों पर बराबर बनी रही। अवधी भाषा और व्याकरण की प्रायः सभी विशेषतायें कवि की भाषा में विद्यमान है। काव्यों में उत्पेक्षा, रूपक, उपमा आदि अलंकारों तथा श्रृंगार ,वीर, करूण, वीभत्स आदि

---

[1] शुक्ल, रामचन्द्र-पूर्वोद्धृत,पृ० १२९- ३० गुप्त, माता प्रसाद पूर्वोद्धृत चंद्र सावित्री -पूर्वोद्धृत १८४- १८५

[2] दीक्षित, त्रिलोकी नाथ अवधी और उसका साहित्य ,पृ० ५६

[3] दीक्षित, त्रिलोकी नाथ-पूर्वोद्धृत, पृ० ५६-५७ गुप्त माता प्रसाद, -पूर्वोद्धृत,

रसों का प्रयोग किया गया है[1]। इनकी रचना गीतों, छपपय दोहा, छन्दों व चौपाईयों में हुई। इसके अतिरिक्त अवधी की कहावतों, मुहावरों और लोकत्तियों का भी कुशलता के साथ प्रयोग किया है। तुलसी ने अपने युग में प्रचलित लगभग सभी काव्य रूपों तथा काव्य पद्वतियों को अपनाकर अपनी समन्वयात्मिकता प्रवृत्ति का परिचय दिया है[2]।

अग्रदास –

तुलसी दास ने बाद अवधी में राम-काव्य के रचनाकार के रूप में अग्रदास की गणना होती है। इनका अविर्भाव काल सम्वत् १६३२ (१५५७ ई०) माना जाता है। इनको अवधी भाषा में रामचरित से सम्बन्धित दो ग्रन्थ है। 'कुण्डलिया रामायण', और 'ध्यानमंजरी'[3]। ध्यानमंजरी में राम और उनके अन्य तीन भाइयों के रूप, सुंदरता, सरयू तथा अयोध्या के सौन्दर्य का अच्छा वर्णन किया गया।

नाभादास –

यह अग्रदास के शिष्य तथा रामान्नद सम्प्रदाय के थे। इनका अविर्भाव काल सम्वत् १६५७ (१६०० ई०) माना जाता है[4]। इनकी सुप्रसिद्व कृति 'भक्तकाल' है। इनमें राम-भक्ति और रामोपासना से सम्बंधित सुन्दर पदों रचना की गयी है। इसके अतिरिक्त इनमें दो सौ भक्तों का परिचय ३१६ छन्दो में

---

[1] दीक्षित, त्रिलोकी नाथ -पूर्वोद्धृत, पृ० ५६-५८

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "गोंस्वामी जी" के प्रादुर्भाव को हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक वरदान समझना चाहिए। हिन्दी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं में ही पहले-पहले दिखायी पड़ता है| शुक्ल रामचन्द्र, -पूर्वोद्धृत, पृ० १२६

[3] दीक्षित, त्रिलोकी नाथ- पूर्वोद्धृत,पृ० ६०-६१

[4] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ६०-६१

मिलता है[1]। मध्ययुग में वैष्णव आदोलन की रूपरेखा समझने के लिये यह प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण सामाग्री प्रस्तुत करता है। कवि ने पूर्ववर्ती तथा समकालीन सन्तों का बिना किसी प्रकार के पक्षपात अथवा विरोध व संकीर्णता से मुक्त होकर सार पूर्ण परिचय इस रचना में दिया है[2]।

लालदास –

अवधी में राम काव्यों की रचना करने वाले कवियों में लालदास का विशिष्ट स्थान है। कवि ने अयोध्या में रहकर सीता-राम की लीलाओं का ललित वर्णन अपनी कृति अवध विलास में किया है। इसका रचना काल सम्वत् १७००(१६४७ ई०) माना गया है[3]। इस काव्य की रचना दोहा चौपाई में की गयी है। कवि लालदास ने ग्रंथ को अवध में रहकर अवधी मे रचना करने का औचित्य इस प्रकार दिया है।

तीरथ अवधि जे अवध है। राम अबधि अवतार।
तैरे भाषा की अवधि, अवध विलास अपार।।

सुधा प्रगट लौकिक वचन, सुनि समुझै सब कोई।
कठिन शब्द हैं संस्कृत, भाषा कहिये सोई[4]।।

अवध विलास ग्रन्थ १८ विश्रामों और ६०२ पृष्ठों में पूरा हुआ है। इस ग्रन्थ में राम के जन्म से लेकर उनके वनगमन तक की कथा का वर्णन है। प्रारम्भ में अयोध्या के वैभव विलास का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है और रघुवंश के

---

[1] वही, , पूर्वोद्धृत

[2] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ६१- ६३

[3] संवत सत्रह सौ वरष, सुदि वैसाष सुकाल, लाल अवध माधि रही
रची, अवध विलास रसाल।
लाल दास अवध विलास, (स० चण्डिका प्रसाद दीक्षित) पृ० -३ हिन्दी भाषा शब्द कोष, खण्ड, पृ० २८१

[4] लालदास, पूर्वोद्धृत, पृ० ६-७

राजाओं की महत्ता का उल्लेख है उसके उपरान्त रामचरित का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत कथा के बीच मंत्रों, भक्ति पद्वतियों, प्राणि भेदों, अष्टभागों कियाओं आदि का भी वर्णन है। अवध विलास एक उत्तम चरित्र काव्य है।

अवधी में रचित अन्य रामकाव्यों में रामप्रिया शरण की कृति की रचना 'सीतायन' है। इसके काव्य का रचना काल सम्वत् १७६० (१७०३ ई०) है इसमें सीता और उनकी सखियों का चरित्र का वर्णन है। साथ ही राम के चरित्र का भी वर्णन किया गया है। कवि जानकी रसिक शरण ने भी इसी समय सम्वत् १७६० (१७०३ ई०) में 'अवधी सागर' काव्य की रचना किया। जिसमें राम तथा सीता के चरित्र का सरस और मनोहर ढ़ग से वर्णन किया गया है[1]।

कृष्णकाव्य –

मुगल काल में रचित अवधी कृष्ण काव्य रामकाव्य की मूलधारा से प्रभावित हुआ। अवधी के इन कवियों ने दास्य भक्ति के आधार पर कृष्ण कथा को वर्णनात्मक तरीके से सीधे सादे शब्दों में कहा जिनमें श्री कृष्ण के पराब्रह्म या आदिब्रह्म होने का स्थान-स्थान पर संकेत किया गया। कृष्ण का यह चरित्र मर्यादा की सीमा से बंधा हुआ था कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक रूप का वर्णन तो किया किन्तु उनके लोक रक्षक रूप के महत्त्व को अधिक महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रतिपादित किया गया।

अवधी भाषा में उपलब्ध कृष्ण काव्यों (साहित्य) में सर्वप्रथम रचना माधवीदासी की मिलती है। जो फुटकर पदों के रूप में उपलब्ध है[2]। अवधी

---

1 दीक्षित, त्रिलोकी नाथ -पूर्वोद्धृत, पृ० ६०-६५

2 सिन्हा, सावित्री - मध्य कालीन हिदी कावियत्रियां, दिल्ली, १६५३, पृ० २१४

कृष्ण काव्य को प्रबंध काव्य के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य कवि लालच दास ने किया। इनकी रचना हरिचरित्र में कृष्ण की कथा को क्रम बद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। हरिचरित्र काव्य पद्धति से परवर्ती कवि भी पर्याप्त प्रभावित हुए है। मुगल में कृष्ण काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं के विवरण निम्न है।

माधवी –

इनका पूरा नाम माधवीदासी था। यह भक्त महिला चैतन्य सम्प्रदाय की अनुयायिनी थी। माधवीदासी ने राधा-कृष्ण पर आधारित भावुकता पूर्ण पदो की रचना। किया जिसमें दास्य भक्ति की प्रधानता है और तन्ममय कर देने की क्षमता है[1]। पदो में शब्द चयन सुन्दर है। पदों में संस्कृति के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। काव्य की भाषा अवधी है[2]।

लालचदास –

कवि लालच दास रायबरेली के निवासी थे। इन्होंने सम्वत् १५८५ (१५२८ ई०) में विष्णु पुराण तथा सम्वत् १५८७ (१५३० ई०) में 'भगवत दशम स्कंध' या 'हरिचरित्र काव्य' की रचना किया[3]। विष्णुपुराण के अंतर्गत कवि ने कृष्ण चरित्र का वर्णन किया है। इसमें मरण के समय कृष्ण और उद्धव की वार्ता भी दी गयी है। हरिचरित्र में कृष्ण कथा को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है। इस कथा में कृष्ण जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला है[4]। काव्य में

---

1 सावित्री ,सिन्हा- मध्यकालीन हिदी कवियित्रियां, दिल्ली, १९५३, पृ० २१४

2 शर्मा, मुरारीलाल, सुरस अवधी कृष्ण काव्य और उसके कवि, आगरा, १९४७, पृ० ४०

3 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३९-४०, १९६७, पृ०४० शुक्ला, रामचन्द्र हिदी साहित्य का इतिहास, पृ० १९८

4 शर्मा मुरारीलाल, पूर्वोद्धृत, पृ० ४१- ४३

कृष्ण को आदि ब्रह्म के रूप में माना गया है और राम, कृष्ण और शिव को अभेद मानकर उनका स्मरण किया है। कवि ने कृष्ण के मार्यादा भाव (लोकरक्षक) और लीलाभाव (लोकरंजक) दोनो ही रूपों का वर्णन किया है। कवि ने राम और कृष्ण के नाम में कोई भेद नहीं माना है। ईश्वर की सगुण भक्ति पर विशेष बल दिया है। लालचदास कृत हरिचरित्र उनके जीवन काल में पूरा न हो सका इसे बाद में कवि आसानंद ने पूरा किया[1]।

कवि लालचदास ने दोनों काव्यों की रचना दोहा-चौपाई शैली में पूरा किया है। हरिचरित्र में चौपाई के बाद दोहा दिया गया है। हरिचरित में चौपाई के बाद दोहा देने की पद्वति में नियम नही है। कही ६ आर्धाली के बाद दोहा दिया गया है। तो कही १७ अर्धाली के बाद। वैसे सारे काव्य में ६ आर्धलियो से लेकर १७ अर्धालियों के बाद दोहा रखा गया है[2]। काव्यों में तीन रसों का अधिक प्रयोग किया गया है अद्भुद, शांत और श्रृगार। कवि ने काव्य को और भी उत्तम और ग्राह्य बनाने के लिये अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया इनमें अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकार प्रमुख रूप से प्रयोग किये गये है। जो काव्य गत सौन्दर्य में वृद्वि करते है। काव्य की भाषा अवधी है। इसके अतिरिक्त उर्दू, फारसी, संस्कृत, रामस्तानी भाषा के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है[3]।

---

[1] शर्मा, मुरारीलाल, 'सुरस' पूर्वोद्धृत, पृ० ४२-४४

[2] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ४३-४४

[3] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ४४

आसानंद –

कवि आसानंद रायबरेली के निवासी थें। इनका जन्म कायस्थ परिवार में हुआ था। यह उदार, धार्मिक प्रवृत्ति के गुरूभक्त थे[1]। लालचदास ने अपने जीवनकाल में हरिचरित्र के केवल ४५ अध्याय ही लिख पाये। जब अस्वस्थ हो गये तो उन्होंने गंगाजी के तट पर इस ग्रन्थ के अपूर्ण रह जाने पर दुःख प्रकट किया और अपने शिष्यों को उसे पूरा करने का आदेश दिया[2]। लालचदास की मृत्यु मे कुछ वर्ष बाद सम्वत् १६०१ (१५४४ ई०) में आसानंद ने ४६ वें अध्याय से हरिचरित्र ग्रंथ को लिखना प्रारम्भ किया और ६० अध्यायों में समाप्त कर दिया[3]।

भीम –

कवि भीम ने अवधी में दो प्रसिद्व कृति 'डगवै कथा' तथा 'चकव्यूह' कथा की रचना किया था। डगवै कथा में भीम कवि ने अपने गांव का नाम अमरनगर बताया है[4]। यह कायस्थ कुल में रतन बलबीरू के यहाँपैदा हुये थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता बघेलराजा भोपति की राजधानी का विस्तार से वर्णन किया है। बघेल राजा की पुत्री घटमादेवी का महाभारत की कथा के प्रति सहज अनुराग था। अतः कवि ने 'डंगवै कथा' की रचना की। राजकन्या महाभारत की डंगवै कथा का नित्य पाठ करती थी। कवि ने चक्रव्यूह कथा की रचना

---

1 वही, पूर्वोद्धृत, पृ०४५-४६

2 वही, पूर्वोद्धृत, पृ०४५

3 वही, पूर्वोद्धृत, पृ०४५-४८ त्रिपाठी, विश्वनाथ- प्रारम्भिक अवधी का अध्ययन, पृ० ७०

4 वही, पूर्वोद्धृत, पृ०४६-४८

महाभारत के द्रोणापर्व के अतंर्गत ३३वें अध्याय से लेकर ७२वें अध्याय तक के आधार पर की है[1]।

लक्षदास –

कवि लक्षदास गुनीरगांव , हसवा, फतेहपुर के निवासी थे। यह १५ ६७ ई०(१६२४ सम्वत्) के लगभग विद्यमान थें । लक्षदास अपने गुरू हरिव्यास देव से सुनी हुई कृष्ण कथा के आधार पर 'कृष्णरससागर' काव्य की रचना किया। इसमें कृष्ण चरित्र की कथा को विविध रूपों में प्रस्तुत किया गया है[2]। लक्षदास के पहले उपलब्ध अवधी कृष्ण काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि उन कवियों ने कृष्ण काव्य का वर्णन केवल परम्परा का पालन करते हुए किया। लक्षदास ने अपने समय के विभिन्नकाव्य शैलियों को भी अपनाया और ऋतुवर्णन, बारहमासा, भ्रमरगीत, तथा नामावली आदि की परम्पराओं में योगदान देकर अवधी कृष्ण काव्य को एक नई दिशा देने का प्रयत्न किया[3]।

लक्षदास ने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में भक्ति भावना का विस्तार प्रायः दास्य और वात्सल्य भाव में ही किया गया , किन्तु लक्षदास ने दास्य, वात्सल्य, श्रृंगार तथा सखी भाव में अपनी रचनाएं लिखी। उन्होंने विनय के पद तो प्रायः दास्य भाव से प्रेरित होकर लिखे किन्तु अन्य रचनाओं में वात्सल्य और श्रृगार के आधार पर कथावस्तु का निर्माण किया गया[4]।

---

1 शुक्ला, त्रिभुवन्नाथ -अवधी का स्वनिर्मिक अध्ययन, इलाहाबाद, पृ०३८-४३

2 शर्मा, मुरारीलाल, 'सरस' -पूर्वोद्धृत, पृ० ७४, ६२-६३

3 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ६६- ११०, ३००-३०७

4 वही, , पृ० १० पूर्वोद्धृत, पृ. ३०७

अब्दुर्रहीम खानखाना–

अब्दुर्रहीम अकबर के संरक्षक बैरमखां के पुत्र थे। इनका जन्म १५५६ (१६१३ सम्वत्) में लाहौर में हुआ था[1]। अकबर दरबार के सुप्रसिद्व लोकप्रिय कवि के रूप में इनका विशेष स्थान प्राप्त था। अकबर के समय ये प्रधान सेनानायक और मंत्री थें तथा अनेक बड़े-बड़े युद्धों भेजे गये थे। कवि का उपनाम (तखल्लुस) रहीम या रहिमन मिलता है[2]। रहीम को संस्कृत, अरबी, फारसी, अवधी, ब्रजभाषा आदि पर पूर्ण अधिकार था। इनकी प्रमुख रचनाएं रहीम सतसई, बरैवे, नायिका भेद, श्रृंगार सोरठा, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी, नगरशोभा, बरवै खेटकौतुक, है। रहीम ने फारसी में एक दीवान भी लिखा और वाकयात-ए-बाबरी का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया था। रहीम द्वारा लिखे काव्यों की भाषा मुख्यतः ब्रजभाषा है। किन्तु उनमें भी अवधी का प्रयोग मिलता है। 'बरवै नायिका भेंद तथा बरवै 'दोनों ही कृतियों की रचना कवि ने अवधी में किया है[3]। इनमें अवधी के ठेंठ शब्दों का प्रयोग किया है। जिसकी भाषा अत्यंत्र मधुर और श्रृंगार भावो उत्तेजक है। बरवै नायिका भेद में कवि ने नायक एवं नायिकाओं के भेद तथा उपभेद के उदाहरण दिये है। 'बरवै' में श्रृगारिक भावनाओं का समावेश है। जिनमें विशेष रूप से विप्रालम्भ श्रृगार का वर्णन

---

[1] अबुल फजल- अकबरनामा, भाग-दो, पृ० ७६

[2] शर्मा, मुरारीलाल सरस-पूर्वोद्धृत, पृ० ३१३-३१४ हिन्दी भाषा शब्दकोष, खण्ड-१, पृ० २८१, दीक्षित, त्रिलोकी नाथ, शर्मा मुरारीलाल, पूर्वोद्धृत, पृ० ३१३ अग्रवाल, सरयू प्रसाद, अकबर दरबार हिन्दी कवि, पूर्वोद्धृत, पृ० ६५

[3] हिन्दी भाषा शब्दाकोष, खण्ड-१, पृ० २८१, दीक्षित त्रिलोकी नाथ पूर्वोद्धृत, पृ० ६५, शर्मा मुरारी लाल 'सरस' पूर्वोद्धित, पृ० ३१३ अग्रवाल सरयू प्रसाद अकबर दरबार के हिन्दी कवि लखनऊ, १६५०

किया गया है[1]। इसमें कृष्ण के मथुरा आगमन पर गोपिकाओं के उद्धव से अपना विरह वर्णन निवेदन करने का प्रसंग लिया गया है। कृष्ण के विरह वर्णन के संदर्भ में चार मास आषाढ, सावन, भादों तथा फाल्गुन मे विरहिणी के हृदय की भावना व्यक्त की गयी है। दोनो ही कृतियों अवधी की श्रेष्ठ रचनांए है।

सदानन्द –

कवि सदानन्द का समय १६२८ ई० (१६८६संवत्) के आस-पास माना जाता है। इन्होंने अवधी भाषा में 'जैमिनीपुराण' को प्रबंध काव्य के रूप में लिखा[2]। काव्य के आरम्भ में कवि ने श्री कृष्ण के महाभारत रूप की वंदना दोहो में की है। इसके बाद कथा वस्तु के प्रसंगों के आधार पर कथानक का (श्रृंखलाबद्ध करने के लिये) अध्यायों में विभाजन किया गया है। कथा का विस्तार ५६ अध्यायों में किया गया है[3]। इस ग्रंथ में कथा के पूर्वों पर सम्बंध में समायोजन करने के लिये कथा कहने और सुन्ने का कार्य जैमिनी- जनमेजय और सदान्नद महाराज-शिवप्रसाद सिंह के मध्य किया गया है।

युद्व के वर्णनों की अधिकता के कारण ग्रंथ में वीररस प्रधान और फिर श्रृगार रस उसके सहायक रस के रूप में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया गया है। वर्णनों में सरसता और रोचकता है। कवि ने कहीं-कहीं उपदेशात्मक शैली का भी आश्रय लिया है[4]।

रघुनाथ रामसनेही – यह राम सनेही सम्प्रदाय के पूर्व तक थे। इस सम्प्रदाय के अधिकांश अनुयायी अब भी राजस्थान में मिलते है। इन्होंने

---

1 शर्मा मुरारी लाल 'सरस' पूर्वोद्धृत, पृ० १३- १५

2 शर्मा, मुरारीलाल-पूर्वोद्धृत, पृ० ३१४-३१५

3 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३१४-३१५

4 वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ३१४-३१५

'विश्राम सागर' की रचना १६३० ई० ('१६८७ सम्वत्) में किया[1]। ग्रंथ के रचना का कारण बताते हुए कवि ने कहा है कि "अनेंको ग्रंथ में विविध मत मिलते है। जिनके कारण जनसाधारण भ्रम में पड़ जाता है। अतः सभी ग्रथों का सार ग्रहण करके कवि ने विश्राम सागर की रचना किया है। इस ग्रंथ में षट्शास्त्र, वेद और पुराणों के मत का सार है इसलिए इसका नाम 'विश्रामसागर' रखा है। यह ग्रन्थ कल्पद्रुम के समान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, हरि, भक्ति , वैराग्य आदि सभी फलों को देने वाला है[2]।" राम सनेही ने दार्शनिक मतों का विवेचन तथा जप-तप दान-धर्म, पाप-पुण्य आदि लौकिक विषयों पर अपना अभिमत प्रकट किया है। इन्होंने विश्राम सागर को तीन खण्डों में विभाजित किया है। (१) इतिहासायन (२) कृष्णायन (३) रामायण[3]। कवि ने प्रत्येक खण्ड की समाप्ति पर उसमें प्रयुक्त छन्दों तथा उसकी संख्या का विवरण दिया है। इस ग्रंथ में मुख्यतः कथा दोहों-चौपाइयों में दी है। भाषा में सरलता, स्वाभाविकता और प्रसाद गुण है जिनमें तन्मय कर देने की शक्ति है। इस ग्रन्थ में अवधी के साथ बृजभाषा का भी प्रयोग कियाहै। जिसमें ब्रजभाषा मुख्यतः कृष्णायन खण्ड में प्रयोग की गयी है[4]। यह ग्रंथ परवर्ती विश्राम सागर ग्रंथों का मार्ग निर्देशक रही है। बाद के सारे विश्राम सागर इसी की परम्परा और शैली के आधार पर लिखे गये है। उपरोक्तकवियों के अतिरिक्त अवधी में कृष्ण काव्यों की रचना करने वाले कवियों की सूची में कवि बलवीर कृत, 'दंगवपर्व,' गोपीनाथ द्विज कृत 'भगवत दशम स्कंध पूर्वाद्व,' भीष्म कृत 'बालमुकुंद लीला', मानसिंह कृत 'अश्व मेद्य यज्ञ', गोपाल कवि कृत,' सुदामा शतक' आदि है।

---

[1] शर्मा, मुरारीलाल-पूर्वोद्धृत, पृ० ३१५-३१६

[2] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३१५-१७

[3] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३१५- १७

[4] वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ३१७

मुगल कालीन अवध मे अवधी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं मे भी साहित्यों की रचना की गयी थी। कृष्ण भक्ति धारा के भक्त कवियों ने बृजभाषा में साहित्यों का सृजन कर ब्रजभाषा साहित्य के उ ति में योगदान दिया। इनमें प्रमुख भक्त कवियों के नाम निम्नलिखित है।

नरहरिमहापात्र –

इनका जन्म १५०५ ई० (१५६२ सम्वत्) में राय बरेली जिला के डलमऊ तहसील के पखरौली नामक ग्राम में हुआ इनका बचपन रायबरेली में व्यतीत हुआ बाद में यह असनी आ गये[1]। यह कश्यप ग्रोत्र के ब्राह्मण थे। इनके प्रारम्भिक जीवन कें बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। परन्तु युवावस्था में यह उस समय के प्रसिद्व विद्वानों के सम्पर्क में आये इनका बाबर, हुँमायू, शेरशाह, सलीम शाह से सम्बध रहा[2]। रीवा नरेश वीर भानु के पुत्र रामचन्द्र ने उनकी प्रशंसाा की थी। अकबर के समय प्रसिद्व हिंदीं कवियों में इनकी गणना होती थी। अकबर ने इनकी विद्वता और उदार व्यक्तित्व की सराहना की। नरहरि ने अपने संरक्षकों और अन्य चाहने वालों के सम्मान में अनेक रचनाये की। यह वैष्णव और कृष्ण के भक्त थे। इनकी रचनायें मुख्यतः धार्मिक तथा आध्यात्मिक है[3]। इनकी प्रमुख कृतियां 'रूक्मिणी मंगल', 'छपपय नीति' और 'कवित्र संग्रह' है। इनमें रूक्मिणी मंगल के अतिरिक्त अन्य रचना उपलब्ध नही होती, केवल फुटकर छन्द ही संग्रह ग्रंथो में यंत्र-तंत्र मिलते है[4]। नरहरि की फुटकर रचनाओं में नीति, लोक मार्यादा, राधाकृष्ण का रूप-सौन्दर्य, गोपी विरह,

---

1 अग्रवाल ,सरयू प्रसाद-अकबर दरबार के हिन्दी कवि, १६५०, लखनऊ, पृ० ५८

2 वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ५८- ५६

3 अग्रवाल, सरयू प्रसाद- पूर्वोद्धृत, पृ० ५४- ७६

4, वही, , पूवोद्धृत, पृ० ३०१

सीयस्वयंवर राम और शिव की उपासना आदि का वर्णन मिलता है। नरहरि ने बारहमासा भी लिखा था। जिसमें विरह की अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रकृति के सुन्दर चित्रों की संशिष्ट योजना प्रस्तुत करके उन्हें उद्दीपन रूप में चित्रित किया गया है[1]।

मानराय –

इनका जन्म १५२३ ई में असनी गांव फतेहपुर में हुआ था। यह असनी के चारण कवि थे[2]।

सूरदास मदनमोहन –

यह अकबरी के शासान में संड़ीला के अमीन पद पर नियुक्त थे[3]। यह जाति के कायस्थ और संडीले के रहने वाले थे। इनके विषय में यह प्रसिद्व था कि जो कुछ इनके पास होता था वह साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे। इनकी कोई प्रसिद्व रचना उपलब्ध नहीं हैं कुछ फुटकर पद वैष्णव कीर्तिन संग्रहों तथा हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में प्राप्त होते है। इनके कविता का रचनाकाल १५३८ई० (१६६५सम्वत्) के लगभग अनुमान किया जाता है[4]।

नरहरि सहाय –

यह असनी, फतेहपुर के निवासी थे। और अकबर के दरबारी कवि थे[5]। इनके वंशज बनारस औरा रायबरेली के थे।

---

1 वही, -पूर्वोद्धृत,पृ० ३०८- ३०६

2 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० १५८- १५६

3 अग्रवाल, सरयू प्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृ० ४६- ४७

4 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ४६-४७

5 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० ४६-४७

हरिनाथ–

यह असनी फतेहपुर के रहने वाले थे। यह अपने समय के उच्च कोटि के विद्वान और कवि थे, तथा अकबर दरबार के प्रसिद्व कवि नरहरि के पुत्र थे।

बेनी –

यह भी असीन फतेहपुर के निवासी थें इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की है[1]।

सूबा अबध के उपरोक्त कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी अनेक कृतियों की रचना कर अवध के साहित्य को समृद्ध किया। इनमें मुख्यतः 'मुबारक' (१६३३ ई०) जो बिलग्राम के निवासी थे। एक उच्च कोटि के कवि थे[2]। इनका पूरा नाम सैय्यद मुहम्मद अली था। सस्कृत ,अरबी, फारसी भाषाओं के ऊपर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी प्रमुख कृतियों 'अलक शतक' 'तिलक शतक' है। इसी श्रेणी में शाह उल्लाह का नाम आता है। यह औरंगजेब के समकालीन थे। इनका जन्म बिलग्राम में हुआ था। इनका प्रमुख काव्य 'प्रेम प्रकाश' हैं एक अन्य कवि जमाल थे। जिनका जन्म पिहानी हरदोई में १५४४ ई० में हुआ था। इनके द्वारा लिखे गये नीति और श्रृंगार के दोहे बहुत ही लोकप्रिय हुए। दोहो में भावों कि व्यंजना बहुत ही मार्मिक और सीधें-साधे ढंग से की गयी है। जमाल कवि का कोई ग्रंथ तो नही मिलता लेकिन कुछ संगृहीत दोहे अवश्य प्राप्त होते है। इसी क्षेत्र के प्रसिद्व 'कवि कादरीबख्श' थे। इनका जन्म १५७८ई० (१६३५सम्वत्) के आस-पास माना जाता है[3]। इनके द्वारा लिखा

---

1 शुक्ला, रामचन्द्र-पूर्वोद्धृत, पृ० ११३

2 वर्मा, धीरेन्द्र - (स०) हिदी साहित्य, प्रयाग, १९५६, भाग-दो , पृ० ४०५

3 शुक्ल, रामचन्द्र-पूर्वोद्धृत, पृ० २७२

गया कोई ग्रथ नही मिलता लेकिन कुछ फुटकर कविताएं प्राप्त होती है[1]। अपनी कविताओं में इन्होंने जनभाषा का प्रयोग किया है। बिलग्राम के कवि रसलीन जिनका पूरानाम सैय्यद गुलामनबी था। इस क्षेत्र के प्रसिद्व कवि थे। इनकी प्रसिद्व कृति 'अंग दपर्ण' है। जिसमें अंगो का अत्यन्त चमत्कारपूर्ण वर्णन है।

सूबा अवध में फारसी भाषा में ग्रंथों की रचना करने वाले प्रमुख कवियों में पीर मुहम्मद लखनवी का नाम आता है। जिन्होंने १६५६ ई० में 'मंजिल-ए-अरबा' की रचना किया। यह ग्रंथ सूफी वाद पर आधारित है। १६७१ई० में इन्होंने 'तारीब-ए-सलाद' की रचना किया जो नमाज के विषय पर आधारित है। इनकी एक अन्य रचना 'रिसाला-ए-दरहलात-ए-शाह-पीर-मोहम्मद' थी। यह पीर मुहम्मद की आत्मकथा पर आघारित ग्रंथ है[2]। एक अन्य फारसी कवि जो बिलग्राम के निवासी थे। इनका नाम जुनैद मोहम्मद हतीम बिलग्रामी था। इन्होंने नवस नम्हा-ए-सदत-ए-वा-बाराह की रचना की[3]। इस ग्रथ में बिलग्रामी और बाहर के सैय्यदों के वंश के विषय में लिखा गया है। इसकी रचना १६६८ में हुई थी[4]।

❋ ❋ ❋

---

1 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० २७२

2 मार्शल, डी०एन० -मुगल्स इन इंडिया, भाग-१, लंदन, १६६७ ,पृ० ३६०

3 वही, , पूर्वोद्धृत, पृ० २३६

4 वही, , पूर्वोद्धृत ,पृ० २३६

चतुर्थ अध्याय
धर्म

अवध क्षेत्र धार्मिक तीर्थ स्थानों से महिमा मंडित रहा है। इस क्षेव्र में भक्ति आन्दोलन तथा सूफी आन्दोलन का प्रभाव गहराई से व्याप्त था। भक्ति सन्तों तथा सूफियों के प्रयासों से मध्यकालीन धार्मिक और सामाजिक जीवन में एक नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ। हिन्दू समाज की दृष्टि में अवध हिन्दू धर्म तथा संस्कृत का प्रमुख केंन्द्र था। धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पूरा भारत एकता और विभिन्नता का सहज केन्द्र रहा है। एक सूबा (प्रान्त) जिला या किसी प्रकार का क्षेत्रीय विभाजन इसमें आड़े नहीं आते हैं हिन्दू या मुस्लिम सन्त, सूफी किसी एक क्षेत्र के नहीं होते। वे पूरी मानवता की सेंवा करते हैं। उनके विचारों का प्रभाव दूर दूर तक पड़ता है। किसी क्षे़त्र से वे बंधे नहीं होते और नही उनका विचार। इसलिए जब किसी सूबा की सांस्कृतिक पहचान ढूँढ़ी जाती है तो उसमें ऐसे गनीषियों का उल्लेख भी आना स्वाभाविक है जिनका कार्यस्थल प्रत्यक्षतः कुछ दूर रहा हो। रामान्नद एवं कबीर जिस अजस्र भक्ति धारा का प्रवाह किए वह एक परम्परा एवं सम्प्रदाय बन गए। इनके अनुयायी आज तक विद्यमान है। सूबा अवध में भी अनेक अनुयायी थे। इसलिए रामान्नद एवं कबीर से अवध का सम्बन्ध अविच्छेद्य है।

हिन्दू चिन्तन धारा को भक्ति आन्दोलन ने अत्यधिक प्रभावित किया। आठवीं शतावदी में शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म में एक ठोस दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान कर अद्धैतवादी दर्शन का प्रतिपादन किया और मोक्ष के लिए ज्ञान मार्ग को सर्वश्रेष्ठ बताया। किन्तु शंकराचार्य का अद्धैतवादी दर्शन जटिल और बौद्धिक होने के कारण जन साधारण के समझ में नही आया और साधारण जनता इससे अधिक प्रभावित न हो सकी। सर्वप्रथम रामानुजाचार्य ने मोक्ष

प्राप्ति के लिए भक्ति मार्ग को सबसे सहज बताया। भक्ति धारा की दो विषेशताए रही, निर्गुण भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा।

सगुण भक्ति धारा के अनुसार ब्रहम् के अनेक गुण हैं वह सद्-चित-आन्नद है और इस ब्रहम् को भक्ति द्वारा साधारण मनुष्य प्राप्त कर सकता हैं। निर्गुण भक्ति धारा के अनुसार ब्रहम् सर्वगुण सम्पन्न है और सर्वस्त व्याप्त है और इसकी एकाग्रचित अराधना से प्राप्ति हो सकती है[1]। भक्ति मार्ग का आध्यात्मिक और बौद्धिक दोनों पक्ष जनसाधारण के बौद्धम्य थे इसलिए व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ[2]।

उत्तर भारत में रामान्नद भक्ति मार्ग के सबसे बड़े प्रर्वतक थे[3]। इनका जन्म १२६६ ई० में प्रयाग के कान्य कुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था तथा मृत्यु १४१० ई० में हुई[4]। इनकी शिक्षा प्रयाग एवं काशी में हुई रामान्नद के प्रथम गुरू

---

[1] हुसैन युसूफ— ग्लिपसेंस आफ मेडिकल इंडिया कल्चर, बम्बई १६६२, पृ० ११-१५

ताराचन्द इन्फलुएन्स आफ इस्लाम ऑन इण्यिन कल्वर, इलाहाबाद, १६५४, इ० पृ० ३-४

[2] कीय एफ, ई० कबीर एण्ड हिज फालोअर्स, कलकत्ता, १६३१, पृ० ३ हुसैन, युसुफ - पूवौद्धित, पृ० ३- ४

[3] चतुर्वेदी, पशुराम-उत्तर भारत की संत परम्परा, प्रयाग, १६५१, पृ०२२०-२२१ ताराचन्द-पूर्वोद्धित, पृ० १४३

कीय, एफ० ई०-पूर्वोद्धित, पृ० १४३

[4] बड्थवाल, पी० डी०- निर्गुण स्कुल आफ हिन्दी पोल्ट्री, बनारस,१६३६, पृ० २४६ श्रीवास्तव, बी० एन०- १६३६, पृ० २४६

श्रीवास्तव, बी एन०- रामान्नद सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, प्रयाग, १६५७, पृ० ७६

वेदान्ती राधवान्नद थे। जो श्री सम्प्रदाय के अनुयायी थे[1] और बनारस के श्रीमठ के मुखिया थे। कुछ समय पश्चात् खान-पान के आचार संबंधी कुछ मत भेदों के उत्पन्न हो जाने के कारण रामान्नद ने अपने गुरू से अलग होकर एक नवीन मत का प्रवर्तन किया[2] जो रामावत् सम्प्रदाय कहलाता हैं।[3] रामान्नद ने अपना अधिकांश समय काशी में व्यतीत किया। रामान्नद ने मूर्तिपूजा, जातिप्रथा, अंधविश्वासों, आडम्बरों आदि का विरोध किया और एकता पर विशेष बल दिया। इनके अधिकांश अनुयायी निम्न वर्ग के थे।[4] रामान्नद एक ही निराकार ईश्वर राम पर विश्वास करते थे[5] और राम भक्ति पर विशेष बल दिये। इनके अनुयायी रामान्नदी अवधूत और वैरागी● कहलाये जो साधारण जीवन व्यतीत करते थें। कुछ समय पश्चात् रामान्नदी सम्प्रदायों की अनेक स्थानों पर स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश में इनके महत्पूर्ण केन्द्र इलाहाबाद, चूनार तथा बनारस थें कालान्तर में अयोध्या इनके गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बना[6] रामान्नदी वर्ग के अनुयायी सम्पूर्ण अवध में फैले हुए थे। रामान्नद के प्रमुख शिष्य अन्नतान्नद,

---

[1] ताराचन्द-पूर्वोद्धित, पृ० १४४, चतुर्वेदी पशुराम- पूर्वोद्धित, पृ० २२२

[2] ताराचन्द-पूर्वोद्धित, पृ० १४४, चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धित, पृ० २२२-२२३
हुसैन, यूसुफ-पूर्वोद्धित, पृ० १४-१५

[3] सिन्हा, हरेंदप्रताप-भारत को प्रयाग की देन, इलाहाबाद, १९५३, पृ० ३३

[4] कीय, एफ० ई०- पूर्वोद्धित, पृ० ४

[5] फर्कुहर, जे० एन०- एन आउट लाइन आफ द रिलिजन लिट्रेचर आफ इंडिया, १९२०, पृ० ३२६.३२७

● वैरागी शब्द का प्रयोग रामानन्दीसम्प्रदाय के साधुओं के लिये अधिक प्रचलित है। इस शब्द की उत्पत्ति वैराग्य शब्द से हुई है। सांसरिक बंधनों से मुक्त व्यक्ति को वैरागी कहा जाता था।

[6] नेविल, एच० आर०- डिसिट्रिक्ट गजेटियर फैजाबाद, इलाहाबाद, १९०५, पृ० ६१-६३

कबीर, नारायणन्नद, सुरसुरान्नद, सुखान्नद, भवान्नद, पीपा, रैदास, धा, सेना, पद्मावती, सुरसरी थी[1]।

निर्गुण भक्ति शाखा –

रामानन्द के शिष्यों में कबीर सबसे महत्पूर्ण थे।[2] इन्होंने रामानन्द की शिक्षाओं का प्रचार- प्रसार किया। कबीर की शिक्षा तथा विचार अत्यधिक उदारवादी थी। इनका अधिकांश समय काशी में व्यतीत हुआ। अपनी ज्ञान क्षुधा शान्त करने में निरन्तर लगे रहे तथा अनेक स्थानों का भ्रमण कर कई सन्तों, सूफियों से मिले। इनका मस्तिष्क हिन्दू मुस्लिम परम्पराओं से ओत-प्रोत था तथा दोनों धर्मो के लोग इनके पास आया करते थे।

कबीर रामान्नद के दर्शन एवं विचार धारा से अत्यधिक प्रभावित थे।[3] कुछ लोग इन्हें शेख तकी का शिष्य कहते हैं[4] और इनसे मतभेद होने पर कबीर 'मगहर' चले आये थे।[5] यह भी कहा जाता है कि उदारवादी वैष्णव विचार धारा के सन्त पीर पीताम्बर (सम्भवतः जोनपुर के निवासी) जिनके शिष्य हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों समुदाय के लोग थे कबीर भी इनके पास जाया करते थे[6]। उत्तर भारत में कबीर निर्गुण धारा के प्रमुख सन्त थे। कबीर निराकार, निर्गुण ईश्वर पर विश्वास करते थे वह परमब्रह्म को कोई नाम नही देना चाहते थे लेकिन

---

[1] चतुर्वेदी, पशुराम- पूर्वोद्धित-पृ० २२३-२२४, कीय, एफ० ई०-पुर्वोद्धित, पृ० ४ ताराचन्द-पूर्वोद्धित, पृ० १७८-१७६

[2] कीय, एफ० ई०- पूर्वोद्धित,पृ० ५ ताराचन्द- पूर्वोद्धित, पृ० १४७

[3] चतुर्वेदी, पशुराम, पृ० १२७-१३७, कीय, एफ० ई०-पूर्वोद्धित, पृ० ७, ताराचन्द-पूर्वोद्धित, पृ० १४६

[4] कीय, एफ० ई०-पूर्वोद्धित पृ० १६.४८ चतुर्वेदी पशुराम- पुर्वोद्धित,१५६

[5] चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धित पृ० १५६ ताराचन्द- पूर्वोद्धित , पृ० १४८

[6] बडथवाल, पी डी०-पूर्वोद्धित , पृ० १५ कीय, एफ० ई० पूर्वोद्धित पृ० ६८-६२

यदि नाम देना ही पड़े तो राम कहते थे। उन्होंने गुरू की आवश्यकता पर बल दिया किन्तु अवतारवाद के सिद्धान्त को अस्वीकार किया। कबीर ने तत्कालीन समाज में फैले अंधविश्वास, रुढ़ीवाद, बाह्याडम्बरों तीर्थ तथा अन्य धार्मिक रीति रिवाजों की कटू आलोचना किया। उन्होंने जाति-पाति व मूर्तिपूजा का विरोध किया कबीर ईश्वर की एकता पर बल दिये और इसकी प्राप्ति के लिए प्रेम तथा भक्ति के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया[1]। इनकी शिक्षाएं बीजक में संग्रहीत है। कबीर के विचारों और शिक्षाओं के द्वारा नयी चिन्तन धारा का जन्म हुआ जिसका सन्त परम्परा के नाम से प्रचार प्रसार हुआ।[2]

कबीर पंथी –

कबीर के विचारों तथा उपदेशों ने जन-साधारण को अत्याधिक प्रभावित किया। मुगल काल आते-आते सूबा अवध में कबीर के असंख्य अनुयायी हो गये थे जिन्हें कबीर पंथी कहा जाता था[3]। कबीर के प्रमुख शिष्य सूरज गोपाल जिन्होंने उनके कार्यो को आगे बढ़ाया। इन्होंने काशी में कबीर पंथी शाखा की स्थापना किया जो बाद में कबीर चौरा नाम से प्रसिद्ध हुआ। कबीर चौरा की एक उपशाखा गोरखपुर में 'मगहर' नामक स्थान में स्थापित किया गया। दोनों शाखा के गुरू एक ही होते थे।[4] कबीर चौरा के प्रधान गुरू सूरजगोपाल १५५६ ई० में हुए जो मगहर शाखा के भी गुरू थे। इनकी १५६४ ई० में मृत्यु पश्चात्, भी इस शाखा में गुरू-शिष्य परम्परा चलती रही। इस शाखा में गुरू का विवाह तथा शाखा में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित था। गुरू शिष्य को एक ही मंत्र देता था

---

[1] दास, श्याम सुन्दर (सं०), कबीर ग्रन्थावाली, काशी १६६४ ई०, १३०-१४५

[2] चतुर्वेदी, पशुराम- पूर्वोद्धित, पृ० १६

[3] कीय, एफ० ई० पूर्वोद्धित, पृ० ६३

[4] कीय, एफ० ई०- पूर्वोद्धित, पृ० ६३- ६४, ताराचन्द- पूर्वोद्धित, १८१

और शिष्य एक ही गुरू में विश्वास रखता था। मगहर शाखा का प्रबंध कबीर चौरा के कबीर पंथी ही करते थे।[1]

मगहर में स्थित कबीर पंथी शाखा के दो धार्मिक प्रतिष्ठान थे, इसमें से एक का सम्बन्ध हिन्दू कबीर पंथियों के साथ तथा दूसरे का मुस्लिम कबीर पंथियों से था।[2] इन दोनों में इसी अनुसार प्रबंध भी किया गया था। मुस्लिम कबीर पंथियों वाले भाग में एक रौजा बना हुआ था। जिसे कबीर साहब की समाधि कहते थे। इस रौजा पर इनके अनुयायी पुष्पाादि चढ़ाते थे और इसके प्रधान गुरू को 'गनी करन कबीर' कहा जाता था। ये अपना उत्तराधिकारी अपने मृत्यु के पहले ही चुन लेते थे।[3] मगहर के हिन्दू कबीर पंथियों के 'मठ' वाले भाग का निर्माण अधिक विस्तार से किया गया था, इसका अपना एक ऑगन था। जिसमें कबीर की समाधि एक पक्के कुएँ के पास बनायी गयी थी। इस पर हिन्दू पुजारियों का अधिकार था जिनकी नियुक्ति तथा प्रबंध कबीर चौरा काशी की और से होता था[4]। मगहर के कबीर पंथियों ने इस क्षेत्र के निवासियों को काफी प्रभावित किया तथा लम्बे समय तक इनका प्रभाव बना रहा।

---

1 कीय, एफ० ई० पूर्वोद्धित, पृ० ६३

2 चतुर्वेदी, पशुराम-उत्तर भारत की संत परम्परा, इलाहाबाद, १६७२, ३०३,३०४

२. वही, , पूर्वोद्धित पृ० ३०३-३०५

3 इस समाधि का जीर्णोद्वार १८६८ ई० में कराया गया था।

4 ताराचन्द- पूर्वोद्धित-१८१, कीय, एफ० ई०-पूर्वोद्धित, पृ० ६४ चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धित, पृ० ३०४-३०४

सत्तनामी सम्प्रदाय –

अवध क्षेत्र में सत्तनामी सम्प्रदाय की स्थापना बाबा जगजीवन ने किया था[1]। इनका जन्म बाराबंकी जिले के सरदाहा नामक गाँव में १६८२ ई० में हुआ था। इनके पिता गंगाराम चन्देंल राजपूत थे और सरदाहा के बांदोसराय के ताल्लुकेदार थें। बीस वर्ष की अवस्था में जगजीवन दास सरदाहाको छोड़कर कोटवा आकर बस गये जो परगना दरियाबाद के अर्तगत आता था इनकी इनकी मृत्यु कोटवा में १७६१ ई० में हुई। इनके जीवन का अधिकांश समय कोटवा, बाराबंकी, लखनऊ में व्यतीत हुआ[2]। यह अत्याधिक उदारवादी विचारधारा के थे। इनके शिष्यों में प्रत्येक वर्ग तथा जाति के लोग सम्मिलित थे। जगजीवन दास साधारण और आध्यात्मिक जीवन में विश्वास करते थे। इन्होंने अपने शिष्यों को सरल हृदय से प्रगाढ़ ईश्वर भक्ति का उपदेश दिया।

अन्य सम्प्रदायों के विपरीत सत्तनामी सम्प्रदाय में विवाह वर्जित नहीं था, किन्तु इसके महंतों को साँसारिक सुख-सुविधा तथा अन्य सम्बन्धों को त्यागना पड़ता था। जगजीवन दास ने समाज के भीतर पारस्परिक व्यवहार के नैतिक आदर्शो: के अनुसार चलना ही श्रेयस्कर बताया और सत्यवचन, अहिंसा, परोपकर, संयम जीवन को सर्वश्रेष्ठ कहा और अधिकतर इन्हीं बातों को लक्ष्य

---

[1] चतुर्वेदी, पशुराम- पूर्वोद्धित, प्रथम संस्करन, १६५१, पृ० ४८३ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, बाराबंकी, इलाहाबाद, १६०४, पृ० ६७-६६ बथत्वाल, पी० डी०-द निर्गुण स्कूल आफँ हिन्दू पोल्ट्री, बनारस, १६३६, पृ० २६४

[2] चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धित, पृ० ४८३, ताराचन्द- पूर्वोद्धित, पृ०२००, बथत्वाल, पी० डी०- पूर्वोद्धित, पृ० २६४

बनाकर जन-साधारण को उपदेश दिया। इस सम्प्रदाय के अधिकांश अनुयायी अवध, गोरखपुर, बहराइच में थे[1]।

जगजीवन दास ने सत्तनामी सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार करने के अतिरिक्त हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनके कृत्यों में सबसे प्रमुख कृत 'आग बिनास' है जो हिन्दी भाषा में लिखा गया है।[2] इस ग्रन्थ को सत्तनामी सम्प्रदाय की पवित्र पुस्तक का स्थान प्राप्त है। इसके अतरिक्त इन्होंने पुराण की कुछ कहानियों और नैतिक शिक्षा को भी संस्कृत में लेखबद्ध किया था। इसकी अन्य कृतियाँ 'जन्म प्रकाश' 'महाप्रलय' 'प्रथम ग्रंथ' उल्लेखनीय पुस्तकें है[3]।

सूबा अवध के क्षेत्र में सत्तनामी सम्प्रदाय और जगजीवन दास की शिक्षाओं को उनके शिष्यों ने आगे बढ़ाया। इनके प्रमुख शिष्य गोसाईदास, दूलनदास, देवीदास, खेमराज थे। गोसाई दास जगजीवनदास के प्रथम शिष्य हुए। इनका जन्म सरयूपारिण ब्राह्मण परिवार में १६७० ई० बाराबंकी में हुआ था[4]। इनकी शिक्षा साधारण ढ़ग से हुई किन्तु जगजीवनदास के सर्म्पक में आकर यह उच्चकोटी के महात्मा हो गये। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना किया। इनकी प्रमुख रचनाएँ 'शब्दावली', दोहावली और 'ककहरा' है[5]। जगजीवनदास के दूसरे प्रमुख शिष्य दूलनदास थे इनका जन्म १६६० ई० में सेमसी गाँव, लखनऊ में क्षत्रिय परिवार में हुआ था। इनके पिता रामसिंह एक प्रतिष्ठित

---

[1] बेंगम, रेहाना- अवध के सामाजिक जीवन का इतिहास, दिल्ली,१९६४ ई० पृ० ५१, १२६

[2] चतुर्वेदी, पशुराम- पूर्वोद्धित, पृ० ५४३-३४५

[3] वही, उत्तर भारत की संतज परम्परा, पूर्वोद्धित, पृ० ५४३-४५

[4] वह, पूर्वोद्धित, तृतीय संस्करण, प्र० ६१३-१४

[5] चतुर्वेदी, पशुराम—पूर्वोद्धित, तृतीय संस्करण, १९७२, पृ० ६१३-६१४

जमींदार थे। दूलनदास सरदहा में जगजीवनदास से दीक्षा ग्रहण कर काफी समय उनके साथ कोटवा में रहे थे। इनके द्वारा लिखे गये प्रमुख ग्रन्थ 'भ्रम विनाश','शब्दावली', 'दोहावली', 'मंगलगीत' आदि प्रसिद्व है[1]। जगजीवन दास के तीसरे शिष्य देवीदास थे। इनका जन्म १६७८ ई० में लक्ष्मण ग्राम, बाराबंकी में हुआ था[2]। १८ वर्ष की आयु में यह जगजीवनदास के सर्म्पक में आये और उनके शिष्य हो गये तब से उनकी प्रसिद्वि बराबर बढ़ती गई। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें प्रमुख ग्रन्थ 'सुखसनाथ' 'भरतव्यान', 'गुरूचरन', 'विनोद मंगल', 'भ्रमरगीत', 'ज्ञानसेवा', 'नारदज्ञान', भक्ति मंगल' आदि हैं[3]। जगजीवन दास के चौथे प्रमुख शिष्य खेमदास थे। इनका जन्म मधनापुर, बाराबंकी में कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था[4]। प्रारम्भ में इन्होंने किसी ब्रह्मचारी से उपदेश ग्रहण करके[5]। १२ वर्षी तक घोर तपस्या किया। तत्पश्चात जगजीवन दास से दीक्षा ग्रहण कर उनके शिष्य हो गये। इन्होंने अपना समय 'हरिसंकरी' गाँव में रह कर व्यतीत किया। इनकी उपलब्ध रचनाओं में 'काशी खंड', 'तत्वसार', 'दोहावली' तथा 'शब्दाबली' प्रसिद्व है[6]।जगजीवन दास के यह प्रधान चार शिष्य आने वाले समय में 'चारपावा' के नाम से प्रसिद्ध थे[7]। संतों में निर्गुण भक्ति के साथ ही कुछ सगुणों उपसना का प्रभाव पड़ने लगा था फिर भी सन्तनाम के प्रति दृढ़ आस्था थी[8]। इन्होंने गुरू के प्रति प्रगाढ़

---

[1] वही, पूर्वोद्धित, पृ० ६१४-६१५

[2] वही, पूर्वोद्धित पृ० ६१४- ६१५

[3] वही, पूर्वोद्धित पृ० ६१४- ६१५

[4] वही, पूर्वोद्धित पृ० ६१४-६१५

[5] वही, पूर्वोद्धित पृ० ६१४-६१५

[6] चतुर्वेदी पशुराम- पूर्वोद्धित, पृ० ६१४-६१५

[7] वही, पूर्वोद्धित, पृ० ६१४-६१५

[8] वही, पूर्वेद्धित, पृ० ६१४-६१५

भक्ति प्रर्दशित किया। इनके अनुसार ईश्वर की भक्ति निश्चल और निर्विकार रूप से करनी चाहिए। इनके उपदेशो में प्रेम, विनय, चेतावनी प्रमुख रूप से होती है।[1] परवर्ती कालों में इन चारों सन्तों के चार पृथक-पृथक मंढ (गद्धिया) स्थापित हुए तथा इनकी शिष्य परम्पराए भी प्रतिष्ठित हुई[2]।

दादूपंथ –

संत दादू दयाल तथा उनके शिष्य अपने को किसी वर्ग विशेष का सदस्य नही मानते थे, किन्तु दादू दयाल के देहान्त के बाद उनके अभाव में उनकी बानियों के प्रति शिष्यों ने उसे विशेष श्रृद्धा की दृष्टि से देखने लगे और ऐसा करते-करते वे एक विशिष्टपंथ के अनुयायी बन गये जो 'दादूपंथ' के नाम से प्रख्यात हो गया। अवध क्षेत्र में दादूपंथ का प्रचार-प्रसार का कार्य विषेशरूप से सुन्दरदास ने किया। यह दादू दयाल योग्यतम शिष्य में से थे•। दादू दयाल के शिष्यों में सुन्दरदास नाम के दो शिष्य थे यह छोटे सुन्दरदास नाम से प्रसिद्ध हुए। रज्जब जी और जगजीवन जी जैसे गुरू भाईयों की कृपा से सुन्दर दास ने सन्त दादूदयाल की बानियों का अध्ययन किया। वे सुन्दरदास के प्रतिभावान समझ कर विशेष विद्या अध्ययन हेतु काशी ले आये जहाँ पर सुन्दर दास ने १६०६ ई० से १६२५ ई० तक रहकर शास्त्र, दर्शन, साहित्य का विशेष

---

[1] वही, पूर्वोद्धित, पृ० ६१४-६१५

[2] वही, पूर्वोद्धित, पृ० ६१४-६१५

• सुन्दरदास का जन्म जयपुर में 'द्योसा' नामक स्थान में १५६६ ई० में हुआ था। संत दादूदयाल जब द्योसा गये थे तो इनकी उम्र ६ वर्ष थी दादू ने सुन्दरदास को अपना शिष्य बना लिया था। ६३ वर्ष की अवस्था जब सुन्दरदास (१६८६ ई०) रज्जब जी से मिलने सांगनेर गये थे वही, १६८६ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी। पुरोहित, हरिनायण- सुन्दर सार, काशी, १६२८ ई०, पृ० ११, १२, १७

अध्ययन किया[1] यह काशी यह अस्सी घाट पर गंगा तट के निकट रहा करते थे। इनका निवास स्थान भी यहीं आस-पास रहा होगा जहाँ आजकल दादूमंठ बना हुआ है[2]। काशी में विधा अध्ययन के पश्चात यह फतेहपुर में आकर १२ वर्ष तक योगभ्यास करते रहे साथ- साथ दादू दयाल की बानियों का गम्भीर अध्ययन करते थे और कभी-कभी अपनी रचनाओं को जन साधारण के सामने प्रस्तुत करते थै[3]। शीघ्र ही इनकी प्रसिद्धि चारों और फैलने लगी भारी संख्या में इस क्षेत्र की जनता इनके दर्शन हेतु नित्य आने लगी। भ्रमणशील प्रवृति होने के कारण अपने निवास फतेहपुर से निकलकर भ्रमण करने चले जाते थे। भ्रमण काल में इन्होंने अनेक सन्त, महात्माओं, विद्धानों, कवियों से भेंट किया जिसका प्रभाव इनके व्यक्त्वि पर पड़ा[4]। सुन्दरदास ने ईश्वर के अद्धैतवादी रूप को स्वीकार करते हुए निर्गुण ब्रम्हा की उपसना का उपदेश दिया तथा योग साधना द्धारा अन्तः शुद्धि पर बल दिया। इन्होनें मूर्ति पूजा तथा साधना के बाह्यडम्बरों की न्रिदा किया। गुरू के प्रति विशेष भक्ति को महत्त्व प्रदान किया[5]।

---

[1] चतुर्वेदी, पशुराम- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, खण्ड-४, वही, पृ० १६६ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, १६७२, पृ० ५०८ तिवारी, मुक्तेश्वर- पूर्वोद्धित, पृ० १७१

[2] चतुर्वेदी, पशुराम- पूर्वोद्धित, प्र० ५०८

[3] चतुर्वेदी पशुराम,पूर्वोद्धित ,पृ० ५०८, तिवारी ,मुक्तेश्वर-पूर्वोद्धित,पृ० १७१-१७२, पुरोहित, हरीनारायण-पूर्वोद्धित, पृ० ११-१२

[4] पूरब-पच्छिम, उत्तर दक्षिण, देश विदेश फिरे सब जाने।
केतक धौस फतेहपुर मांहि, सुकेतन धौस रहे डिडवाने।
केतक घौस रहे गुजरात, उहॉ हूॅ कछू नाहिं आन्यौ है ठाने।
सोच विचारों के सुन्दर दासु जु चाहितै आनरहे कुस्साने।
पुरोहित, हरिनारायण, पूर्वोद्धत पृ० १७

[5] तिवारी मुक्तेश्वर-' मध्ययुगीन सूफी और सन्त साहित्य, पृ० ३६६

सुन्दरदास ने कुल मिलाकर ४२ ग्रन्थों की रचना किया जो भागों में 'सुंदर ग्रन्थावली' के रूप में सम्पादित होकर प्रकाशित की जा चुकी है। इनकी रचनाओं में ज्ञान समुद्र और सुन्दर विलास प्रमुख है। 'ज्ञान समुद्र' मे सन्त साधना पद्वति का बड़ा ही व्यव्यस्थित ढंग से वर्णन है[1]।'सुंदर विलास' मे कविता और सवैये है। इनकी रचनायें एक शिक्षित कवि की भांति प्रौढ़ है।

सुन्दरदास कि कई शिष्य थे, इनमें प्रमुख शिष्य दयालदास, श्यामदास, दमोदरदास, निर्मलदास तथा नारायणदास थे, जिन्होंने उनकी परम्परा को आगे बढाया। इन पांचो शिष्यों के अपने-अपने थाँवा (मठ) थे, इसमें फतेहपुर का थॉवा सबसे बड़ा था, जिस पर नारायणदास (जिसकी मृत्यु सुन्दरदास के समय में ही हो गई थी) के शिष्य दयाराम गद्दी पर बैठे थे। फतेहपुर का थॉवा अब तक चल रहा है[2]।

सगुण भक्ति शाखा–

सूबा अवध क्षेत्र में निर्गुण भक्ति के साथ-साथ सगुण भक्ति का भी प्रचार-प्रसार हुआ। सगुण भक्ति शाखा के भक्तों ने अपने इष्टदेवों की भक्ति पर विशेष बल दिया। इसके अंतर्गत लोगों में में राम तथा कृष्ण को अपना इष्टदेव स्वीकार कर उनकी भक्ति में लीन हो गए और इस प्रकार सगुण शाखा में राम भक्ति तथा कृष्ण भक्ति शाखा की धारा प्रभावित हुई।

चौरसिया, के०पी०- मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना, इलाहाबाद, १९६५ ई., पृ० २६५

[1] तिवारी, मुक्तेश्वर- पूर्वोद्धृत १७२

चतुर्वेदी, परशुराम- पूर्वोद्धृत, ५११

[2] चतुर्वेदी, परशुराम- पूर्वोद्धृत, ५११

रामभक्ति शाखा –

सूबा अवध में राम भक्ति को चरम सीमा पर पहुंचाने का सफल प्रयास तुलसीदास ने किया। इनका जन्म १५३२ ई० राजापुर ग्राम, बांदा में हुआ[1]। यह ब्राह्मण कुल के थे इनका असली नाम रामभोला था[2]। तुलसीदास के गुरू नरहरिदास थे[3]। जिनका जन्म १५०५ ई० में सूबा इलाहाबाद के सरकार मानिकपुर के परगना दलमऊ में पखरौली ग्राम में हुआ था[4]। नरहरि प्रसिद्व विद्वान और कवि थे, जिन्हें मुगल दरबार में काफी सम्मान प्राप्त था[5]। जिस समय उत्तर-भारत में शैवमत और वैष्णवमत मे काफी मतभेद चल रहा था उस समय नरहरि एक ही ईश्वर 'राम पर विश्वास करते थे और राम भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। तुलसीदास इनसे विशेष रूप से प्रभावित हुए थे। इनसे

---

1 गुप्ता माता प्रसाद -तुलसीदास, प्रयाग १६७२, पृ० १३८-१४० द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य, दिल्ली, १६६४, पृ० १६६ शुक्ल प्रसाद -पूर्वोद्धृत, पृ० ८८

2 गुप्ता, माताप्रसाद-पूर्वोद्धित, पृ० १६१

3 वही, पूर्वोद्धित, पृ० १७२-१७४

रामान्नद
|
सुरसुरान्नद
|
माधवान्नद
|
गरीबदास
|
लक्ष्मीदास
|
गोपालदास
|
नरहरिदास
|
तुलसीदास - रामकृष्णदास
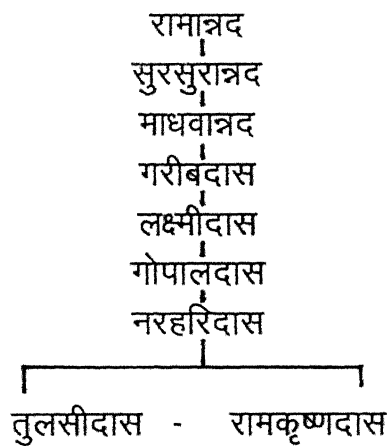
4 वही, पूर्वोद्धृत, पृ- १७४, अग्रवाल, सरयु प्रसाद,- अकबर दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ५४, ५५, ५८

5 अग्रवाल , सरयुप्रसाद - पूर्वोद्धृत, पृ० ५६, २६८, ३००

धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर तुलसी चित्रकूट, अयोध्या व काशी का भ्रमण कर राम कथा का ज्ञान किया। काशी में अपने निवास के दौरान उनकी भेंट अब्दुर्रहीम खानखाना और राजामान सिंह के साथ हुई[1]। इनकी रचनाओं में रामचरित–मानस, गीतावली, कवितावली, पार्वतीमंगल, बैरवेरामायण, विनयपत्रिका इत्यादि प्रमुख है[2]। किन्तु उनकी सर्वोत्तम रचना 'रामचरितमानस' है इस काव्य में तत्कालीन हिन्दू समाज को अत्यधिक प्रभावित किया। इस महाकाव्य के द्वारा तुलसी ने राम महिमा का प्रचार ही नहीं किया बल्कि इनमें निहित आर्दशों ने लोगों में धर्म के प्रति आस्था विकसित किया।

तुलसीदास ने राम को ब्रह्म का अवतार माना और लोगों को बताया कि उसके समीप शुद्व भक्ति और सर्मपण की भावना से पहुंचा जा सकता है[3]। तुलसी ने निराकार ब्रह्म को अधिक लोकप्रिय बनाया। सगुण ब्रह्म राम को वह परम् ब्रह्म के रूप में मानते थे। उन्होंने कहा कि ब्रह्म ही भक्तों के प्रेम वश होकर सगुण रूप धारण करता है[4]। निर्गुण ब्रह्म, सगुणब्रह्म में उसी तरह दिखायी देता है। जैसे जल में हिम या ओला दिखायी देता है[5] निर्गुण और सगुण ब्रह्म में गूढ़ सम्बन्धों को तुलसी ने व्यवसायिक जीवन में काम आने वाली हुडी में लिखे अक्षरों और अंको के अंतर के रूप में समझते हुए कहा है कि

---

[1] गुप्त माताप्रसाद- पूर्वोद्धृत, पृ० १७७-१७८

[2] दीक्षित,त्रिलोकी नारायण- अवधी और उसका साहित्य दिल्ली, पृ० ५६

[3] गोस्वामी तुलसीदास - रामचरित मानस, सम्पादक राम नरेश त्रिपाटी, गोरखपुर, १६७० ई०, अध्याय-३ पृ० १६

[4] सगुनाहि ,अगुनहि नहि कुछ भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध भेदा अगुन अरूप अलख अज जाई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई। रामचरित मानस अध्याय-१ पृ० ११६

[5] जो गुन रहित सगुन सोई कैसे।
जलु हिम उपल बिगल नहि जैसे। वही, पृ० ११६

निर्गुण ब्रह्म 'अंक' के समान गूढ़ार्थ और सगुण ब्रह्म 'अक्षर' के समान सरलार्थ बताने वाला है[1]। दोनो ही रूप है और एक दूसरे के पूरक है सरल होने के कारण तुलसी ने सगुण ब्रह्मा राम की भक्ति पर बल दिया[2]।

जिस समय शैव तथा वैष्णव मतावलंबियों में भेदभाव चल रहा था उस समय तुलसी ने शिव और विष्णु के बीच पारस्परिक श्रद्धाभाव दिखाकर दोनों प्रकार के मतावलंबियों के भेद को कम करने का प्रयास किया। उन्होनें राम के द्वारा शिव की उपासना और शिव द्वारा राम का भजन करने का वर्णन कर दोनों में समन्वय के भाव बढाये। तुलसी ने सीता को शक्ति के रूप मे वर्णित किया[3]। इस तरह शक्ति के उपासको को भी शैव और वैष्णव के साथ मिलाकर आपसी संकुचित भावना को दूर करके समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। तुलसी ने तत्कालीन सन्तों द्वारा सनाज में किये गये योगदान की प्रशंसा किया है। उनका कहना था जिस प्रकार नाव में लोहा लगने से मजबूत हो जाती है। उसी प्रकार सच्वी साधू और संतो की संगति समाज में शांति एवं सुव्यव्यवस्था स्थापित करती है[4]।

तुलसी ने राम नाम व राम भक्ति के द्वारा जन-साधारण को गृहस्थ जीवन में रहते हुए मोक्ष का मार्ग बताया[5]। साथ ही आपसी विद्वेश और दुःखों में पड़े

---

[1] अंक अगुन आखर सगुन समुझिअ उभय प्रकार।
सोयें राखे आपुमल तुलसी चारू विचारं। तुलसीदास -दोहावाली, पृ० २५२ गोरखपुर, १६६८

[2] वही, पूर्वोद्धृत , पृ० -२५१

[3] वही, रामचरित मानस , अध्याय -२, पृ० १२३-१२६

[4] वही, दोहावली पृ०-३५८

[5] घर पर कीन्हे धर जात है, घर छांडे घर जाई।
तुलसी घर बन बीच ही राम- प्रेमपुर छाई।।

हुए मनुष्यों को दया, धैर्य, सहिष्णुता और सत्यता का मूल मंत्र पढ़ाया। उन्होंने रामनाम को कर्म, भक्ति तथा ज्ञान से भी श्रेष्ठ बताया[1]।

उन्होंने राम के रूप को इस प्रकार प्रतिस्थपित किया। जो युग -युग के लिये अजस्त्र का श्रोत बन गया। जिस समय हिन्दू समाज बिश्रखंल, परंपरा विधि, आर्दशहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था। उस समय हिन्दू समाज को एक ऐसे धर्म की आवश्यकता थी जो उनमें वीरता को उभार सके उन्हें योग, सत्य, सहिष्णुता की तरफ प्रेरित कर सके[2]। तुलसी ने मूर्च्छित प्रायः जनता को ज्ञाना मृत की संजीवनी देकर सचेत किया तथा हिन्दू संस्कृति से उनका पुनः परिचय करवाया[•]। मर्यादा पुरूषोत्त्म राम में शक्तिशील और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा

तुलसीदास, दोहावली, गोरखपुर, १९६८, पृ० २५६

[1] नहि कलिकल करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू।।राम चरित मानस, अध्याय १, पृ० २७

[2] दिनकर, रामधारी सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० ३७६

[•] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उपरोक्त तथ्य को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा है जिस युग में तुलसीदास का जन्म हुआ था। उस युग में समाज को आर्दश व्यक्ति की आवश्यकता थी। समाज के उच्चवर्ग के लोग विलासिता, वैभव के पंक में मग्न थे। निम्न स्तर के पुरूष और स्त्री अशिक्षित और कुण्ठाग्रस्त, रोगग्रस्त थे। वैरागी हो जाना मामूली बात थी। जिसके घर की सम्पत्ति नष्ट हो गई या स्त्री की मृत्यु हो गयी, संसार में कोई आकर्षण नहीं रहा, वह चट सन्यासी हो गया।सारा देश अनके सम्प्रदायों के साधुओं, सन्तों एवं योगियों तथा उनमें फैले अन्धविश्वास और बाह्याडम्बर में उलझा था। समाज में धन की मार्यादा बढ़ रही थी। दरिद्रता हीनता का लक्षण समझी जाती

कर जन जागरण के लिये एक भगीरथ कार्य **सम्पन्न** किया। जहाँ तुलसी के पूर्व सन्तों ने मनुष्य को ईश्वर तक पहुॅचाने का प्रयास किया था, वहॉ तुलसी ने अपने रचनाओं तथा उपदेशों के माध्यम से ईश्वर को मनुष्य तक लाने की चेष्ठा की। उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति का एक ऐसा सीधा राम भक्ति का मार्ग बताया जो सभी के लिये ऐसा ही सुलभ था जैसे अन्न और जल प्राप्त होता है[1]। इस प्रकार रामभक्ति को चरम सीमा तक पहुँचाने का कार्य तुलसीदास ने किया। इनका हिन्दू समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा तथा सभी वर्गो के बीच लोकप्रिय हुए।

कृष्ण भक्ति शाखा

सगुण भक्ति की दूसरी शाखा कृष्णभक्ति धारा थी। अनेक भक्तों ने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार मानकर उनकी उपासना किया। कृष्णभक्ति धारा के प्रमुख सन्त बल्लभाचार्य थे जिन्होनें कृष्ण को परमब्रह्मा कहा और इसकी प्राप्ति का साधन 'कृष्ण भक्ति' को बताया। १६वीं शताब्दी में कृष्णभक्ति के प्रमुख प्रचारक सूरदास थे। जिन्होंने श्रीमद्भागवत गीता पर आधारित कृष्णलीला को अपने

थी। पण्डितों और ज्ञानियों का समाज के साथ कोई सम्पर्क नही था। सारा देश विश्रखंल परम्परा- विच्छिन्न, आदर्शहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था। ऐसे समय तुलसी ने दिशा विहीन समाज को एक दिशा प्रदान किया। इसके लिये उन्होंने रामचरित को चुना। वस्तुतः इससे सुन्दर चुनाव नहीं हो सकता था। हिन्दी साहित्य की भूमिका , पृ० ६४-८६

[1] शुक्ल , रामचन्द्र-पूर्वोद्धृत, पृ० १३४-१३५

रचना का आधार बनाया और कृष्ण के सगुणरूप को जनता के सम्मुख रखा। इनके प्रमुख ग्रन्थ सूरसागर, सूरसारावली, तथा साहित्य लहरी है[1]।

सूबा अवध क्षेत्र में अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्णभक्ति का प्रचार व प्रसार किया। भक्त कवि लालचदास अपनी रचना 'हरिचरित' में कृष्ण के मर्यादा भाव और लीला भाव दोनों का वर्णन कर कृष्ण को आदिब्रह्म के रूप में माना और कृष्ण के सगुणोपासना पर बल दिया[2]। इसी श्रेणी के भक्त कवि लक्षदास, जो हसवां फतेहपुर के निवासी थे। इन्होंने कृष्ण भक्ति का काफी प्रचार किया। ये ईश्वर के नाम की महिमा बताते हुए कृष्ण भक्ति को सर्वोत्तम माना[3]। किसी व्यर्थ के वाद-विवाद में समय नष्ट करने की अपेक्षा कृष्ण नाम का स्मरण करना श्रेयकर बताया। यह तत्कालीन समाज में फैले हुए साम्प्रदायिक विद्वेष को शान्त करने और शैव तथा वैष्णवों में सामन्जस्य स्थापित करने की चेष्टा किया[4]। इनके अलावा अनेक कृष्ण भक्त हुए जिन्होंने कृष्ण भक्ति प्रचार किया। सूबा अवध क्षेत्र में राम और कृष्ण भक्तों के आतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के अनुयायी थे जिनकी अपनी अलग विचारधारा और दर्शन था।

इस क्षेत्र के लोग शक्ति के रूप में देवी की उपासना करते थे। शाक्त सम्प्रदाय का भी एक वर्ग था। इस सम्प्रदाय का अपनी विचारधारा और दर्शन था। शक्ति के उपासक बड़े पैमाने में विन्ध्याचल मंदिर जाया करते थे। जहां

---

[1] गुप्ता, दीनदयाल - अष्ट छाप बल्लभ सम्प्रदाय, भाग -१, प्रयाग, १९५३, पृ० २७६

[2] शर्मा, मुरारीलाल- अवधी कृष्ण काव्य और उसके कवि, आगरा, १९६७, पृ० ४०-४१

[3] शर्मा मुरारीलाल - पूर्वोद्धृत, पृ० ७४, ६२, ६३

[4] वही, - पूर्वोद्धृत , पृ० ७४, ६२,६३-६६

पशुबलि भी होती थी। शाक्त, काली, चामुण्डा, चण्डी आदि देवी की उपासना करते थे[1]।

नाथ सम्प्रदाय –

सूबा अवध में नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव गोरखपुर और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में अधिक था। इस सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार व प्रसार गारेखनाथ ने किया था[2]। नाथ सम्प्रदाय योग मार्गी था जिसमें संसार के बंधनो से मुक्त होकर योगमार्ग द्वारा परम् तत्व अलख निरंजन (शिवत्व) की प्राप्ति का विधान था[3]। इस सम्प्रदाय में परम तत्व की प्राप्ति के लिये गुरू को महत्त्व प्रदान किया गया। गुरू शिष्य की कठिन नैतिक आरचरणों के द्वारा परीक्षा करने के पश्चात् ही उसे दीक्षित करता था[4]। जीवन में अधिक से अधिक संयम सद्आचरण, अनुशासन में रहकर आध्यमिक अनुभूतियों के लिए योग मार्ग में व्यवस्था थी।

नाथ सम्प्रदाय नें आडंबरो, कर्मकांडो, विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट किया। वेद शास्त्र का अध्ययन व्यर्थ बताया, तीर्थाटन आदि को निष्फल कहा और धर्म को विकृत करने वाले समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर कठोर आघात किया[5]। नाथ पंथ की ओर निम्नवर्ग की अशिक्षित जनता (धोंबी, नाई, डोम,

---

[1] चौरसिया के०पी० मध्यकालीन हिन्दी संत विचार और साधना, पृ० १३६-१३८, वर्मा हरिश्चन्द्र-मध्यकालीन भारत, भाग-१ पृ०, ७१-७३

[2] बेगम रेहना -पूर्वोद्धृत पृ० १२६-२७, चौरसिया, के० पी० - पूर्वोद्धृत पृ० ४२-४७

[3] चौरसिया, के०पी० - पूर्वोद्धृत, पृ० ४२- ४७

[4] वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० ४२-४७

[5] शुक्ल रामचन्द्र-पूर्वोद्धृत, १६-१८

कहार, दर्जी आदि) अधिक आर्कर्षित हुई[1]। नाथ पंथ की योग साधना धार्मिक वातावरण को शुद्ध और उदार बनाने में सहायक सिद्व हुआ[2]।

सूबा अवध में नाथ सम्प्रदाय को स्थानीय लोगों तथा शासक का संरक्षण प्राप्त था। सम्राट अकबर के शासनकाल में गोरखपुर अभियान के दौरान उसके सेनापति राजा टोडरमल ने गोरखनाथ के मठ का जीर्णोद्वार करवाया था[3]। इस सम्प्रदाय में गोरखनाथ, श्रीनाथ जी, मंहथ ब्रह्मनाथ तथा योगीराज गंभीर नाथ कई मंहथ हुए। इनमें गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय का सबल और व्यापक प्रचार -प्रसार किया। इनकी हिंदी और संस्कृत में अनेक कृतियों की रचना किया। जिनमें गोरखबानी, सबदी मोरक्ष सिद्वान्त सग्रह, साख्य दर्शन योग , कष्ठकबोध आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है[4]।

सिख्खधर्म व उदासी सम्प्रदाय –

सूबा अवध में सिख्ख धर्म के अनुयायी भी निवास करते थे। सिख्खों ने विभिन्न स्थानों पर गुरूद्वारे, धर्मशालयें और डेरों का निर्माण करवाया गया। इन गुरूद्वारों के माध्यम से जनसाधरण में गुरू मत का प्रचार किया जाता था। सिख्खों के उदासी सम्प्रदाय ने सिख्ख धर्म का व्यापक प्रचार व प्रसार किया। इस सम्प्रदाय को नानक शाही सम्प्रदाय के अंतर्गत मानते थे[5]।

---

[1] शुक्ल रामचन्द्र- पूर्वोद्धृत, १६-१७

[2] द्विवेदी हजारीप्रसाद- नाथ सम्प्रदाय , इलाहाबाद, १६५०, पृ० १८७

[3] पाण्डेंय, राजबली- गोरखपुर जनपद और उनकी क्षेत्रिय जातियों का विकास, गोरखपुर, १६४६ , पृ० २३७

[4] पाण्डेय, दिवाकर-गोरखपुर और उसकी परम्परा का साहित्य, गोरखपुर, १६८०, पृ० ६८-६७

[5] चतुर्वेदी, पशुराम, पूर्वोद्धृत, पृ० ४२४

पंजाबी में उदासी शब्द की उत्पत्ति संस्कृतके उदासीन शब्द से हुई। जिसका अर्थ है संसार से विरक्त होना है[1]। इस सम्प्रदाय के अनुयायी भौतिक अथवा राजनैतिक बातो से कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे। सांसारिक मोह-माया से कोई लगाव न होने के कारण यह उदासी कहलाये[2]। इनका रहन-सहन सदा साधुओं की भांति था। विवाह करना आवश्यक नहीं समझते थे[3]। यह अपने पूजा पाठ घड़ी-घंटा बजाया करते थे। तथा 'आदि ग्रन्थ' की आरती किया करते थे। इस क्षेत्र में उदासी सन्त बाबा लक्ष्मणदास ने सिख्ख धर्म का व्यापक प्रचार किया। इनका जन्म १६६३ ई० में हुआ था। इन्होंने लखनऊ में अपना शिक्षालय और एक धर्म शाला बनवाया था। इसके अतिरिक्त आदि ग्रन्थ प्रस्थापित किया और गुरूबानी का प्रचार किया। यह सुप्रसिद्ध कवि थे। 'ग्रन्थ साहब' और अन्य धार्मिक ग्रन्थों में इनके प्रवचन बहुत प्रसिद्ध थे[4]।

उपरोक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त अवध क्षेत्र में बौद्व जैन और बौद्व सम्प्रदायों के भी मठ विभिन्न स्थानों पर स्थापित थे। परन्तु इनका प्रभाव या विस्तार अत्यधिक सीमित था[5]। अयोध्या जैनियों के लिये महत्त्वपूर्ण स्थान था यह पांच जैन तीर्थकरों की जन्म भूमि मानी जाती थी। उन्ही के नाम से पांच मंदिर अयोध्या में विद्यमान है[6]। आदिनाथ का मंदिर, अन्नतनाथ का मंदिर, अभिन्नदन का मंदिर, सुमन्तनाथ का मंदिर, अजितनाथ का मंदिर इस पवित्र

---

1 कनिंधम, जोसेफ डेवी- हिस्ट्रीआफ द सिख्ख, दिल्ली, १६५५, पृ० ४०-४३

2 चतुर्वेदी, पशुराम- पूर्वोद्धृत, पृ० ४२४-४२५

3 वही, - पूर्वोद्धृत, पृ० ४२४-४२५

4 बेगम, रेहना - अवध के सामाजिक जीवन का इतिहास, दिल्ली, १६६४ पृ० १२८

5 सीताराम, अवध वासी लाला, अयोध्या का इतिहास, इलाहाबाद १६३२, पृ०११३-११४

6 वही, पूर्वोद्धृत, पृ० ११३-११४

स्थल पर तीर्थाकरों के पद चिन्ह बने है। जिसके दर्शन हेतु दूर-दूर से जैनी आया करते थे[1]।

सूबा अवध क्षेत्र का बौद्व धर्म से भी अटूट सम्बंध रहा अयोध्या में महात्मा बुद्ध ने बहुत दिनों तक निवास किया और यहाँ निवास काल में अंजन बाग में उपदेश दिया[2]। बौद्ध मताम्वलियों के लिये यह पवित्र स्थान था। इसके अलावा बौद्व धर्म के महत्त्वपूर्ण केन्द्र गोरखपुर, गोडा आदि क्षेत्र थे[3]।

सूबा अवध में सूफी आन्दोलन का प्रभाव तथा प्रमुख सूफी संत –

भारत में मुगल शासन की स्थापना होने के कई शताब्दी पूर्व ही सूफियों का प्रवेश हो चुका था। यह भारत के विभिन्न भागों मे बस गये तथा सूफी मत का प्रचार-प्रसार किया। कालान्तर में अधिकांश सूफी अवध में आकर बस गये थे धीरे-धीरे इनके अनुयायियों की संख्या में वृद्वि होती गई।

सूफी मत का विकास मुस्लिम समाज की नैतिकता और आध्यमिक सिद्वान्तों की रक्षा तथा इस्लाम धर्म और समाज को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिये हुआ था[4]। सूफी लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनाने के पक्ष में नहीं थे। यह लोग कुरान के उस पक्ष से प्रभावित थे। जो ईश्वर समाधि, ईश्वर चिन्तन और ईश्वर के पास जाने पर जोर देते थे। यह लोग घर्म

---

[1] वही, पूर्वोद्धृत, पृ० ११३-११४

[2] वही, पूर्वोद्धृत पृ० ११८-१२१

[3] वही, पूर्वोद्धृत, पृ० १३-१७

[4] निजामी, के०ए० -सम आस्पेक्ट्स आफ रेलिजन एण्ड पांलिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीन्थ सेन्चुरी, अलीगढ़ १६६१, पृ०५०- ५७

की औपचारिकता से निकलकर सूफी हो गये[1]। सूफियों के दो लक्ष्य थे एक तो अपनी आध्यामिक उन्नति और दूसरा इस्लाम एवं मानवता की सेवा करना[2]।

सूफी मत का प्रचार विभिन्न सम्प्रदायों के माध्यम से हुआ कई रहस्यवादी सगठनों अथवा सिलसिला का संगठन किया गया। इनमें चिश्ती, सुहरावर्दी, कादरी, नक्शवादी, महदवी सम्प्रदाय आदि भारत मे महत्त्वपूर्ण रहे[3]। मुगल काल आने तक प्रत्येक सूफी सम्प्रदाय की पृथक पहचान थी, लेकिन मुरीद लोग एकाधिक सिलसिलों के शेखों के पास मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये भी जाते थे। इसका एक तो यह था कि विभिन्न सिलसिलों में वैचारिक समानता थी और प्रत्येक सिलसिले में वैचारिक जटिलता थी। जैसा कि चिश्ती सम्प्रदाय समा में विश्वास करते थे, जिसके अनुसार गीत और संगीत आत्मोत्थान मे माध्यम के रूप में उपयोगी थे[4] तथा उनकी यह मान्यता थी कि शरीयत में इसकी व्यवस्था है। किन्तु कई उलेमा तथा धार्मिक विद्वानों का ऐसा ही मान्ना था कि शरीयत में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है[5]। सुहरावर्दीयों को छोड़कर अन्य सूफी सम्प्रदाय धन संचय तथा दुनियादारी मे उलझना उचित नहीं मानते

---

[1] दिनकर, रामाधारी सिंह -संस्कृति के चार अध्याय, पटना १९५७ ई०, पृ० २४८, ताराचन्द, पूर्वोद्धृत, इलाहाबाद १९५४ ई०

[2] हुसैन,युसुफ - ग्लिपसेंस आफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, बम्बई १९६२, पृ० ३३-४५ श्रीवास्तव, ए० एल० - मध्यकालीन संस्कृति, आगरा, १९६३, पृ० ६८ चतुर्वेदी, पशुराम - पूर्वोद्धृत, पृ० ७२

[3] चतुर्वेदी पशुराम - सूफीकाव्य संग्रह प्रयाग, सम्वत् २०१३, पृ० ३४-४६

[4] हुसैन युसुफ- पूर्वोद्धृत, ४६ ताराचन्द -पूर्वोद्धृत, पृ० ८३, चतुर्वेदी पशुराम उत्तर भारत की संत परम्परा, ७०-७१ तिवारी रामपूजन- सूफीमत साधना और साहित्य वाराणसी १९५६, पृ० ४४६

[5] तिवारी, रामपूजन- पूर्वोद्धृत, पृ० ४४९-४८१

चतुर्वेदी पशुराम - उत्तर भारत की संत परम्परा, पृ० ७१-७२

थे, किन्तु सुहरवार्दी सम्प्रदाय का ऐसा विश्वास था कि यदि मन ईश्वर में लीन है तो धन के संचय और वितरण करने में कोई आपत्ति नही है[1]। जबकि चिश्ती ऐसा मानते थे कि अपनी सभी आवश्यकताओं के लिये ईश्वर पर ही निर्भर होना, सच्ची भक्ति है[2]। चारो सूफी सम्प्रदाय शरीयत के अनुसार चलना उचित मानते थे। किन्तु कादरी सम्प्रदाय और नक्शबंदी नियम पालन में बड़े शख्त थे[3], जबकि चिश्ती की प्रकृति इस संबध में उदारवादी थी।

मुगलकाल में तीन सूफी धाराओं की पहचान की जा सकती है। एक और तो वे सूफी थे जो वदहत-उल-वुजूद का प्रतिपादन करते थे। कुछ सूफियों ने दावा किया कि उन्हें मुस्लिम शरिया के द्वारा नही वरन् स्वयं ही खुदा का ज्ञान हुआ था। उस सत्ता के सिवा किसी सत्ता का अस्तित्व नहीं है[4]। वह एक मात्र सत्ता पर परमात्मा की है। वह नानातत्त्व के पीछे एक तत्त्व है[5]। दूसरी ओर वे सूफी थे जो वुजुदी विचारो का खंडन करते थे और 'वदहद-उल-शुहूद' के सिद्वान्त का प्रतिपादन किया। जिनके अनुसार सूफी रहत्यवाद की उच्च्य स्तरीय अनुभूति से यह प्रकट होता है कि ईश्वर और सृष्टि के बीच अन्तर होता है न कि इसमें समायोजन होता है। यह विचार शरिया के विचार की पुष्टि करता है। यह सूफी शरिया का सख्ती से पालन करते थे[6]। तथा हिन्दुओं और

---

[1] निजामी, के ए० - पूर्वोद्धृत, २२३

[2] निजामी, के० ए० - पूर्वोद्धित, १८६- १६६

[3] चतुर्वेदी पशुराम - पूर्वोद्धृत, पृ० ६६-७२, वही, सूफीकाव्य संग्रह, पृ० २०-२१ निजामी, के०ए० - स्टडीज इन मंडिवल हिस्ट्री एण्ड कल्चर अलीगढ़ , १६५६, पृ० ३६६-५६७, तिवारी रामपूजन- पूर्वोद्धृत, पृ० ४६४

[4] वही, पूर्वोद्धृत, पृ० २५१, चतुर्वेदी,पशुराम - पूर्वोद्धृत, पृ० २०-२१

[5] श्रीवास्तव, ए०एल०मेडिवल इंडियन कल्चर, आगरा, १६६४, पृ० ७६ निजामी, के०ए० - पूर्वोद्धृत, पृ० ५६३

[6] तिवारी राम पूजन- पूर्वोद्धृत, पृ० ४६४

गैर सूफी मुसलमानों के प्रति अपेक्षाकृत असहिष्णुता का दृष्टिकोण अपनाया और सूफी सम्प्रदाय को प्रतिष्ठा का स्थान दिया[1]। इन दोनों प्रकार के सूफियों के बीच तीसरे प्रकार के वे सूफी थे। जो शरिया और सर्वात्यावादी सिद्वान्त वहदत-उल वुजूद में कोई अंतर नही देखते थे[2]। और कभी-कभी हिन्दू विचारधारा को ग्रहण कर लिया करते थे। मुगलकाल मे अधिकांश सूफी न्यूनाधिक इसी मध्यमार्ग का अनुसरण करते थे तथा दोनों अतिवादी परम्पराओं से दूर रहे थें[3]। इन सूफियों की एक महत्त्वपूर्ण बात यह रही है कि उनमे आपस में कोई ईर्ष्या तथा मुकाबले की भावना नही थी। पारस्परिक आदर और समझौता उनका मुख्य आधार था[4]। किसी जाति भेद में न पड़कर कोई मुंसलमान किसी भी सिलसिले में दीक्षित हो सकता था। इस कारण भी आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन में सूफियों का प्रभाव समान रूप मे रहा।

ख़ानक़ाह –

सूबा अवध में सूफी सन्तो ने जन-सामान्य के बीच न केवल इस्लाम व उनके सिद्वान्तों एवं मुस्लिम संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया वरन् इनकी खानकाह आध्यात्मिक शिक्षा का महान् केन्द्र होती थी। ऐसी ख़ानक़ाह सूबा के विभिन्न स्थानों में थीं। इनमें मुख्यतः काकोरी, शण्डिला, जायस, अमेठी, खैराबाद, लखनऊ, गोपामऊ, बिलग्राम आदि थे[5]। चिश्ती सम्प्रदाय के सूफियों की खानकाह 'जमा-उल-ख़ानक़ाह' के नाम से प्रसिद्व थी। इन ख़ानक़ाह मे एक

---

[1] वही, , पूर्वोद्वित, पृ० ४६८

[2] वर्मा हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत, भाग -२ पृ० १५६,१५७

[3] वर्मा हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत, भाग -२ पृ० १५७

[4] वही, , पूर्वोद्धृत ,पृ० १५७

[5] अबुल फजल- आईन -ए- अकबरी अनुवाद जैरेट एवं सरकार, कलकत्ता, १६४८ ई, भाग -३ पृ० ५३१

विशाल कमरा होता था जहां सूफी रहते थे, और आध्यात्मिक शिक्षा देते थे। इसी प्रकार के अन्य सम्प्रदायों की ख़ानक़ाह थी। साधारणतया ख़ानक़ाह शब्द चिश्तिया सम्प्रदाय के लिये प्रयुक्त होता था, परन्तु कालान्तर मे जहां सूफी लोग रहकर आध्यात्मिक साधना, चिन्तन-मनन करते। व सूफी शिक्षा प्रदान करते थे, वह स्थान ख़ानक़ाह कहलाने लगा था[1]।

इन ख़ानक़ाहों में आध्यात्मिक शिक्षा देने के अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष उर्स तथा क़व्वाली का भी आयोजन होता था। जो महफिल-ए-सभा कहलाता था। चिश्ती सम्प्रदाय के सूफी क़व्वाली को आध्यात्मिक कार्य का एक अंग मानते थे। अतः उन्होंने इसे अधिक प्रोत्साहन दिया। परिणाम स्वरूप जन साधारण में भी धीरे-धीरे क़व्वाली का प्रचलन बढ़ गया था। सूफियों के यहाँ तथा मजारों पर प्रत्येक वर्ष उर्स के असवर पर क़व्वाली की महफिल का अयोजन होता था। लेकिन ख़ानक़ाह में 'महफिल-ए-सभा' का आयोजन इबादत (ईश्वर की आराधना) के रूप में होता था और लोग इसे बडी श्रद्धा भाव से सुनते थें। सूफियों और ख़ानक़ाहों ने अपनी शिक्षा और 'महिफल-ए-सभा' के द्वारा लोगो में अपने प्रेम और भाई-चारे की भावना का विकास तथा समाज को एकता के सूत्र में बांधे रखा।

सूबा अवध के प्रमुख सूफी जिन्होंने सूफी मत का प्रचार-प्रसार कर जन साधारण की आध्यात्मिक तथा समाजिक जीवन को उन्नतिशील बनाने में योगदान किया उनका विवरण निम्न है।

---

[1] निजामी, के० ए० - स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, अलीगढ़ १९५६, पृ० ८१-८२

लखनऊ के शाह मीना शाह –

शाह मीना शाह अपने दादा शाह कयामुद्दीन अब्बास के साथ अवध आये और मच्छी भवन के समीप लखनऊ में रहने लगे। शाह कयामुद्दीन के इस क्षेत्र में काफी शिष्य थे[1]। उन्ही मे एक शिष्य सूफी मख़दूम शेख सारंग थे इनका निवास स्थान मजगांवा, फतेहपुर में था। शाह मीना इन्हीं के शिष्य थे। शाह मीना के गतिविधियों का केन्द्र लखनऊ था। यहाँ पर इनके भारी संख्या में अनुयायी थें। इनकी मज़ार वर्तमान में लखनऊ में है[2]।

रूदौली के अब्दुल कद्दूस गंगोही –

यह रूदौली, बाराबंकी जिले के निवासी थे। बाद में सहारनपुर के गंगोह नामक स्थान पर आकर रहने लगे । अब्दुल कद्दूस चिश्ती सम्प्रदाय की एक शाखा चिश्ती साबीरी परंपरा के सूफी थे[3]। इनसे सिकन्दर लोदी, बाबर, हुमायूं ने उपदेश ग्रहण किया था[4]। इनकी अधिकाश रचनायें फारसी मे है। हिन्दी रचनाओं का संग्रह 'मुर्शीदानामा' नाम से संग्रहीत हैं। इनके दोहो से ही इनके चिंतन और अनुभव का मूल्यांकन किया जा सकता है। ईश्वरीय प्रेम की महत्ता का निरूपण करते हुए ये कहते है।

आप गवाये पिउ मिले, पी खोवे सब जाय।
अथक कथा ये प्रेम की, जो कोई बूझे पाय[5]।।

---

[1] बेगम, रेहाना- अवध के समाजिक जीवन का इतिहास, पृ० ११६

[2] वही, पूर्वोद्धृत-पृ० ११६

[3] चतुर्वेदी, पशुराम - सूफी काव्य संग्रह , प्रयाग , १९४३ पृ० २२६

[4] वही, पूर्वोद्धृत , पृ० २२६

[5] चतुर्वेदी,पशुराम-पूर्वोद्धृत, पृ० २२६

यह ईश्वर की एक मात्र सत्ता पर विश्वास करते थे[1]। ईश्वरीय प्रेम के लिये विरह को आवश्यक अंग मानते थे। जगत इनके विचार से पानी का बुलबुला है। जिस तरह बुलबुला जल में उठता है उसी में विलीन हो जाता है। ठीक उसी तरह संसार उस परम् तत्व से पैदा हुआ है और अंत में उसी मे उसका विलय हो जायेगा[2]। यह परम् तत्व को सागर मानते थे। और जीवात्मा को मछलियों के समान जो जीवित अथवा मृत दोनों अवस्थाओं मे समुद्र में रहेगी[3]।

जायस के मलिक मोहम्मद जायसी –

अपने समय के प्रसिद्व सूफी विद्वानों में मलिक मोहम्मद जायसी का नाम गिना जाता था। जायसी चिश्ती सम्प्रदाय के शेख अशरफ जहांगीर के शिष्य थे[4]। इनका सम्बन्ध महदवी शाखा बुरहान से भी था[5]। जायसी का अमेठी राजघराने में बहुत मान था। जीवन में अंतिम दिनों में यह अमेठी से दो मील दूर एक जंगल में रहा करते थे। जायसी द्वारा लिखे गये प्रसिद्व काव्य

---

[1] एक अकेला साइंया, दुईदुई कहो न कोई।
बास फुल है एक ही, कह क्यो दूजा कोई।।, वही, पृ० २२६

[2] जल ते ओफन बुलबुला जल ही मोही बिलाई।
तैसा यह ससार सम, भूलह जाई समाई।। वही, पृ० २२६-२२७

[3] साई समुन्दर पर तंह, हम तंह मछलिया,
जल हरफिन जल रही, भराहि तो जल मां। वही, पृ० २२७

[4] चतुर्वेदी, पशुराम-सूफी काव्य संग्रह, प्रयाग सं०२०१३, पृ० १२७

[5] रिज़वी ,एस, ए०ए०- मुस्लिम रिवाइवलिस्ट मूवमेन्ट इन नार्दन इण्डिया इन सिक्स्टी'थ एण्ड सेवेन्टीन्थ सेन्चुरीज, इलाहाबाद १९६५, पृ० १३१-१३२ चतुर्वेदी परशुराम-सूफी काव्य संग्रह १९५६, पृ० १२७

'अखरावट', 'आखिरी कलाम' और 'पद्मावत' हैं[1]। अखरावर में ईश्वर सृष्टि जीव ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये है। जबकि आखिरी कलाम में कयामत का वर्णन है[2]। जायसी की अक्षम कीर्ति का आधार 'पद्मावत' है। जिसके अध्ययन से ज्ञात होता है। कि जायसी का हृदय कोमल और प्रेम की तृष्णा से युक्त था[3]। उनके विचार में गूढ़ता, गम्भीरता और सरसता के विलक्षण विद्यमान थे। ये सूफी फकीर अवध क्षेत्र की जनता के हृदय में बसे थे[4]। इन्होनें हिन्दू मुस्लिम एकता में भी अपना योगदान दिया। जायसी ने उदारता पूर्वक इस्लामी भावनाओ का साथ साथ हिन्दू भावनाओं का सामंजस्य का प्रयत्न किया जो उनकी उदार मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायिका थी।

शेख महिबुल्लाह –

यह प्रसिद्ध विद्वान और सूफी थे। इनका जन्म सरकार खैराबाद के परगना सदरपुर में २३ दिसम्बर १५८७ ई० में हुआ था[5]। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा परम्परागत रूप से हुई आगे चलकर इन्होंने तफ़सीर (धर्म ग्रन्थों की टीका) और सूफी धर्म दर्शन के अन्य ग्रन्थों का अध्ययन किया। उच्च ज्ञान अर्जित करने की आंकाक्षा से यह लाहौर गये जहॉ पर मुल्ला अब्दुल सलाम लाहौरी के शिष्य बन गये और उनसे ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद पुनः सदरपुर लौटकर शिक्षा देने का कार्य करने लगे और अपना ध्यान, और चिंतन प्रथम गुरु द्वारा बताये गये महत्त्वपूर्ण तथ्यों में लगाया[6]। जब उन्हें ईश्वरीय प्रेम और अन्तिम सत्य की

---

[1] चतुर्वेदी, पशुराम-पूर्वोद्धृत, पृ० १२५- १२७

[2] वही, पूर्वोद्धृत, पृ० १२५-१२७

[3] वही, पूर्वोद्धृत, पृ० १२५-१२६

[4] रिज़वी एस० ए ए- पूर्वोद्धृत पृ० २७३

[5] रिज़वी एस० ए ए- पूर्वोद्धृत पृ० ३३३-३३४

[6] रिज़वी एस० ए ए- पूर्वोद्धृत पृ० ३३४

अनुभूति हुई तब ये घर छोड़कर एक आदर्श गुरू व निर्देशक की तालश में निकल पड़े। दिल्ली पहुँचकर कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के मजार के दर्शन हेतु गये। जहाँ बख्तियार काकी ने स्वप्न में उन्हें अबुसईद गंगोही के पास जाने का आदेश दिया तत्पश्चात् ये अबुसईद गंगोही के शिष्य बन गये और उनसे सूफी रहस्यवाद का ज्ञान प्राप्त किया, बाद में अबुसईद ने उन्हें धर्म कार्य करने का आदेश दिया और यह अपने निवास स्थान लौट आये तथा धर्म कार्य में लग गये[1]। कुछ समय पश्चात् ये रूदौली आ गये। जहाँ इनकी मुलाकात अब्दुल रहमान चिश्ती सेहुई। इनके साथ कुछ समय रहने के बाद इन्होंने विभिन्न चिश्ती केन्द्रों का भ्रमण किया अन्त में १६२८ ई० में इलाहाबाद आ गये और यही स्थापित हुए जो बाद में उनके धर्मिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया[2]।

शेख महिबुल्लाह के इलाहाबाद के प्रवास के दौरान इनकी प्रसिद्धि और व्यकित्व से मुगल सम्राट शाहजहॉ आकर्षित हुआ बाद में उसने शेख की दरबार में उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया परन्तु शेख ने राजनैतिक गतिविधयों में हस्तक्षेप न करने के अपने सिद्धान्त के कारण दरबार में नहीं गये[3]।

दाराशिकोह भी शेख के गहरे आदर्श, गूढता, ज्ञान तथा रहस्यात्मक अनुभूति के सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित था और उनका सममान करता था। उनसे रहस्यात्मक व आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान में सहायता लेता था। शेख महिबुल्लाह के बहुत से शिष्य व अनुयायी थे[4]। इनमें प्रमुख शिष्य, काजी धासी, क़ाजी युसुफ, मुल्ला मुहसिन फ़ानी, काज़ी अब्दुल रशीद, शेख अहमद

---

[1] रिज़वी एस० ए०ए०- पूर्वोद्धृत पृ० ३३४

[2] रिज़वी एस० ए०ए०- पूर्वोद्धृत पृ० ३३४-३५

[3] रिज़वी एस० ए०ए०- पूर्वोद्धृत पृ० ३३४-३५

[4] रिज़वी एस० ए०ए०- पूर्वोद्धृत पृ० ३३६-३३७

आदि थे। शेख अपने समय के प्रभावशाली विचारक व बुद्धिजीवि थे, इनके अनेक विद्वान शिष्य हुए। इनकी मृत्यु १६४८ ई० में हुई[1]।

लखनऊ के शाह पीर मोहम्मद –

यह मडियाहूँ, जौनपुर के रहने वाली थे। जौनपुर, दिल्ली, अजमेर, मक्का, मदिना, कन्नौज में शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त ये लखनऊ आ गये[2]। जहाँ शाह मीना के मजार के निकट रहकर आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त किया, बाद में शाह अब्दुल सैय्यद चिश्ती के शिष्य बन गये और अपना सारा जीवन अध्ययन-अध्यापन के कार्य में समर्पित कर दिया[3]। इस क्षेत्र की जनता इनसे काफी प्रभावित थी। इनके बहुत से अनुयायी थे। पीर मोहम्मद गोमती तट के समीप लक्ष्मण टीले के समीप रहते थे और मृत्यु उपरान्त यही उनका मज़ार बनाया गया जो बाद में शाह पीर मोहम्मद का टीला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ समय पश्चात् शाहजहाँ के शासन काल में यहाँ सुन्दर मस्जि़द का निर्माण करवायागया जो शाही मस्जि़द कहलाती थी[4]। और आज तक टीले वाली मस्जि़द के नाम से विख्यात है। टीले के ऊपर शाह साहब का मजार है। जहाँ लोग श्रद्धा भाव के जाकर मुरादें माँगते हैं[5]।

---

[1] शुबहान, जान०ए० सूफिज्म इट्स सेट्स एण्ड आइस इन इंडिया, लखनऊ, १६६० पृ० ३५६

[2] शुबहान, जान०ए० सूफिज्म इट्स सेट्स एण्ड आइस इन इंडिया, लखनऊ, १६६० पृ० ३५६-३५७

[3] शुबहान, जान०ए० सूफिज्म इट्स सेट्स एण्ड आइस इन इंडिया, लखनऊ, १६६० पृ० ३५६-३५७

[4] बेगम, रेहना- पूर्वोद्धृत, पृ० ११७

[5] बेगम, रेहना- पूर्वोद्धृत, पृ० ११७

अमेठी के शेख निजामुद्दीन –

इनके गतिविधियों का केन्द्र अमेठी था। यह शेख मारूक चिश्ती के शिष्य थे। बाद में आध्यात्मिक क्षेत्र में शेखनूर-कुतुब-ए-आलम के समान ज्ञानी हो गए थे। ये कुछ दिनों तक खैराबाद तथा फतेहपुर में रहे। १५७१-७२ई० में अमेठी में इनकी मृत्यु हो गयी[1]।

काकोरी के शेख भिखन –

शेख अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान और सूफी थे। शेख का इस क्षेत्र में काफी प्रभाव था। इनके अनुयायियों की काफी संख्या थी। शेख सूफी रहस्यवाद को कभी भी जनता की सभा में नहीं बताया। इसके बारे में वह कुछ प्रमुख लोगों के सम्मुख उजागर करते थे। इनकी मृत्यु १५७३-७४ई० में हुई[2]।

लखनऊ के ताजुद्दीन –

यह शेख मोहम्मद गौस के प्रमुख अनुयायियों में थे। इन्होंने बहुत से सुफी ग्रन्थों का अध्ययन किया। तथा बाद में लखनऊ आकर बस गये जहॉ इन्हें बहुत प्रसिद्धि मिली[3]।

अमेठी के शेख अहमदी फयाज –

यह अमेठी के शेखनिजामुद्दीनके संमकालीन विद्वान सूफी थे। उनके धार्मिक चिंतन तथा मनन के कारण शेख को बहुत सम्मान प्राप्त था[1]।

---

[1] बदायुँनी, अब्दुल कादिर मुन्तखब-उत-तवारीख, भाग-३ दिल्ली, १९७३, पृ० २७-४१ अहमद, निजामुदीन-तबकात-ए-अकबरी, भाग-२, कलकत्ता, १९३६ पु० ७००

[2] बदायुँनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४१-४३

[3] बदायुँनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४३

लखनऊ के शेख मुहम्मद कलन्दर –

शेख अपने युवाकाल में इब्राहिम लोदी की सेना में सैनिक थे[2]। मुगल सम्राट बाबर के भारत विजय के बाद शेख बहलोल के शिष्य बन गये और अपने को आध्यात्मिक चिंतन में व्यस्त कर लिया[3]।

खैदाबाद के शेख-उल-हिंदवा –

यह शेख सफ़ी के शिष्य थे। इन्होंने अपना समय आध्यात्मिक ज्ञान तथा सूफी चिंतन में व्यतीत किया। यह आध्यात्मिक विषयों पर उपदेश देते थे। ये अपने जीवन के अन्तिम समय में फतेहपुर सीकरी चले गये जहाँ १५८३ ई० में इनकी मृत्यु हो गई[4]।

अमरोहा के शेख अबन –

यह सूफी फ़कीर थे और सूफी रहस्यवाद का चिंतन-मनन करते थे[5]। इन्होंने कभी किसी को कष्ट देने का प्रयास नहीं किया दीन- दुखियों की सहायता किया करते थे। यह १५७६ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुए[6]।

---

[1] बदायुँनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १३१-१३२
[2] बदायुँनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४३
[3] बदायुँनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४३
[4] बदायुँनी, अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ४५-४६
अहमद, निजामुद्दीन- तबकात-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० ७०२
[5] बदायुँनी- अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ६३-६५
[6] बदायुँनी- अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ६३-६५

अवध के मीर सैयद अलादुद्दीन –

यह सूफी सन्त प्रकृति के अनुकूल रहकर स्वस्थ रहने की प्रक्रिया बताते थे तथा ऐसा उन्होंने स्वयं करके दिखाया[1]। १५८६ ई० में ये मृत्यु को प्राप्त हुए।

लखनऊ के शेख हम्जा –

यह मलिक काकर के पौत्र थे जो सिकन्दर लोदी व इब्राहिम लोदी के दरबार में अधिकारी पद पर आसीन थे। शेख सूफी रहस्यवाद से अत्यधिक प्रभावित हुए और सूफी हो गये[2]। ये इस क्षेत्र के प्रसिद्ध सूफी सन्तों में गिने जाते थे[3]।

लखनऊ के शेख पीराक –

यह लखनऊ के निवासी थे तथा इनका निवास स्थान गोमती तट पर था जहाँ यह सूफी दर्शन का अध्ययन और चिंतन करते थे। अब्दुल कादिर बदायूँनी लिखता है कि यह शेख से मिला था[4]।

बिलग्राम के शेख अब्दुल वहीद –

यह प्रसिद्ध विद्वान सूफी थे तथा शेख हसन के शिष्य थे[5]। बिलग्राम १६ वीं, १७ वी शताब्दी में सूफी शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था और वहाँ के निवासी अपने नाम के आगे बिलग्रामी लगाना एक सममान की बात समझते थे। शेख

---

[1] बदायुँनी- अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १०१-१०३

[2] बदायुँनी- अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १०३

[3] बदायुँनी- अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १०३

[4] बदायुँनी- अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १०४

[5] बदायुँनी- अब्दुल कादिर- पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० १०४

अब्दुल वही द बिलग्राम के निवासी थे और अपने नाम के साथ बिलग्रामी लगाते थे। इनके पास लोगों को आकर्षित करने के गुण विद्यमान थे इस क्षेत्र में जनता के बीच इनका अत्यधिक प्रभाव था काफी संख्या में इनके अनुयायी थे। अब्दुल कादिर बदायुँनी इनसे १५६६-१५७० ई० में अवध में मिले थे[1]।

अमरोहा के पीर सईद मुहम्मद –

यह अपने समय के विद्वान सूफी थे। पीर सईद तथा बदायुँनी के पिता अपने समय में छा.त्रवृत्ति पाने वाले विद्यार्थी थे। इन दोनों ने सम्भल एवं बदाँयू के प्रसिद्ध संतों से शिक्षा ग्रहण किया था। पीर सईद ने मीर सईद जलाल तथा मीर सईद रफीउद्दीन से शिक्षा प्राप्त किया था। इनकी मृत्यु १५७८-७६ ई० में हुई[2]।

लखनऊ के मियॉ अल्हदाद –

इन्होंने अपना समय धार्मिक चिंतन व मनन में व्यतीत किया[3]। अपने धार्मिक सोच और विचार के लिये यह सुप्रसिद्ध विचारक बने रहे[4]।

गोपामऊ के काजी मुबारक –

यह अमेठी के सूफी निजामुद्दीनके शिष्य थे और उन्हीं से शिक्षा प्राप्त किया था[5]। यह विद्वान सूफी थे और अपना अधिकांश समय धार्मिक चिंतन में व्यतीत करते थे।

---

[1] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३ पृ० १०६-१०७
रिज़वी, एस०ए०ए०- पूर्वोद्धृत पृ० २७३

[2] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३ पृ० १२०-१२३

[3] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३ पृ० १३४-१३५

[4] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३ पृ० १३४-१३५

[5] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३ पृ० १८८-१८६

इनके अतिरिक्त बहराइच के सैय्यद सुल्तान (१५४२)[1] खैराबाद के शेख बुद्धन (१५४५), पीहानी के सद्रजहाँ,[2] अमरोहा के मौलाना इल्हदाद,[3] सुल्तानपुर के मौलाना अब्दुल्ला (१५४७), लखनऊ के अब्दुल जलील (१६३३),[4] शडिण्ला के शेख, जुनैद, सुल्तानपुर के सैय्यद मुहम्मद (१६६४)[5] तथा रूदौली के मंखदूम शाह अब्दुल हक[6] आदि प्रमुख सूफी थे।

भक्ति तथा सूफी सन्तों के उदारवादी विचारधारा के परिणामस्वरूप हिन्दू-मूलसमान एक दूसरे के समीप आ रहे थे, उनमें द्वेष की भावना भी कम हो गयी थी और दोनों वर्गो का उदार पक्ष एक समान धरातल खोजने का प्रयास कर रहा था। धर्म के क्षेत्र में कुछ सीमा तक पारस्परिक आदान-प्रदान एवं संश्लेषण हुआ किन्तु यह लोक-आस्थाओं और सामाजिक व्यवहार तक ही सीमित रहा। दूसरी और शुद्धतः बुनियादी स्तर पर संश्लेषण के सभी प्रयास छिटपुट और सतही रहे, पारंपरिक हिन्दू धर्म और पारंपरिक इस्लाम सम्पूर्ण मध्य युग में एक-दूसरे से अलग-थलग ही रहे। भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्तों ने जिन्होने एकता की बात कही उन्हीं के शिष्यों ने अपने को कालांतर में अनेक सम्प्रदायों में संगठित कर लिया और अन्ततः हिन्दू धर्म की विशालकाय के अंग बन कर रह गए। वही मुसलमान यह स्वीकार नहीं किये हिन्दुःत्व इस्लाम मूलतः एक ही हैं यद्यपि दोनों धर्मो के बीच मूल भूत अन्तर नहीं मिट सके फिर भी एक देश में और एक साथ रहने की अनिवार्यता ने उन्हें ऊपरी तौर पर ही

---

[1] शुबहान, जान ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० ३५१

[2] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३,पृ० १६८

[3] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० २१६-२२३

[4] बदायुँनी, अब्दुल कादिर, पूर्वोद्धृत, भाग-३, पृ० ३५४

[5] शुबहान, जान ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६०६

[6] रिज़वी, एस०ए०ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २७३

सही, एक दूसरे के समीप आने के लिए बाध्य किया और विभिन्न खेक्षों में एक सीमा तक परस्पर सहयोग और मेलजोल की भावना पनपी[1]। लोक संस्कृति एवं सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में ही हिन्दू मुसलमान के बीच विस्तृत और स्थायी आदान-प्रदान संभव हो सका। अनेक सूफी सन्त हिन्दू तथा मुसलमानों में समान रूप से पूज्यनीय हुए। अवध में अनेक सूफी मजारे थी जिनमें उर्स के मेले में विभिन्नसम्प्रदायों के लोग जाकर श्रद्धाभाव से मुरादे मांगते थे। इनमें प्रमुख सूफी मजारें शाह खमन पीर, शाह मीना शाह, मख़्दूमशाह अब्दुल हक, ख्वाजा अमादुद्दीन बिलग्रामी सालार मसउद गाजी आदि की थी। जहॉ उर्स का मेला लगता था और भारी संख्या में जनता आया करती थी। सूफियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे धार्मिक मूल के स्थानीय देवी देवता और संत भी हुए जिनके प्रति हिन्दू आस्था मुसलमान दोनों ही श्रद्धा भाव रखते थे।

[1] अहमद, निजामुद्दीन- तबकाते अकबरी, भाग-२, पृ० ८६

पञ्चम अध्याय

कला

मुगलों के शासन काल में अवध में स्थापत्य कला का अत्यधिक विकास हुआ। मुगलों के संरक्षण में स्थापत्य कला अधिक मूर्तमान व सौन्दर्यमय हो गयी थी! इस काल में स्थापत्य कला ने जो श्रेष्ठता प्राप्त की थी उसका मुख्य कारण मुगलों की सौन्दर्य प्रियता, उनकी शक्ति व सम्पन्नता तथा साम्राज्य में स्थापित शान्ति थी[1]। मुगल शासकों ने सांस्कृतिक जगत में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और स्थापत्य कला उसका एक अंग था।

सूबा अवध में मुगल शासकों के अतरिक्त अमीरों, राजाओं, जमींदारों व सरदारों द्वारा भी विभिन्न स्थानों पर मन्दिर, मस्ज़िद, मकबरे, समाधि, सार्वजनिक भवनों आदि का निर्माण करवाया गया। मुगल काल में इमारतों का निर्माण अधिक बड़े पैमाने पर किया जाने लगा था। इसमें लौकिक उपयोग के भवनों से लेकर धार्मिक प्रयोजन के लिए निर्मित किए गए भवन शामिल थे। इस काल में भवन निर्माण में नियोजन को प्रमुखता दी गयी थी। अकबर और शाहजहाँ के काल में भवनों का खाका बनाया जाता था और छोटी-छोटी बातों की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाता था। इन इमारतों के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए बाग-बगीचे फौब्वारों, झरनों आदि का निर्माण किया जाता था। इमारतों के निर्माण में मुख्यतः ईट, चूने और गारे का प्रयोग किया जाता था[2]।

---

[1] ब्राउन, पर्सी-इण्डियन आर्कीटैक्चर इस्लामिक पीरीयड, बम्बई, १६४२ ई०, पृ० ८७-८८

[2] कीन, एच० डी०-हैण्ड बुक फार विजिटर्स टू इलाहाबाद, कानपुर एण्ड आगरा, पृ. ७४.७६

अयोध्या की मस्ज़िदे –

बाबर के शासन काल में उसके सरदार मीर बकी खाँ ने अयोध्या में एक मस्ज़िद (१५२८-२६) का निर्माण करवाया जो 'बाबरी मस्ज़िद' के नाम से विख्यात हुई[1]। इस मजिस्द पर दो शिलालेख थे जो बाबर की प्रशंसा में लिये गये थे[2]। हूमायूँ के शासन काल में भी अयोध्या में 'जुम्मा मस्ज़िद' (1538) ई०

[1] फुर्हर, ए०-द मोन्यूमेंटल एटीक्वाटिस एण्ड इन्सक्रिप्सन इन द नार्थ-वेस्टन प्रोविन्सेस एण्ड अवध, बनारस, १६६६नेविल, एच० आर०-डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, फैजाबाद, इलाहाबाद, १६०५, पृ० ३५२ देसाई, जेड० ए०-इनक्रिप्सन फ्राम अयोध्या एपिग्राफिका इन्डिका, १६६५, पृ० ५८

२. राधेश्याम-मुगल सम्राट बाबर, पटना, १६७४, पृ० ४४५-४४६, रिज़वी, एस० ए० ए० मुगल कालीन भारत, बाबर, अलीगढ़, १६६०, पृ० ६५६-६६० बाबर के समय अयोध्या में जिस मस्ज़िद का निर्माण करवाया गया था। उस मस्ज़िद पर दो शिलालेख मिलते हैं।

(1) व फ़रमूदये शाह बाबर कि अदलश,
विनायेस्त ता काखे गर्दू, मुलाकी,
बिना कर्द ई मुहबते कुदसिया,
अमीरे सआदत निशान मीर बाकी।
बुवद खैर बकी। चो साले विनायश
अयो शुद की गुत्फ़म बुवद खैर बांकी

(2) बनाम आंकि दाना हस्त अकबर,
कि खलिके जुमला आलम ला मकानी,
दरुदे मुस्तफा बाद अज़ सताइश,
कि सखो अम्बियाये दो जहानी।
फसाना दर जहाँ बाबर कलन्दर कि
शुद दर दौरे गेती कामरानी। प्रो०राधेश्याम, मुगल सम्राट बाबर, पृ० ४४५-४६

का निर्माण करवाया था। यह ईट, चूना एवं सुर्खी की बनी हुयी थी। सम्राट औरंगजेब ने भी यहाँ एक मस्ज़िद का निर्माण कराया था।

शाहगढ़ किला –

हुमायूँ के शासन काल में ही सरकार अवध के परगना सुल्तानपुर में सलीम शाह द्वारा डेरा गॉव में घोपा घाट के पास शाहगढ़ किला तथा दुर्ग के अन्दर शाहगढ़ मदरसे का निर्माण करवाया गया। यह इमारत पक्कें ईट तथा सलेटी पत्थर की बनी हैं।

अकबरपुर का किला –

सम्राट अकबर के शासन काल में अकबरपुर (फैजाबाद जिला) नामक स्थान में टोंस नदी के किनारे एक किले का निर्माण करवाया गया। किले के अन्दर एक मस्ज़िद और सैय्यद कलाम फकीर की दरगाह बनवायी गयी। वास्तुकार मोहम्मद मोसीन की देख-रेख में अकबर ने नदी के ऊपर एक पुल का भी निर्माण करवाया था।

लखनऊ –

मुगल काल में लखनऊ[1] का काफी विकास हुआ। सम्राट अकबर ने १५८० ई० में अपने साम्राज्य को बारह सूबों में विभाजित किया। तो उसमें से

---

1 लखनऊ नगर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ हैं। कुछ लोग इस नगर के अस्तित्व को रामायण काल से सम्बन्ध करते हुए लखनऊ और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों को श्री रामचन्द्र जी द्वारा अपने अनुज लक्ष्मण को देने का संकेत करते हैं। अतः उन्ही के नाम से यह लक्ष्मणपुर या लक्ष्मण टीला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लक्ष्मण टीले में एक बहुत ही गहरा कुँआ था जिसके विषय में लोगों की यह धारणा थी कि यहाँ शेषनाग तक चला गया है, जो हिन्दू

एक सूबा अवध था जिसका सूबेदार लखनऊ में रहता था। इसी समय बिजनौर के शेख अब्दुर्रहीम काम की तलाश में दिल्ली आए। उन्हें लखनऊ और उसके आस-पास के गाँव जागीर के रूप मिले। वह नगर में आकर बस गये और वहाँ अपनी पाँच स्त्रियों के लिए 'पंचमहला'' नामक महल बनवाया तथा अपने लिए गोतमी के किनारे महल बनवाया[1]। इन्होंने 'शेखन दरवाजे' का निर्माण भी कराया और इस टीले के समीप दूसरी ओर एक गढ़ी का निर्माण करवाया था। जिसमें छब्बीस मेंहराबें थीं और हर मेंराहब में दो-दो मछलियाँ बनी हुई थी।

पौराणिक कथानुसार इस धरती को अपने सिर पर उठाए हैं। अतः श्रद्धा एवं भक्ति-भाव से हिन्दू यहाँ जल और फूल चढ़ाते थे। यह भी धारणा है कि महाराजा युधिष्ठिर के पौत्र जन्मेजय ने यह क्षेत्र महान् ऋषि-मुनियों को दान दे दिया था जिन्होंने यहाँ अपना आश्रम बनाया था। दीर्घकाल के पश्चात् इन्हें शक्तिहीन देखकर हिमालय की तराई की भर तथा पान्सी नामक जातियों ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। जिन पर १०३० ई० में० सैय्यद सालार मसऊद गाजी ने और १२०२ ई० में बख्तियार खिलजी ने आक्रमण किया था। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम मुस्लिम परिवार इन्ही के साथ आकर बसा था। 'भर' तथा 'पान्सी' के अतरिक्त यहाँ पहले ब्राह्मण और कायस्थ जातियों ने मिलकर एक छोटा सा नगर बसा लिया था। यह भी कहा जाता हैं कि लखना नामक एक अहिर ने लखनागढ़ी का निर्माण किया था। कालान्तर में इस नगर का नाम लखनऊ पड़ गया।

अब्दुल, हलीम 'शरर'-गुलिश्ता लखनऊ, लखनऊ, १९६५, पृ०२१-२, सीताराम, लाला अवधवासी, अयोध्या का इतिहास, पृ०-११, बेनेट, डब्ल्यू०सी० अवध गजेटियर, भाग-२, पृ० ३६४, पैलेस कल्चर आफ लखनऊ, लखनऊ, पृ० १-६

1 श्रीवास्तव, ए० एल०-अवध के प्रथम दो नवाब आगरा, १९५७, पृ० ३६

इसलिए इसका नाम 'मच्छी बावन' पड़ा जो कालान्तर में 'मच्छी भवन' में परिवर्तित हो गया[1]।

अकबर के शासन काल में एक फ्रांसीसी घोड़े के व्यापारी ने लखनऊ में अपनी कोठी का निर्माण कराया था जिसके कारण यह फिरंगी महल के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जब वह व्यापारी वापस अपने देश लौट गया तो उसकी वह जमीन व कोठी सरकारी हो गयी। और बाद में सम्राट औरंगजेब मुल्ला कुतुबुद्दीन जो अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान तथा सूफी व्यक्ति थे उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों को यह महल निवास के लिए दे दिया गया। जो बाद में फिंरगी महल कहलाता था[2]। इस भवन के प्रांगण में एक भाग में मुल्ला निजामुद्दीन ने अपना मदरसा स्थापित किया था। कालान्तर में फिंरगी महल धार्मिक तथा अरबी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया[3]।

सम्राट अकबर के शासन काल के अन्तिम चरण में लखनऊ के सूबेदार जवाहर खाँ ने नायब काजी महमूद बिलग्रामी चौक के दक्षिण में महमूद नगर तथा शाहगंज का निर्माण करवाया था तथा चौक के मध्य में अकबर के नाम पर अकबरी दरवाजें का भी निर्माण कराया। अकबर के समय तक लखनऊ एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित हो चुका था[4]।

सम्राट जहाँगीर ने अपने युवराज काल में मच्छी भवन के पश्चिम की और 'मिर्जा मण्डी' का निर्माण कराया। सम्राट शाहजहाँ के काल में यहाँ के

---

1 बेगम, रेहना-अवध के सामाजिक जीवन का इतिहास, पृ० २२१

2 अब्दुल हलीम 'शरर' गुजिश्ता लखनऊ, पृ० २६, ४३-६४

3 बेगम, रेहना- पूर्वोद्धृत, पृ० १४५

4 हैदर, कमालुउद्दीन- स्वानेहात-ए-सलातीन-ए-अवध, भाग-१, लखनऊ, १८७६, पृ० ५०

सूबेदार सुल्तान अली शाहकुली खाँ ने अपने पुत्रों मिर्जा फाजिल व मन्सूर के नाम पर फाजिलनगर और 'मन्सूरनगर' का निर्माण चौक के दक्षिण में करवाया था[1]। इसी समय यहाँ के रेसालदार अशरफ अली खाँ ने चौके के पूर्व में 'अशरफाबाद' का निर्माण कराया था जो बाद में मोहल्ला 'नौबसता' के नाम से प्रसिद्ध हुआ[2]।

सम्राट शाहजहाँ के शासन काल में यहाँ के सूबेदार ने लखनऊ में वर्तमान शाहपीर मोहम्मद के टीले पर एक मस्ज़िद का निर्माण कराया था। जो टीले वाली मस्ज़िद के नाम से प्रसिद्ध हैं[3]। सम्राट औरंगजेब के काल में भी लखनऊ में एक छोटी सी मस्ज़िद का निर्माण करवाया गया था[4]। इस प्रकार मुगल काल में लखनऊ का अस्तित्व एक महत्त्वपूर्ण नगर के रूप में हो चुका था।

सरकार लखनऊ के परगना देवा में अकबर के काल में बनी एक मस्ज़िद मिलती है[5]। इसी समय परगना बिलग्राम में ईट की अनेक इमारतों का निर्माण करवाया गया इनमें मख़्दूमशाह तथा उनके शिष्य काजी भिखरी की दरगाह सबसे प्रसिद्ध हैं[6]।

---

1 बेगम, रेहाना- अवध के सामाजिक जीवन का इतिहास, दिल्ली, १६६४, पृ० २२२

2 बेगम, रेहना- पूर्वोद्धृत, पृ० २२२

3 फुर्हर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २६७

4 फुर्हर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २६५

5 फुर्हर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २६७

6 फुर्हर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २८०

अकबर के शासन काल में ही परगना बारी में एक मस्ज़िद का निर्माण कराया गया। यहीं पर अकबर के सलाहकार मीर-सद्र-जहाँ तथा उनके लड़के मीरबर आलम का मकबरा भी हैं[1]।

परगना हरदोई में नवाब दिलेर खान ने (१६५७ ई०) शाहबाद नगर का निर्माण करवाया इस नगर के बीच में एक महल निर्मित कराया गया जिसका नाम 'बारी देवरी' रखा गया जिसके दो बड़े-बड़े द्वार थे जो आज भी वैसे ही बने हुए हैं। इसके अलावा शाहबाद में एक मस्ज़िद और दिलेर खान के मकबरे का भी निर्माण कराया गया था। अब इसके अवशेष ही मिलते हैं।

सम्राट औरंगजेब के शासन काल में परगना फतेहपुर में बन्दौर के नवाब अहमद हुसैन खान के गढ़ी में नवाब अब्दुल समद खान के मकबरे (१६६६ ई०) का निर्माण कराया गया था। इसी स्थान पर बकीर अली खान का भी मकबरा बनवाया गया और एक मस्ज़िद का निर्माण कराया गया था[2]। बहादूर खान का किला और रौजा भी इसी स्थान पर निर्मित किये गये थे[3]।

परगना कुर्सी में शाहजहाँ के काल में सिराजुद्दीन ने एक मस्ज़िद का निर्माण करवाया था[4]।

परगना संडीला में एक मस्ज़िद (६६२ हिजरी) का निर्माण करवाया गया था[5]। जो अब खण्डहर हो चुकी हैं। सम्राट औरंगजेब के शासन काल में परगना

---

1 फुईर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २८३
2 फुईर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० १६०
3 फुईर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० १६०
4 फुईर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २६४
5 फुईर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० ३१६

बिजनौर में गहासपुर नामक स्थान पर एक बावली (११२६ हिजरी) का निर्माण करवाया गया था[1]।

सरकार बहराइच के परगना फिरोजाबाद में अकबर के शासन में अली वर्दी खान ने एक पक्का तलाब का निर्माण करवाया था। सम्राट जहाँगीर के शासन काल में यहाँ एक मकबरा दरगाह तथा कुछ हिन्दू मन्दिरों का निर्माण कराया गया था[2]। इसी समय का एक प्रसिद्ध मन्दिर जिसका निर्माण १६२७ ई० में कराया गया यह 'मदन मोहन' का मन्दिर हैं, इस मन्दिर में दो भाषा के अभिलेख प्राप्त होते हैं[3]। इसी समय 'जुगल किशोर मन्दिर' का भी निर्माण करवाया गया था[4]।

सम्राट अकबर के शासन काल में सरकार खैराबाद के परगना गोपामऊ में, ख्वाजा हबीबउल्ला ने जामी मस्ज़िद का निर्माण कराया था[5]। सम्राट शाहजहाँ ने खैराबाद में जामी मस्ज़िद का निर्माण करवाया।

परगना खीरी में सैय्यद खुर्द ने अपने जीवन काल में स्वयं के मकबरे का निर्माण करवाया। खीरी में ही छेदन मियाँ का मकबरा तथा नौ मस्ज़िद का निर्माण कराया गया। यह मुस्लिम सम्प्रदाय का पूजा स्थल हैं। खीरी में घौंराह नामक स्थान पर तुलसीदास घोसाई का ठाकुर द्वारा है इसका निर्माण १६१३ ई० में कराया गया था। यह हिन्दुओं का पूजा स्थल हैं।

---

1 फुहर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २५७
2 फुहर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० ३१६, ३२२, २५७
3 फुहर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० ६८-६६
4 फुहर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० ११४
5 फुहर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २७६

सम्राट शाहजहाँ के शासन काल में परगना खीरी में दिलेर खान ने जामी मस्ज़िद तथा एक मकबरा का निर्माण कराया था[1]।

उपरोक्त विवरणों से ज्ञात होता हैं कि मुगल कालीन सूबा अवध में मुगल शासको, अमीरों, राजा, सरदारों, तथा जमींदारों द्वारा अनेक इमारतों का निर्माण करवाया गया। इनमें अधिकांशः भवन भग्न अवस्था में हैं किन्तु जो पूर्ण हैं वह बहुत सुन्दर और आकर्षक हैं जो स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्त्व रखते है।

संगीत –

संगीत संस्कृति का अंग रहा है। संगीत को मानव ने प्रारम्भ से ही प्रमुखता प्रदान किया हैं। संगीत और कविता मानव के कलात्मक चिन्तन और भावों की छन्द बद्ध भाषा हैं[2]। भाव व्यक्त करने वाले शब्द गीत के रूप में और भाव भंगिमा की भावनाओं की अभिव्यक्ति का जन्म नृत्य के रूप में हुआ। इस गीत और संगीत के विकास की प्रक्रिया धार्मिक क्रियाओं के माध्यम से सर्वप्रथम समाज में विकसित हुई[3]। प्रत्येंक युग में मनोंरजन के लोकप्रिय साधन संगीत थे। संगीत को मानव ने प्रारम्भ से ही प्रमुखता प्रदान की[4]। जब मानवीय भावनाएँ किसी कार्य या किसी घटना के प्रभाव से अत्यधिक प्रसन्न हो जाती हैं, तो वे नृत्य करने और हर्ष ध्वनि करने लगते। यद्यपि धार्मिक भावनाए किसी अन्य

---

1 फुहॅर, ए०- पूर्वोद्धृत, पृ० २८८

2 चतुर्वेदी, नरमदेश्वर- कवि तानसेन और उनका काव्य, इलाहाबाद, सम्वत् २०१३, पृ० ५

3 हलीम, अब्दुल, शरर- लखनऊः द लास्ट फेस आफ ऐन ओरियन्टल कल्चर, अनुवाद हारकोर्ट, ई०एस० एवं हुसैन, फकीर, पृ० १३२

4 श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र- रागपरिचय, भाग-१, इलाहाबाद, १६६२, पृ०२०२ जोशी उमेश- भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद, १६५७, पृ०१-४०

भावनाओं की अपेक्षा अत्यन्त त्रीवता से उद्धेलित होती हैं किन्तु सांसारिक भावनाओं में सर्वाधिक विशेष भावनाएँ वह हैं जो प्रेम के होते है। इसलिए सर्वप्रथम गायन का प्रारम्भ तपस्या और प्रेम के कारण हुआ[1]।

संगीत का तात्पर्य प्रायः गायन से लगाया जाता है किन्तु संगीत जगत में गायन, वादन और नृत्य तीनों को संगीत कहते हैं। प्रख्यात मनीषि शारंगदेव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में लिखा है कि "गीत, वाद्यं नृत्य त्रय संगीत मुच्चते" अर्थात् गायन वादन एवं नृत्य का सम्मिलित रूप संगीत कहलाता है[2]।

भारत में जब मुसलमानों ने नूतन संस्कृति के साथ प्रवेश किया तो वे संगीत का विशेष स्वरूप भी अपने साथ ले आए जिसे फारसी संगीत कहा जाता था। इस संगीत के कलाकार सरोद, वंग, बरबत और रबाव जैसे संगीत के उपकरणों का प्रयोग करते थे। वंग का सुर उँचा और बरबत का सुर नीचा था[3]। अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत की अत्यधिक प्रशंसा करते हुए अपने प्रख्यात ग्रन्थ नूर सिपेहर में यह लिखते है कि भारतीय संगीत की समानता संसार के किसी भाग के संगीत से नहीं हो सकती है। यहाँ का संगीत अग्नि के समान था जो ह्रदय तथा प्राण की अग्नि को भड़काया। विभिन्न भागों के लोग भारत में संगीत की शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न किया किन्तु वर्षो के प्रयत्न पर भी उन्हें यहाँ के किसी ताल स्वर का ज्ञान न हो सका[4]।

---

1 श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र, पूर्वोद्धृत ११६-१२३

2 श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र, राग परिचय, पृ० ११६, भाग-१, इलाहाबाद, १९६२

3 रिज़वी, एस०ए०ए०- खिलजी कालीन भारत, अलीगढ़, १९५४, पृ० ११४-११५

4 रिज़वी एस०ए०ए०- खिलजी कालीन भारत, पृ० १७६

यद्यपि इस्लाम में संगीत और नृत्य का निषेध था किन्तु रूढ़िवादी, परम्परागत कट्टर मुसलमानों के विरोध के बावजूद मुस्लिम समाज का एक बड़ा भाग इन कलाओं में रुचि लेता था, उन्हें प्रोत्साहित करता रहा और मनोंरजन प्राप्त करता था। कोई भी संस्कार, उत्सव व त्यौहार संगीत के बिना अधूरा माना जाता था। शासक से लेकर सूफी तक समाज के विभिन्नवर्गों में संगीत का प्रचलन था[1]। जो संगीत मुसलमानों के साथ आया वह अधिक लोकप्रिय नहीं हो सका। ऐसा प्रतीत होता हैं कि भारत में प्रारम्भिक मुस्लिम शासकों ने अरबी व ईरानी संगीत के प्रचार व प्रसार पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि वह नव स्थापित साम्राज्य की समस्याओं में व्यस्त रहे और जब इस दिशा की और अग्रसर हुए तब तक वह संगीत भारतीय हो चुका था। भारत में मुसलमानों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर अपना प्रभाव डाला परन्तु संगीत पर बहुत ही कम प्रभाव पड़ सका । फिर भी कव्वाली के संगीत ने भारतीय संगीत पर अपना थोड़ा प्रभाव अवश्य डाला और उसके बहुत से रूप स्थानीय भारतीय संगीत में सम्मिलित हो गए[2]।

मुगल काल में संगीत को दरबारी संरक्षण प्राप्त होने के कारण अत्यधिक विकास किया। विशेषकर सम्राट अकबर, जहाँगीर, व शाहजहाँ के शासन काल में संगीत उन्नति के चरम बिन्दु पर पहुँच गया था। बाबर तथा हुमायूँ को भी संगीत से प्रेम था। अकबर के विषय में अबुल फजल लिखता है "सम्राट संगीत की और बड़ा ध्यान देता है और इस मोहक कला के सभी कलाकारों का

---

1 प्रो० राधेश्याम- सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास, इलाहाबाद, १९८७, पृ० २४१

2 हलीम, अब्दुल 'शरर' - पूर्वोद्धृत, पृ० १३३

संरक्षक हैं[1]। यह परम्परा सम्राट जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में भी जारी रही[2]।

मुगल कालीन सूबा अवध में शासकों, अमीरों स्थानीय शासकों द्वारा संगीत को प्रोत्साहन मिला। सूबा अवध में संगीत के प्रमुख केन्द्र अयोध्या, बिलग्राम, लखनऊ थे[3]। कालान्तर में लखनऊ संगीत केन्द्र के रूप में अत्यधिक विख्यात होने लगा था।

मुगल काल में सूबा अवध क्षेत्र में गायन शैली के अन्तर्गत ध्रुपद गायन शैली का अत्यधिक प्रचलन था इसकी गायकी विशेषतः भक्ति प्रधान थी। हिन्दूओं के मन्दिरों में ईश्वर अराधना अधिकाशंतः ध्रुपद गायन शैली में की जाती थी। यह सूबा के हर मन्दिरों में गाया जाता था। मन्दिरों का संगीत विशेषतः दो प्रकार में विभक्त था वैष्णव गीत और शैव गीत। सम्राट अकबर ने ध्रुपद गायकी की अत्यधिक सराहना किया[4]।

मुगल काल में ध्रुपद गायन शैली तथा वीणा वादनका प्रचार था। इसलिए ध्रुपद गायक ही विभिन्न रागों में नए-नए ध्रुपदों की रचना करते थे। यह गंभीर प्रकृति का गायन था। इसे गाने में कण्ठ और फेफड़े पर बल पड़ता था[5]। इसलिए इसे अधिकांश पुरुष ही गाते थे। इसमें वीर और श्रृंगार रस की

---

1 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-१, पृ० ६१२

2 चोपडा, पी०एन०-सम आस्पेक्टस ऑव सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मुगल एज, पृ० ७६

3 बाजपेयी, कृष्णदत्त- उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास, आगरा, १६५६, पृ० ३५

4 श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र, पूर्वोद्धृत, पृ० ७६-८४

5 जोशी, उमेश- भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद, १६५७, पृ० २४१

प्रधानता होती थी। अकबर के शासन काल में ध्रुपद गायन की चार विशिष्ट शैलियाँ प्रचार में थीं जिनके नाम क्रमशः नोहार वाणी, खण्हार वाणी, गोवरहारी या गौरारी वाणी और डागुर वाणी थे। इन चारों की अलग-अलग विशिष्टता इनमें प्रयुक्त होने वाली गमकों के आधार पर थी और इस बात पर निर्भर करती थी कि गायक उन गमकों को किस प्रकार प्रस्तुत करता हैं[1]। प्रस्तुतीकरण की इन सूक्ष्म विभिन्नताओं के कारण ही इस ध्रुपद गायन शैली में इन चार वाणियों (घरानों) का जन्म हुआ। इस गायन शैली का प्रचार शाहजहाँ के शासन काल में भी रहा[2]।

सूबा अवध में गायकी की दूसरी शैली 'ख्याल' गायकी थी। यह सुल्तान हुसैन शाह शर्की की महत्त्वपूर्ण देन थी जिसका उन्होंने व्यापक प्रचार व प्रसार किया था[3]। मूलतः जौनपुर के थे। जब ध्रुपद गायन का प्रचार कम होने लगा और समयांतर में ध्रुपद का स्थान ख्याल गायन शैली ने ले लिया। ख्याल भी ध्रुपद पर ही आधारित था[4]। परन्तु इसमें लचीलापन व तानों की तैयारी के कारण यह ध्रुपद शैली पर हावी होता चला गया। ध्रुपद की गंभीर और मर्दानी गायकी का स्थान ख्याल की मुलायम और चंचल गायकी ने ले लिया। ख्याल गायकी नारी कंठ के भी अनुकूल था इसे मूलतः नारी गाती थी, इसका मुख्य

---

1 जोशी, उमेश- भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद, १९५७, पृ० २००-२४०

2 जोशी, उमेश- भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद, १९५७, पृ० २४२

3 श्रीवास्तव, ए०एल० मध्यकालीन संस्कृति, २२७-२२८ मराठें, मनोहर भाल चन्द्रराव- ताल वाद्य शास्त्र, ग्वालियर, १९७१, पृ० ६८

4 जोशी, उमेश, पूर्वोद्धृत, पृ० २१४-२१५

विषय प्रेम था[1]। इस गायन में कल्पना की उड़ान ध्रुपद की अपेक्षा अधिक थी क्योंकि ख्याल का अर्थ ही कल्पना हैं। ख्याल में ध्रुपद के समान लयकारी पर जोर नहीं दिया जाता था, बल्कि स्वर सौन्दर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस गायकी ने संगीत को प्रभावित किया और सूबा में काफी लोकप्रिय हुआ।

मुगलकाल में सूबा अवध क्षेत्र गायन शैली के अतगर्त गजल तथा कव्वाली का भी प्रचलन था। गज़लें अरबी भाषा का शब्द हैं और इसका अर्थ होता हैं प्रेमपात्र से वार्तालाप। 'गज़ल' प्रणय विषयक कविता हैं[2]। गज़ले अधिकांशतः उर्दू और फारसी भाषाओं में होती थी।

एक गजल में कम-से-कम पाँच और अधिक से अधिक ग्यारह 'शेर' होते थे। सारे शेर एक ही 'रदीफ' और 'काफिए' में होते थे और प्रत्येक शेर में एक स्वतंत्र भाव होता था। गजल का प्रथम शेर 'मत्ला' और अन्तिम शेर 'मक्ता' कहलाता था। गजल का संग्रह दीवान कहलाता था[3]। गजलें अधिकतर श्रृंगार रस में ही लिखी जाती थी। यही कारण था कि गजलों का गायन संगीत प्रेमियों को तो अच्छा लगता ही था, साथ ही साथ सूफियों का भी प्रिय रहा[4]। दिल्ली सुल्तानों के युग में गज़ल गायकी को बहुत सम्मान प्राप्त था। मुगलकाल में भी गज़ल गायकी को उचित सम्मान मिला। विशेषकर सम्राट जहाँगीर के काल में गजल को अन्य गायकी के बराबर सम्मान प्राप्त था[5]। हिन्दू मुस्लिम दोनों वर्ग

---

1 जोशी, उमेश, पूर्वोद्धृत, पृ० २१४-२१६, श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र- पूर्वोद्धृत, पृ० ८१-८३

2 जोशी, उमेश, पूर्वोद्धृत, पृ० २३६

3 श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत, पृ० ५३८ चतुर्वेदी, परशुराम- सूफी काव्य संग्रह- पृ० ५१-५३

4 चतुर्वेदी, परशुराम- पूर्वोद्धृत, पु०५१-५३

5 जोशी, उमेश, पूर्वोद्धृत, पृ० २४०

के कलाकार गजलों को गाया करते थे। कुछ नारियाँ भी गजलों को गाती थी, विशेष रूप से मुस्लिम नारियॉ। इस समय गजल मुख्य रूप से आम जनता में गाये जाते थे[1]।

गजल के साथ-साथ गायन की दूसरी शैली 'कव्वाली' थी जो जन साधारण में काफी लोकप्रिय हुई। 'कौल का अर्थ हैं कथन और 'कौल' को गाने वाला 'कव्वाल' कहलता था। हिन्दुओं के भजन के अनुरूप कव्वाली गाने का प्रचलन था। इसमें प्रेमपात्र को ईश्वरीय मानकर भक्ति मय होकर गाया जाता था। जिसमें शासक वर्ग से लेकर जन साधारण तक श्रद्धा के साथ सम्मिलित होते और कव्वाली का आन्नद लेते थे।

सूबा अवध में भक्ति आन्दोलन और सूफी समुदाय के संतों का भी संगीत के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस काल की अधिकांश संगीत रचनाएँ भक्त कवियों द्वारा रचित भक्ति गीतों पर आधारित हैं। ये गेय पदों के द्वारा ईश्वर का गुणगान करते थे। अधिकांश संत संगीत के माध्यम से अपने उपदेशों को जन-साधारण तक पहुँचाते। इस सूबा के प्रसिद्ध भक्त संगीतज्ञ लालदास, लक्षदास, नरहरि, सहाय, देवीदास, सूरदास मदनमोहन, नरहरि, जगजीवन, दूलनदास आदि थे[2]। इनके अलावा तुलसीदास जैसे भक्त कवि को भी संगीत के प्रति पर्याप्त मात्रा में जागरूकता विद्यमान थी। उन्हें संगीत शास्त्र में अच्छा ज्ञान था। इनके काव्यों में अनेक राग-रागनियों का उपयोग किया गया। विनय पत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली आदि ग्रन्थों में अनेक राग-रागनियाँ प्रयुक्त

---

1 जोशी, उमेश, पूर्वोद्धृत, पृ० २४०
सेन, अरूण कुमार- भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, भोपाल, १९८९, पृ०२६-२७

2 जोशी, उमेश, पूर्वोद्धृत, पृ० २७७, बाजपेयी, कृष्णदत्त, पूर्वोद्धृत, पृ० ३५-४०

की गयी हैं। तुलसीदास की रचना रामचरित्र मानस भी विविध राग-रागनियों में सुगमता से गाये जाते हैं[1]।

इस काल में भजन-कीर्तन के रूप में संगीत का जगह-जगह उपयोग होने लगा था। भजनों की और जन-साधारण का प्रेम भक्तों द्वारा ही किया हुआ था। इस लिए इस काल में नये-नये भजन भी निर्मित हुए। ईश्वर दिव्य रूप में भजनों की लड़ी में गूँथ दिया गया। इन भजनों के द्वारा जहाँ एक और संगीत का प्रचार हुआ वहाँ दूसरी और ईश्वर ज्ञान भी जन-साधारण में फैला। फलस्वरूप मनुष्य के नैतिक चरित्र की उन्नति हुई साथ ही संगीत को एक नवीन शक्ति मिली।

सूबा अवध में मुस्लिम सूफी संतों विशेषकर चिस्ती सूफियों द्वारा ईश्वर भक्ति जागृत करने के लिए संगीत का उपयोग किया करते थे[2]। इनकी खानकाहों में कव्वाली का आयोजन होता था। जो महीफल-ए-समा कहलाता था। जिसे लोग श्रृद्धा भाव से सुनते थे। तत्कालीन साहित्य में ऐसे कई प्रसंग आते हैं जिनमें कव्वालों का सूफियों की उपस्थिति में गाने का जिक्र आया। इन सूफियों के यहाँ प्रायः महफिल-ए-समा का आयोजन होता रहता था। सूफी गजल के रूप में ईश्वर की इबादत 'ईश्वर की अराधना' करते थे जो प्रेम काव्य से ओत-प्रोत होती थी। हर व्यक्ति इसका अर्थ अपने-अपने ढंग से लगाता था

---

1 पाण्डेय, जी०, आन्नदी, के०, शर्मा, आर०- अवधी साहित्य सर्वेक्षण और समीक्षा, इलाहाबाद, १९७८, पृ० ६, जोशी, उमेश, पूर्वोद्धृत, पृ० २२७, सेन, अरुण कुमार- भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, भोपाल, १९८६, पृ० ३१-३२

2 हुसैन, युसूफ- ग्लिपसेंस आफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, पृ० ४६
चतुर्वेदी, परशुराम- सूफी काव्य संग्रह, पृ० ५१-६०
उत्तर भारत की संत परम्परा, पृ० ७१-७२

जहाँ दरवारों में इन्हीं गज़लों का अर्थ वासनामय समझा जाता था, तो खानकाहों में इन गज़लों के गाए जाने पर उनका अर्थ भक्तिमय हो जाता था।

सूबा अवध में प्रचलित प्रमुख वाद्ययंत्र –

संगीत में लय की उपस्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं, उसके लिए विभिन्नवाद्य यंत्र का उपयोग होता आ रहा है। मुगल काल में सूबा अवध के समाज में अनेक संगीत वाद्ययन्त्र लोकप्रिय थे। इस काल में वीणा वादन अधिक लोकप्रिय हुआ यह एकाकी वादन के अतिरिक्त ध्रुपद गायन की संगति के लिये किया जाता था। 'तम्बूरा' भी गायन के साथ लय देने के लिए उपयोग में लाया जाता था। ख्याल गायकी के साथ 'सितार' वाद्य यंत्र का व्यापक प्रचार व प्रसार हुआ। कालान्तर में उसके बजाने की कई प्रमुख शैलियों का जन्म हुआ जिसे बाज कहा जाता था[1]। इनमें दो प्रमुख 'बाज' निर्मित हुए 'दिल्ली बाज' तथा 'पूर्वी बाज'। पूर्वी बाज शैली के अविष्कारक लखनऊ के प्रसिद्ध संगीतज्ञ रजा खाँ थे, इनके ही नाम पर उनके वादन शैली 'रजा खानी' बाज कहलायी[2]।

मुगल काल में संगीत के महत्त्वपूर्ण वाद्य यंत्रों में अनेक अवनद्ध वाद्यों को प्रयोग में लाया जाता था। ये वाद्य भीतर से पोले तथा चमड़े से मढ़े होते थे और हाथ या किसी अन्य वस्तु के ताड़न से शब्द उत्पन्न करते थे। इनमें प्रमुख वाद्य, चंग, ढोल, ढोलक, ढोलकी, नक्कारे या नगाड़ा, डफ, डक्का, आवज या हुडुक्का आदि थे।

---

1 मिश्रा, लाल मणि, भारतीय संगीत वाद्य, दिल्ली, १९७३, पृ० ५४-५८

2 मिश्रा, लाल मणि, भारतीय संगीत वाद्य दिल्ली, १९७३, पृ० ५६-५७
श्रीवास्तव, हरिचन्द्र, राग परिचय, इलाहाबाद, १९९२, पृ० १९९

'चंग' लोक गीत के स्तर का ख्याल गाने वालों का प्रसिद्ध वाद्य था[1]। यह चक्राकार स्थूल चमड़े से मढ़ा होता था। इसे हाथ या बाँस की खपच्चियों दोनों से बजाया जाता था। इस काल में ढ़ोल वाद्य का काफी प्रचलन था अनेक भक्त सन्तों ने इस वाद्य का उल्लेख किया हैं। अबुल फजल के अनुसार ढोल शब्द की उत्पत्ति फारसी शब्द 'दुहुल' से हुई हैं[2]। इसमें विभिन्न लयकारियाँ बजायी जाती थीं ढोल मुख्य रूप से त्यौहारों के अवसरों पर बजाया जाता था। यह नृत्य मण्डलियों में भी संगति करने के लिए प्रयोग में लाया जाता था[3]। गाँवों के कभी-कभी वन्य पशुओं के खतरे से बचने के लिए इसका उपयोग सामूहिक रूप से किया जाता था। 'नगाड़ा' या 'नक्कारा' वाद्य यन्त्र को लोक नृत्य, नौंटकी, रामलीला आदि के साथ अधिक प्रयोग किया जाता था। इस वाद्य का आकार दो कटोरों के समान होता था जिनमें एक छोटा और दूसरा बड़ा होता था। इस बड़े भाग का नीचे का हिस्सा नुकीला बनाया जाता था। इस वाद्य में विभिन्न तालें तथा लयकारियाँ भी बजाई जाती थी[4]।

'डफ' वाद्य यन्त्र का उपयोग सलतनत काल से ही व्यापक रूप से होता आ रहा था[5]। 'डफ' बजाते हुए लोग रात-रात भर फाग गाया करते थे, जहाँ कही होली के वाद्यों का प्रकरण आया वहाँ 'डफ' का वर्णन अवश्य होता हैं। इसे बीन के साथ गति बनाये रखने के लिए सहायक वाद्य के रूप में प्रयुक्त

---

1 मराठे, मनोहर भालचन्द्रराव- ताल वाद्य शास्त्र, ग्वालियर, १९९१, पृ० ७५
मिश्रा, माल मणि, पूर्वोद्धृत पृ०.६८-६९

2 अबुल फजल- आईन-ए-अकबरी, भाग-३, पृ० २६८

3 मिश्रा, लाल मणि- पूर्वोद्धृत, १७६

4 मिश्रा, लाल मणि- पूर्वोद्धृत, १७६

5 रिज़वी , एस०ए०ए० खिलजी कालीन भारत, अलीगढ़, १९५५ पृ०१७३-१७४

करते थे। डफ को हाथ तथा बॉस की खपच्चियों दोनों तरीकों से बजाया जाता था[1]।

मुगल काल में सूबा अवध में नौबत एक महत्त्वपूर्ण वाद्य था। जिसका प्रयोग पूर्व कालों से शान व शौकत के प्रर्दशन के लिए होता था। शासक तथा अमीरों के जुलूस और सेना के साथ नौबत बजाने वाले चलते थे। युद्ध में विजयी सेना अपनी जीत को उद्‌घोषित करने के लिए जोर शोर से नौबत बजवाया करती थी। नौबत में कई वाद्य एक साथ बजाये जाते थे[2]। ये नौबत प्रायः नियमित अतंराल से नक्कारखानों या नौबतखानों में बजते रहते थे जो प्रायः महलों और मंदिरों के प्रवेश द्वार पर स्थित होते थे[3]।

नृत्य –

मुगल काल में सूबा अवध में 'कत्थकनृत्य' शैली का प्रचलन था। जिसका इस काल में व्यापक प्रचार व प्रसार हुआ। यह नृत्य शासक वर्ग से लेकर जन साधारण सभी में लोकप्रिय था। इस नृत्य के प्रारम्भिक केन्द्र अयोध्या तथा लखनऊ थे[4]।

'कत्थक' नृत्य शैली को मुगल काल में समुचित प्रेरणा प्राप्त हुई। प्रारम्भ में यह लोक कला के रूप में प्रचलित रहा था। यह उन संगीतज्ञ और नर्तकों द्वारा प्रदर्शित किया जाता था, जो कि रामायण और महाभारत की कथाओं को नाच गाकर प्रदर्शित करते थे। आरम्भ में यह नृत्य किसी तकनीकी या शास्त्रीय

---

1 मिश्रा, लाल मणि- पूर्वोद्धृत, ७०-७१

2 श्रीवास्तव, ए०एल०-मध्यकालीन संस्कृति, पृ० २२६, बेगम रेहना- पूर्वोद्धृत

3 वर्मा, हरिश्चन्द्र,- मध्यकालीन भारत, पृ० ५३५

4 उमर, डॉ० मोहम्मद- अट्ठारहवीं सदी में हिन्दुस्तानी मआशरत, दिल्ली, १९७५, पृ० ५७०, बाजपेयी कृष्णदत्त, पूर्वोद्धृत, पृ० ३५-३६

तत्व से रहित था। नाचते समय नर्तक अपने पुरुषवेश में ही रहता था। बहुधा वे कुर्त्ता, साफा, टोपी और कुर्ते पर पेशवाज बांधते थे, नीचे चूड़ीदार पायजामा पहनते थे। इनका नृत्य गीत प्रधान होता था[1]। ये गाते अधिक थे, बीच-बीच में थोड़ा नृत्य भी करते थे। गाते समय भाव प्रदर्शनार्थ बहुधा अभिनयात्मक प्रदर्शन करते थे, जो बड़ा सफल होता था[2]। वैष्णवों आन्दोलन के साथ ही कत्थक नृत्य कला एक प्रमुख शास्त्रीय कला के रूप में परिवर्तित हो गया तथा सुप्रसिद्ध नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुरूप इसकी तकनीकी विकसित की गई।

इस कला का विकास अयोध्या और वाराणसी के हिन्दू कत्थक तथा ब्रज और मथुरा के रहस्यधारी नर्तकों ने किया। अयोध्या के कत्थक इस नृत्य में अत्यन्त निपुण थे। कालान्तर में 'कत्थक' नृत्य शैली दो भागों में विभाजित हो गई। प्रथम-पुरुष नर्तक और द्वितीय स्त्री नर्तकियाँ। प्रथम श्रेणी के नर्तकों का मुख्य उद्देश्य कलात्मक रूप से लय बद्धता के साथ नृत्य प्रदर्शित करना था और द्वितीय श्रेणी की नर्तकियाँ मुख्य रूप से कोमलता और प्रेमपूर्ण हाव-भाव को प्रदर्शित करती थी[3]। इसमें भावों की अभिव्यक्ति विशेष होती थी। छन्द की सरलता भी अपूर्व थी साथ ही गीत व ताल दोनों साथ चलते थे[4]।

मुगल काल में कत्थक नृत्य धीरे-धीरे शोभा और मनोरंजन की कला बन गई। अनेक कत्थक नर्तक अपने सुरुचिपूर्ण प्रसाधन सामग्री का उपयोग करते थे। उनकी कथावस्तु भी अब केवल धार्मिक या आध्यात्मिक विषयों पर हिन्दू लोक गाथाओं तक ही सीमित न रही, उन्होंने धर्म निर्पेक्ष स्वरूप को भी अपना

---

1 रोहतगी, सरोजनी- अवधी का लोक साहित्य, पृ० ३७४

2 रोहतगी, सरोजनी- वही, पूर्वोद्धृत- ३७४-७५

3 उमर, डॉ० मोहम्मद- पूर्वोद्धृत

4 उमर, डॉ० मोहम्मद- पूर्वोद्धृत

लिया था[1]। किन्तु नृत्य नाटक या किसी एक कलाकार द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्य में कत्थक मूल कला के तत्त्व बने रहे।

नाट्यकला –

नाट्य कला मानव के प्राकृतिक भावों तथा समाज से सम्बन्धित जीव के कार्य-कलापों का अनुसरण हैं। प्राचीन युग से यह निरन्तर फलती-फूलती रही, और राजा, सामान्तों द्वारा इसे संरक्षण मिलता रहा। भारत में मुसलमानों के शासन स्थापना के बाद अन्य कलाओं के समान नाट्यकला को संरक्षण और प्रोत्साहन नहीं मिल पाया। फिर भी नाट्यकला हिन्दू धार्मिक और सांस्कृतिक केन्द्रों में सम्पूर्ण मध्ययुग में निरन्तर व्यवहार में लायी जाती रही[2]।

मुगल काल में सूबा अवध में नाट्यकला का प्रचलन जन साधारण में था। त्यौहारों , जन्मोत्सव, विवाह [●] तथा अन्य उत्सवों के समय अनेक जातियों में नाना प्रकार के नाट्य खेलने की प्रथा बहुत प्रचीन समय से चली आ रही थी। धार्मिक उत्सव पर पौराणिक गाथाओं, व्रत और पर्व सम्बघी लोक- कथाओं को नाट्य कला द्वारा प्रदर्शित किया जाता था गीत शैली पर छोटे-छोटे प्रहसनों में राजाओं सम्राटों की वीरता, शौर्य, पराक्रम आदि को जन साधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था।

---

1 रोहतगी, सरोजनी- वही, पूर्वोदृत- ३७४-७५

2 श्रीवास्तव, ए०एल.-मध्यकालीन संस्कृति, पृ० २३०-२३१

● नकटा अवधी लोक नाट्य हैं जिसे विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा खेला जाता था। रोहतगी, सरोजनी- अवधी का लोक साहित्य, दिल्ली, १९७१, पृ० ३४४

नाटकों में प्रायः श्रृंगार वीर और सबसे अधिक हास्य के भावों की ही व्यंजना होती थी। कभी-कभी जीवन के कटु सत्यों को व्यंगात्मक तरीके से प्रस्तुत किया जाता था। कहीं-कहीं प्रहसनों में अश्लीलता, भद्दापन व गवारुपन भी रहता था[1]। अधिकांशतः नाट्ययकला का स्वरूप धार्मिक रहता था। सूबों में अनेक प्रकार के नाट्यकला प्रचलित थे जिसमें कठपुतली, स्वांग, बहुरुपिया, रामलीला, कृष्णलीला आदि प्रमुख थे।

कठपुतली –

कठपुतली नृत्य में काठ की अनेक पुतलियां होती थी। इन्हें प्रसंग के अनुरूप वस्त्र पहनाए जाते थे। इन पुतलियों को दो व्यक्ति नचाते थे। एक व्यक्ति सूत्रधार के समान पुतलियों के नृत्य के साथ-साथ कथा की विवेचना करता जाता था। पुतलिया धागों में बाँधकर अपनी उंगुलियों से बहुत सावधानी के साथ साधे रहता था[2]। उनकी उंगुलियों में विशेष कलात्मकता होती थी जिससे कि इतनी सुन्दरता से कठपुतलियाँ इधर-उधर थिरकती थी। दूसरा व्यक्ति जो प्रायः स्त्रियाँ होती थी, ढोलक पर गीत गाती थी। इन गीतों में वीर, पराक्रमी राजाओं आदि के जीवन की झलकियाँ रहती थीं। इनमें मुगल सम्राटों के दरबार के वृतान्त का भी अत्यन्त रोचक वर्णन रहता था, कभी-कभी मुगल दरबारियों पर भी एक व्यंग होता था[3]।

त्यौहारों एवं मंदिरों के उत्सवों के समय कठपुतलियों के खेल अधिक होते थे। जिसमें रामायण, महाभारत आदि कथा के अतरिक्त ऐतिहासिक

---

1 रोहतगी, सरोजनी पूर्वोद्धृत, पृ० ३४४

2 कीथ, ए०बी०- दि संस्कृतड्रामा पृ० २६६-२७०

3 रोहतगी, सरोजनी पूर्वोद्धृत, पृ० ३४६

घटनाटों व सामाजिक हास्य व्यंग का प्रदर्शन अधिक होता था[1]। अवध में नवाबी शासन काल में इस कला का व्यापक प्रचार व प्रसार हुआ और आज भी लखनऊ में कठपुतली वालों के घर पाए जाते हैं।

स्वांग –

स्वांग घटना नाट्य कला का ही एक रूप था। इस काल में स्वांग और तमाशा जन साधारण के लोकप्रिय मनोरंजन थे[2]। स्वांग प्रायः जन्मोत्स्व, विवाह, त्यौहार आदि अन्य विशेष अवसरों पर धरने की प्रथा थी। इस कला में अधिकाशतः निम्न जातियाँ भाग लेती थी। स्वांग में पुरुष पात्र भाग लेते थे पर कभी-कभी स्त्रियाँ भी काफी संख्या में भाग लेती व दो-दो के जोड़े बनाकर नाचती-गाती और आपस में हंसी-मजाक करती थी[3]।

स्वांग में श्रंगारिक चेष्टाओं का अभिनय अधिक रहता था। कभी पुरुष स्त्री और कभी-कभी स्त्री पुरुष का स्वांग बनाकर नाना प्रकार के हाव-भाव द्वारा नृत्य करते थे। कभी चेहरे को रंग कर कोई विशेष रूप भी दे दिया जाता था जैसे शेर, भेड़िया, चीता आदि का रूप बना दिया जाता और साथ में बोली भी उन्हीं के अनुरूप बोलते थे। स्वांग धरने वालों के साथ में कुछ लोग ढोलक, मजीरा और विशेषतया छिपुली (काँसे की थाली) लिये रहते थे। स्वांगों में नृत्य गीत, संवाद की प्रधानता रहती थी। विशेष संवाद श्रृंगार और हास्य का होता था[4]।

---

1 परमार, श्याम- लोक धर्मी नाट्य परम्परा, वाराणसी, पृ० ८६

2 कथा होय तह श्रोता सौबे, वक्ता मूंड पचायारे।
होय जहॉ कहीं स्वांग तमाशा, तनिक न दीन सताया रे।
उपाध्याय-, अयोध्या- कबीर वचनावली, काशी, सम्वत् २००३, पृ० २१६

3 रोहतगी, सरोजनी पूर्वोद्धृत, पृ० ३५०

4 रोहतगी, सरोजनी पूर्वोद्धृत, पृ० ३५०

बहुरूपिया –

बहुरूपिया अर्थात् एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न रूप धारण करता था[1]। मुगल काल में बहुरूपिया बनना एक प्रकार का धन्धा हो गया था। यह रूप अधिकतर धार्मिक और सामाजिक जीवन के प्राणियों से सम्बन्धित होता था, जैसे काली, शिव, अर्धनारीश्वर, विष्णु, मुनीम, सेठ आदि का रूप धारण करना।

बहुरूपिया के अभिनय में गीत का कोई स्थान नहीं था किन्तु जब वह नाना रूप धारण करके दर्शकों के बीच में पहुँचता था तो दर्शकों से ही उसका सम्वाद होता था जो स्थानीय लोक भाषा में ही होता था[2]। बहुरूपिया जन-साधारण विशेषकर धार्मिक मनोवृत्ति के लोगों के मनोरंजन के साधन थे। इनके द्वारा नाटकों का अभिनय अधिकतर मंदिरों के बाहर होता था।

रामलीला –

सूबा अवध क्षेत्र में राम भक्ति का प्रभाव अधिक रहा तथा यहाँ रामलीला गीति काव्य नाट्यशैली के रूप में प्रचलित थी[3]। रामलीला का व्यापक प्रचार व प्रसार और लोकप्रिय होने का एक कारण श्री रामचन्द्र का अवध निवासी होना भी था। इसी काल में तुलसीदास ने राम चरित्र पर आधारित काव्य रामचरित मानस की रचना अवधी भाषा में किया था। फलतः राम के गुणों के प्रति लोगों में श्रृद्धा व आदर में वृद्धि हुई[4]।

---

1 ओझा, दशरथ- हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास, दिल्ली, पृ० ५०

2 रोहतगी, सरोजनी पूर्वोद्धृत, पृ० ३५१

3 बाजपेयी, कृष्णदत्त- उ०प्र० का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ३५-४०

4 रोहतगी, सरोजनी पूर्वोद्धृत, पृ० ३५१-३५२

राम लीलाओं के प्रदर्शन में जन-साधारण को उपदेश देने की भावना भी निहित थी। इसमें राम के जीवन के दृश्य, विशेषकर रावण के विरूद्ध उनके सैनिक कारनामें, प्रदर्शित किये जाते थे। रामलीला का रूप शुद्ध धार्मिक था। जनता में लोग धार्मिक भावना से प्रेरित होकर अभिनय करते थे, और दर्शक भी उसे देखना एक धार्मिक कृत्य समझते थे।

षष्ठम् अध्याय
उपसंहार

संस्कृति जनमानस की एक अदात्त प्रवाहमान चेतना होती है जो काल और देश के परिवेश में रंगो और गंधो को आत्मसात् करती हुई विकासमान रहती है। अवध का सांस्कृतिक अध्ययन एक प्रकार से मुगलकालीन सांस्कृतिक गतिविधियों का वह अध्ययन है जिसका एक बिन्दु अवध था। अवध का इतिहास प्राचीनकाल से बहुत गरिमामय रहा है। यह अपने पारम्परिक सांस्कृतिक विशेषताओं के लिये विशिष्ट स्थान रखता है अवध अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विशेषताओं एवं नवीन प्रभावों के आलोक में किस प्रकार विकास पथ पर अग्रसर होता रहा। उसकी ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्यात्मक प्रस्तुति इस शोध प्रबंध की विषय वस्तु है। इस शोध प्रबंध के अन्तर्गत पांच अध्यायों में क्रमशः भूमिका, समाज, शिक्षा एवं साहित्य, धर्म तथा कला का अध्ययन उपर्युक्त तथ्य की सामग्री प्रस्तुत करता है। स्वाभाविक है कि अवध का प्राचीन स्वरूप मुस्लिम प्रभावों से कुछ सीमा तक बदलता रहा। अतः मुगलकाल में अवध में एक मिश्रित संस्कृति की झलक देखने को मिलती है।

मध्यकाल में मुस्लिम शासन के स्थापना के उपरान्त राजनैतिक रूप से अवध का स्वतंत्र अस्तित्व नही रहा। भारत के अन्य प्रान्तों की तरह अवध भी मुस्लिम शासन के अंतर्गत चला गया। दिल्ली सुल्तानों में सर्वप्रथम इल्तुतमिश ने भारत में अधिकृत प्रदेशों जिनमें दिल्ली, बदाँयू, अवध, बनारस तथा शिवालिक प्रदेश थें। उन्हें एक सुसंगठित राज्य अर्थात दिल्ली सल्तनत में परिवर्तित किया। १२२६ ई० अवध को दिल्ली सल्तनत का एक प्रान्त बनाया गया। बलवन के शासनकाल में अवध मे मुस्लिम शासन की जडे क्रमशः गहरायी में पहुंची । खिलजी काल में अवध में मुस्लिम शासन सुद्वढ़ हुआ। मुगलकाल में अवध

स्वतंत्र न हो सका। यह मुगल सम्राज्य का महत्त्वपूर्ण भू-भाग बना रहा। सर्वप्रथम इसकी सीमाओ को सुरक्षित करने का श्रेय सम्राट अकबर को मिला। अकबर ने वास्तविक जमा (आय) स्थापित करने के लिये किये गये प्रयत्नों के अनुभव का लाभ साम्राज्य को निश्चित प्रशासनिक इकाईयों में विभक्त करने मे भी किया। १५८० ई० दहसाला (दस साला) व्यवस्था की स्थापना के समय सम्राट ने साम्राज्य को बारह भागों मे विभाजित किया। और उनमें से हर एक को सूबा (प्रान्त) नाम दिया। उनमें से एक सूबा अवध था। इस समय से अवध सुद्रढ़ केद्रीय शासन के अन्तर्गत आया। जहां केद्रीय शासन से नियुक्त अधिकारियों द्वारा प्रशासन कार्य किया जाता था। इसकी भौगोलिक स्थिति, उपयुक्त जलवायु तथा उर्वक भूमि अन्य सूबों की तुलना में इसका विशेष महत्त्व स्थापित करती थी। यहां की विशेष प्रकार की फसले, परिश्रमी कृषक एवं सैनिक मुगलों के लिये विशेष महत्त्व रखते थे। इस प्रकार सूबा अवध १५२६ से १७२२ तक (लगभग दौ सौ वर्षो तक) केन्द्रीय मुगल शासको के अंतर्गत रहा। केन्द्र से अत्यधिक समीप होने से इस क्षेत्र पर इस्लाम का प्रभाव रहा। जिसके फलस्वरूप अवध में एक मिली जुली संस्कृति का विकास हुआ। १७२२ ई में यह सूबा नवाबी शासन के अंतर्गत चला गया। प्रशासनिक दृष्टि से सूबा अवध पाँच सरकारें अवध, लखनऊ, गोरखपुर, खैराबाद बहराइच, विभाजित था। प्रत्येक सरकार मे कई परगने बनाये गये। अकबर शासन काल के बाद समय में सरकारों के प्रशासनिक इकाई में आन्तरिक परिवर्तन आये। जिसमें कई नये परगनों का उदय हुआ। इस प्रकार सरकारों में परगनों की संख्या बढती घटती रही। जिसका उल्लेख प्रथम अध्याय के तालिका-१ में किया गया है।

मुगलकालीन सूबा अवध में हिन्दू तथा मुसलमान के मध्य सम्पर्क बढ़ता ही गया। दोनो ही सम्प्रदायों के रीति, रिवाज खान-पान ,रहन-सहन, वेशभूषा , आचरण पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ा था। दोनो ही सम्प्रदायों में वर्णगत

संकीर्णतायें थी । यदि हिन्दू समाज बाहय रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निम्नोत्तर जातियों मे विभाजित था तो मुस्लिम समाज भी शासक, अधिकारी वर्ग सैय्यद, शेख, पठान इत्यादि में विभाजित था। दोनों समाज असमानता पर आधारित था। यद्यपि इस काल में भक्ति तथा सूफी आंदोलन के फलस्वरूप दोनो ही समाज में गुणात्मक विकास हुआ। इसके अतिरिक्त इस युग में व्यावसायिक गतिशीलता तथा शहरीकरण की नीति से व्यापक सामाजिक आर्थिक परिर्वतन एवं परिवर्धन हुआ जिससे विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, गतिशीलता सेजातीय संकीर्णतायें शिथिल पड़ गये। अतः दोनों सम्प्रदायों में मूल रूप जाति व्यवस्था के आधार पर ही रहे परन्तु उनके रहन सहन में परिर्वतन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे।

इस युग के समाज में स्त्रियों की दशा में कोई व्यवहारिक यागुणात्मक उन्नति नही हुई। पूर्व कालों के समान समाज पुरूष प्रधान था और नारी विभिन्न रूपो में आर्थिक दृष्टि से पुरूष पर ही निर्भर थी। उसको समाज ने व्यक्तिगत रूप से कुछ करने की स्वतंत्रता नहीं प्रदान की। समाज ने उन्हें मां, बहन, पत्नी, पुत्री के रूप में मर्यादा में रहकर जीवन व्यतीत करना होता था। और इसी प्रकारका जीवन यापन करने वाली स्त्रियों को समाज सम्मान की दृष्टि से देखता था। समाज का स्त्रियों के प्रति विकृत दृष्टिकोण नैतिक पतन के लिये उत्तरदायी बना। इसी दृष्टिकोण ने बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, पर्दाप्रथा आदि उनके कुरीतियों को जन्म दिया।

इस युग में हिन्दू तथा मुसलमान सम्प्रदायों के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे समाजिक संस्कार ,रीति-रिवाज विश्वास, व्रत, त्योहार, मेले आदि थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित थे। दोनों ही समाज में पंडित, मौलवी, सूफी संतो का प्रभाव रहा। सूबा

अवध के हिन्दू तथा मुस्लिम के बीच सम्पर्क प्रेम और सौहार्द्र की भावन बढ़ रही थी। अब इस्लाम यहां के लिये नया नहीं रहा ना ही मुसलमान अजनबी अतः सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मुख्य रूप से इन्ही दोनों सम्प्रदायों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। रहन-सहन वेशभूषा, खान-पान, मनोरंजन व मेले आदि के क्षेत्रों में समन्वयवादी प्रवृति शैनःशैनः प्रकट होने लगी थी।

सूबा अवध का हिन्दू तथा मुस्लिम समाज धर्म प्रधान होने से दोनो ही सम्प्रदायों के लोग अपने धार्मिक परम्पराओं के अनुसार संस्कारों तथा त्यौहारों को मनाया करते थें हिन्दुओं की तरह मुसलमान भी ठाठ-बाट से संस्कारों तथा त्यौहारों का आयोजन करते थें कुछ त्यौहारों में हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के यहा सम्मिलित हो कर सौहार्द्र पूर्ण वातावरण उपस्थित किया। मुगल शासकों ने भी हिन्दुओं के त्यौहारों मे शामिल होकर सद्‌भावना का उदाहरण प्रस्तुत किया। इस काल में विभिन्न वर्गो की मनोरंजन के प्रति विशेष रूचि थी, जिसके अनेक साधन थे जिनको हर वर्ग एवं जाति के लोग अपनाते थें तो दूसरे केवल उच्च वर्ग के लोगो द्वारा ही अपनाये जा सकते थे। धनाभाव के कारण साधारण वर्ग के लोगो द्वारा इनका नियोजन सम्भव नहीं था। मनोरंजन के लोकप्रिय साधनों में मुख्य ताश, शतरंज, चंदल-मंडल, नृत्य, संगीत, मल्लयुद्ब, नर्दबाजी, जानवरों तथा पक्षियों की लड़ायी, नटो तथा बाजीगरों द्वारा प्रस्तुति मनोरंजन आदि थे। इस क्षेत्र में लगने वालें मेले तथा धार्मिक तीर्थ स्थानों की यात्रायें भी जन साधारण के मनोरंजन तथा आनन्द का अवसर होती थी। प्रत्येक युग ने इनके महत्त्व की अभिवृद्धि मे योगदान दिया है। इसमें प्रायः सभी जाति तथा वर्ग के स्त्री-पुरूष, बच्चे, एकत्रित होते थें कुछ मेलों में हिन्दू तथा मुसलमान दोनो भाग लेते थे तथा व्यापारिक क्रिया-कलापों में सक्रिय रहते थे। व्यापारियों द्वारा लगायी गयी दुकानों से सामानों की खरीद करना भी इन मेलों का महत्त्वपूर्ण अंग था। मेलों में सामानों का क्रय-विक्रय खूब होता था। जिससे इसका आर्थिक

महत्त्व भी था। अवध क्षेत्र में लगने वाले मेले में अयोध्या मे रामनवमी का बहुत बड़ा मेला लगता था। मुगल काल में दशे के सभी भागों से यात्रियों के समूह अयोध्या का दर्शन के लिये आते थे। इसी प्रकार गुप्तारघाट पर क्वांर एवं कार्तिक मास की अमावस्या को स्नान का मेला लगता था। इन मेलों का आज भी प्रचलन है। इसके अतिरिक्त खानकाहों, दरगाहों तथा सूफियों के महारों पर उर्स का मेला लगता था। जिसका धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्व तथा ख्याति थी। उर्स के अवसर पर क़व्वाली की महफिलों का भी आयोजन होता था जिसे लोग बड़ी श्रद्धा-भाव से सुनते थे। बहराइच में सालार मसूद गाजी की मजार थी। जो जनता में बालापीर के नाम से प्रसिद्ध थे। यहाँ ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार को बड़ा भारी मेला लगताथा। जिसमें दूर-दूर से श्रद्वालू दर्शन हेतु आते थे। इसके अलावा बिलग्राम मे ख्वाजा अमादुद्दीन बिलग्रामी, मीर अवदुल वही, द, रूदौली मे मख़दुम शाह अब्दुल हक, अयोध्या मे शीस अय्यूब तथा नूह की मजार की अत्यधिक ख्याति थी। ये सभी मेले धार्मिक संस्कार सम्पन्न करने के साथ मनोरंजन के साधन भी थे।

मुगल कालीन सूबा के समाज की आधारभूत इकाई गांव था। प्रत्येक गांव परिवारों के समूह से मिलकर बनता था। गांव के अधिकंश निवासी किसान होते थे। ग्रामीण जनसंख्या में कृषक एक ऐसा वर्ग था जिसके उत्पादन पर सभी ग्रामीण वर्गो के साथ ही शहर के लोगों का भी अस्तित्व निर्भर था। यह कृषक वर्ग सामाजिक प्रतिष्ठा और धन के असमान वितरण के आधार पर वर्गो में बंटा हुआ था। धनी किसान तथा निर्धन किसान में बंटे थे। गांवो में निवास के आधार पर गांव के स्थायी निवासी तथा अस्थायी निवासियों मे विभाजित थे गावों में कृषकों के अतिरिक्त कारीगर और कामगार तथा मजदूर समुदायों की एक बड़ी संख्या भी निवास करती थी। ग्रामीण समाज के इन समुदायों मे बुनकर, कुम्हार, लोहार, बढ़ई, नाई तथा धोबी प्रमुख थे। यह समुदाय ग्रामीण

समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गांव में कृषको के ऊपर ग्रामीण जनसंख्या का एक अन्य वर्ग निवास करता था, जो भू राजस्व में विशेष उच्चाधिकार रखता था। इन्हे जमींदार के नाम से जाना जाता था। सूबा अवध मे प्रायः जमींदारी प्रथा का प्रचलन था। इनमें प्राथमिक जमींदार, मध्यस्थ तथा स्वायत्त जमींदार व सरदार थे। प्रथम दो प्रकार के जमींदारं को मुगल शासन ने राजस्व वसूली के लिये राज्य के सहायक के रूप में स्वीकार किया था। इस सेवा के बदले इन्हे वसूले हुए राजस्व मे एक निश्चित राशि प्राप्त करने का अधिकार था। अपने मुख्य वित्तीय दावा के आलावा ये किसानों से कई प्रकार के उपकर और नज़राने वसूल किया करते थें। प्रत्येक शासन की यह कोशिश रही कि इन जमींदार को मात्र कर वसूलकर्त्ता बनाकर रखा जायें। स्वायत्त जमींदारं व सरदार को अन्य जमींदार की तुलना में विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। यह अपने वंशानुगत भू क्षेत्रों पर शासन करते थे। इन्हें केवल राजा को नजराना के रूप में निश्चित धन राशि देनी पड़ती थी। अवध मे इस प्रकार के अधिकांश जमींदार घाघरा नदी के दूसरे किनारे पर थें। जिन्हें सरवर या सरयू पार कहा जाता था। यह अतंयत्र शक्तिशाली थें जब तक केन्द्र में शक्तिशाली सम्राटो का शासन रहा यह सेना के नियंत्रण मे रहे। औरंगजेब के मृत्यु के उपरान्त परवर्ती मुगल शासकों के काल में शाही सेना को चुनौती देने लगे और अपने आपको स्वतंत्र कर लिये। नवाबी शासन काल में भी इनका स्वतंत्र अस्तित्व रहा इन्होनें नाममात्र की अधीनता स्वीकार किया। जिसका विवरण प्राप्त होता है।

मुगलकालीन सूबा अवध में शिक्षण तथा साहित्यिक गतिविधियां तीव्र रही। यहां की शिक्षण संस्थाओ की ख्याति सुनकर दूर-दूर से लोग यहां अध्ययन करने आते थे। अवध के शिक्षण संस्थान धार्मिक शिक्षा के प्रमुख केद्र रहे। हिन्दू शिक्षा के प्रमुख केद्र अयोध्या था जहां दूर-दूर से लोग अध्ययन करने

आते थे। मुस्लिम शिक्षा केद्र लखनऊ, अमेठी, दरियाबाद, खैराबाद, गोरखपुर, बहराइच, जैसे बड़े नगरो में ही नही बल्कि बिलग्राम, काकारों , गोपामऊ, सोहाली तथा जायस जैसे छोटे कस्बों मे भी थे। यह शिक्षण सस्थायें विद्वानों , अध्यापकों तथा धर्म गुरूओं द्वारा चलाये जाते थे। राज्य सरकार द्वारा स्थापित शिक्षण केन्द्रों को शासन की और से वित्तीय सहायता मिलती थी। शिक्षा का प्रचलन उच्च वर्ग तथा मध्यमवर्ग में अधिक था। जन साधारण मे शिक्षा का प्रचलन अपेक्षाकृत कम था नितान्त गरीब वर्ग कभी शिक्षा के व्यापक स्वरूप के अंतर्गत नही रहा। पारस्परिक रूप से शिक्षा की पद्वति चलती रही और जो इसके लिये साधन सम्पन्न थें वे शिक्षित होते रहे। इस काल में शिक्षण केन्द्र के रूप में लखनऊ का विशेष रूप से विकास हुआ। यह अपने न्याय शास्त्र (फ़िक़) तथा सदाचार की शिक्षा के लिये देश-विदेश मे विख्यात था। १८वीं शताब्दी के पूर्वाद्व में लखनऊ का फिरंगी महल उच्च शिक्षा के रूप मे विकसित हुआ। जहां विभिन्न भागों से विद्यार्थी धर्म शास्त्र, न्यायशास्त्र ,अरबी की शिक्षा ग्रहण करने आते थे। यहां के शिक्षक मुल्ला निजामुददीन ने उच्च शिक्षा का पाठयक्रम निशिचित किया । इस पाठ्यक्रम को दर्ज-ए-निजामी कहते थे। यह उस पाठ्यक्रम पर आधारित था जो किदेश में मुस्लिम शासन के प्रारमभ में प्रचलित था। इसमें ग्यारह विषय सम्मिलित किये गये और सबके लिये अलग-अलग पुस्तकें थी। कुछ समय बाद चार विषय इस पाठ्यक्रम और जोड़ दिये गये। अवध क्षेत्र की खानकाहे तथा विद्वानों के निवास स्थान भी उच्च स्तर के सूफी ज्ञान, धर्म तथा न्यायशास्त्र की शिक्षा के लिये प्रसिद्व थे। इस काल में अवध में सूफियों की गतिविधियां अधिक रही। अनेक खानकाहें सूफी शिक्षा केन्द्र के रूप में विख्यात हुये। कुछ खानकाहों तथा विद्वानों को शासन की ओर से आर्थिक सहायता भी प्राप्त थी।

अवध क्षेत्र में शिक्षा के साथ ही साहित्य की भी अत्यधिक उन्नति हुई। यह वह युग था जबकि विभिन्न सम्प्रदायों के सन्त, सूफी, कवियों ने अपने उपदेशों, विचारों एवं मतों को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिये क्षेत्रिय भाषाओं में साहित्यों का सृजन किया। अवध क्षेत्र के भक्तसन्तों एवं सूफियों के गतिविधियों का प्रमुख केद्र था। इन्होनें अपने निवास स्थान की भाषा में साहित्यों की रचना किया। विभिन्न काव्य धारा के कवियों ने अवधी भाषा में साहित्यों की रचना की अतः अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास हुआ। जिसका सूत्रपात सूफी प्रेमाख्यान काव्यों द्वारा हुआ। इसके अतिरक्त गैर सूफी प्रेमाख्यान ,सन्त काव्य, राम काव्य, कृष्ण काव्यों की रचना अवधी में की गयी। मध्य युग के श्रेष्ठतम् रचनाकार मलिक मोहम्मद जायसी तथा गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में अवधी का प्रयोग कर इसे शीर्षस्थ स्थान प्रदान किया। अवधी भाषा के लिये यह स्वर्ण युग रहा। जिसमें अनेको साहित्यो का सृजन किया गया। इसके अलावा अन्य भाषाओं में भी साहित्य रचे गये। इन साहित्यों में अवध संस्कृति की झलक मिलती है।

मुगलकाल में अवध क्षेत्र में धार्मिक क्षेत्रों में समन्वयात्मक दृष्टिकोण धीरे-धीरे विकसित हो रहा था। इस काल में भक्ति तथा सूफी आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप धार्मिक संकीर्णातायें कम हुई थी। अवध क्षेत्र में अनेक सम्प्रदायों के माध्यम से सन्तों तथा सूफियों ने अपने उपदेशों तथा शिक्षाओं से जन-सामान्य के आध्यमिक उत्थान योगदान किया। इन्होंने ने न केवल तत्कालीन मानव के धार्मिक जीवन को परिवर्तित किया। वरन् सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया। इन्होंने धर्म में फैली असहिष्णुता, अनुदारता को समाप्त करने का प्रयास किया। जो धीरे-धीरे धर्म मे प्रवेश कर गयी थी। हिन्दू सन्तां के निवास स्थान, धर्मशाला, मठ तथा सूफियों की खानकाहें आध्यात्मिक शिक्षा के

केन्द्र थे। इन सन्तो के प्रयासों के फलस्वरूप धर्म के क्षेत्र में कुछ सीमा तक पारस्परिक आदान-प्रदान एवं संश्लेषण हुआ। लोक संस्कृति एवं सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में हिन्दू मुसलमानों के बीच विस्तृत और स्थायी मेल मिलाप बढ़ रहा था। अनेक सूफी संत हिन्दू और मुसलमानों मे समान रूप से पूज्यनीय हुयें और आज भी उर्स में हिन्दू मुसलमान मिलकर भाग लेते है। सूफियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे धार्मिक मूल के स्थानीय देवी देवता और संत भी हुए जिनकी हिन्दू और मुसलमान दोनो ही पूजा करते रहे है।

मुगलकालीन अवध में कला क्षेत्र में अनेकानेक उपलब्धियां रही। मुगल शासकों, स्थानीय राजा, जमीदार व सरदारों ने स्थापत्य कला के विकास में योगदान दिया। यहा की इमारतो का निर्माण दिल्ली, आगरा के इमारतो के अनुरूप ही किया गया। किन्तु इनमे यह भव्यता तथा मजबूती की कमीहै। जो दिल्ली आगरा के इमारतों में देखने को मिलती है। इस युग में लखनऊ का आध्यमिक विकास हुआ यहाँ अनेक महलों, मकबरों मस्जिद, दरगाहो पुल व सड़को आदि का निर्माण से जहाँ एक ओर स्थापत्य कला का विकास हुआ, वही, मजदूरों श्रमिकों को रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए। अन्य क्षेत्रों में भी विभिन्न इमारतों का निर्माण करवाया गया।

इस काल में अवध में संगीत, नृत्य व नाट्यकला भी उन्नति पर थी। भक्ति तथा सूफी आंदोलन के फलस्वरूप इन कलाओं मे अभिवृद्वि हुई और लोकप्रियता प्राप्त हुई। इस समय अनेक राग रागियों, तथा इनके साथ वाद्यों आदि का प्रयोग किया जाने लगा था। विशेष अवसरों पर आयोजित होने वाले समारोह और महफिलों मे नृत्य संगीत का आयोजन किया जाता था। इसकी लोकप्रियता जन साधारण के बीच भी बढ़ रही थी। मुगलकाल के आरम्भ में ध्रुपद गायन शैली तथा वीणा वादन का अधिक प्रचार था। बाद के युगों में ध्रुपद

गायन शैली का प्रचार कम होने लगा और समयांतर में ध्रुपद का स्थान ख्याल गायन शैली ने ले लिया था। ख्याल गायकी भी ध्रुपद गायन शैली पर ही आधारित थी। परन्तु इनमें लचीलापन व तानों की तैयारी के कारण ध्रुपद शैली वर हावी होता चला गया और एक समय ऐसा आया कि ख्याल गायन शैली ही प्रमुख शैली के रूप में मानी जाने लगी और यह अब भी प्रचलित है। इसके साथ ही गजल तथा कव्वाली गायन शैली को भी लोकप्रियता प्राप्त हुई। जिसके फलस्वरूप शेर-ओ-शायरी तथा राग रागनियों की पहचान व लोक प्रियता जनसाधारण में बढ़ी। इस काल में नृत्य कला के क्षेत्र में कत्थक नृत्य कला की काफी उन्नति हुई। नाट्यकला के अंतर्गत स्वांग, कठपुतली, बहुरूपियें ,रामलीला तथा कृष्णलीला आदि जन-साधारण में अत्यंत्र लोकप्रिय थे। विभिन्न समारोहो, उत्सवों त्यौहारों आदि में इसका आयोजन किया जाता था।

इस प्रकार मुगल काल में सूबा अवध का सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। यह मुगल सूबों में से एक विशिष्ट सूबा रहा। अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के लिए मुगलकाल के इतिहास में सूबा अवध महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

परिशिष्ट (क)

सूबा अवध के आर्थिक जीवन से सम्बंधित आँकड़े

आर्थिक दृष्टि से सूबा अवध मुगल साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण भू-भाग था। यह सूबा कृषि प्रधान था। यहाँ कृषि आत्यधिक विकसित अवस्था में थी किन्तु सूबे के सभी भू-भाग मे स्थिति एक समान न थी। सरकार गोरखपुर मे वनों की अधिकता के कारण कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल सर्वाधिक कम था। अकबर के शासन काल के प्रारम्भ में सरकार लखनऊ में सबसे अधिक भूमि पर कृषि होती थी। मुगल काल मे सूबा अवध की कृषि का अत्यधिक विकास हुआ जिसमें खैराबाद की स्थिति सर्वोच्च थीं। इस सूबे में रबी की २१ फसलें तथा खरीफ की २६ फसलें अर्थात् कुल मिलाकर लगभग ५० किस्म की फसलें पैदा की जाती थी[1]। किन्तु फसलों का उत्पादन सभी भू-भागों मे एक समान न था। यहाँरबी की फसल की तुलना में खरीफ की फसल का अच्छा उत्पादन होता था। रबी की फसल के लिये दस्तूर अवध और खरौसा सबसे कम उपजाऊ भू-भाग था और दस्तूर इब्राहिमबाद एवं किशनी सबसे अधिक उपजाऊ भू–भाग था। इसी प्रकार खरीफ की फसलों के लिये सबसे कम उपजाऊ भू-भाग दस्तूर बहराइच और गोरखपुर तथा सबसे अधिक उपजाऊ भू-भाग दस्तूर अवध और इब्राहिमाबाद था। सूबा अवध की कृषि प्रणाली में कोई नवीनता न थी बल्कि यहाँ भी परम्परागत पद्वति पर हल-बैल द्वारा खेती होती थी। सिचाई के लिये कृषक वर्षा, तलाब तथा कुंएं के पानी पर निर्भर करता था। कृषि व्यवस्था के दृष्टिकोण से अकबर काल मे सूबा अवध १२ दस्तूरों (राजस्व मंडलो) में विभाजित था जो तालिका सं०-१ में देखा जा सकता है। जो आईन-ए-अकबरी में उद्धृत है।

---

[1] अबुल फजल - आईन-ए-अकबारी, भाग-दो, पृ०८२- ८४।

तालिका सं० १

क्रम सं०	सरकार का नाम	दस्तूर का नाम	स्रोत
१.	अवध	हवेली अवध	अबुल फजल, भाग २, पृ० १००
२.	अवध	इब्राहिमाबाद	वही, पृ० १००
३.	अवध	किशनी	वही, पृ० १००
४.	बहराइच	हवेली बहराइच	वही, पृ० १००
५.	बहराइच	फीरोजाबाद	वही, पृ० १००
६.	बहराइच	खरौसा	वही, पृ० १००
७.	खैराबाद	हवेली खैराबाद	वही, पृ० १००
८.	खैराबाद	भखारा	वही, पृ० १००
९.	खैराबाद	पाली	वही, पृ० १००
१०.	गोरखपुर	हवेली गोरखपुर	वही, पृ० १००
११.	लखनऊ	हवेली लखनऊ	वही, पृ० १००-१०१
१२.	लखनऊ	अनाम	वही, पृ० १०१

१५६४ ई० में आईन-ए-अकबरी के अनुसार सूबा अवध मे कृषि योग्य भूमि १०१,७११,८० बीघा एक (एक करोड़ एक लाख एकहत्तर हजार एक सौ अस्सी बीघा)[1] थी।

प्रत्येक सरकार की कृषि योग्य भूमि आईन-ए-अकबरी के आधार पर निम्नवत है।

अवध सरकार – अवध सरकार की कुल कृषि योग्य भूमि २७६६२०६ बीघा और बिस्वा थी[2]।

तालिका सं० २

अवध सरकार की कृषि योग्य भूमि

नाम महाल	कृषि योग्य भूमि बीघा और बिस्वा में		स्रोत
हवेली के साथ अवध	३८,६४६	१७	आईन-ए-अकबरी, भाग-२ पृ० १८४
अम्मोढ़ा	२,८२,०३७	००	वही, पृ० १८४
इब्राहिमाबाद	१६,३३८	०८	वही, पृ० १८४
अनहोना	७४,०६०	००	वही, पृ० १८५
बेलहरी	१५,८५६	००	वही, पृ० १८५
पच्छमराठ	२,८६,०८५	००	वही, पृ० १८५
बसोढी	३१,१८८	००	वही, पृ० १८५

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२ पृ० १८४

2 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२ पृ० १८६

थाना भदाँव	८,७०३	०२	वही, पृ० १८५
बकथा	४४,४०१	००	वही, पृ० १८५
दरियाबाद	४,८७,०१४	००	वही, पृ० १८५
रूदौली	१३,५१,५३५	००	वही, पृ० १८५
सीलक	५,७१,०७१	००	वही, पृ० १८५
सुल्तानपुर	७५,६०३	००	वही, पृ० १८५
सातनपुर	८०,१५४	००	वही, पृ० १८५
सुबेहा	१,०४,७८०	००	वही, पृ० १८५
सर्वापाली	५८,१७०	००	वही, पृ० १८५
सतरिख	३७,०४१	००	वही, पृ० १८५
गुवारचा	७६,१५८	००	वही, पृ० १८५
किशनी	२५,६७४	००	वही, पृ० १८५
मंगलसी	१,१६,४०१	००	वही, पृ० १८५
नैपुर	५,६६७	००	वही, पृ० १८५

गोरखपुर सरकार – गोरखपुर सरकार की कुल कृषि योग्य भूमि २,४४ २८३ बीघा और बिस्वा थी[1]।

तालिका सं० ३

गोरखपुर सरकार की कृषि योग्य भूमि

नाम महाल	कृषि योग्य भूमि बीघा और बिस्वा		स्रोत
उतरौल	३२,०५२	००	आईन-ए-अकबरी,भाग-२ पृ० १८६
उनवल	४,११४	१७	वही, पृष्ठ १८६
बिनायकपुर	१३,८३७	०७	वही, पृष्ठ १८६
बाभनपारा	६,६८८	००	वही, पृष्ठ १८६
भौवापार	३,१०५	१५	वही, पृष्ठ १८६
तेलपुर	६,००५	१७	वही, पृष्ठ १८६
चिल्लूपार	६,५३६	१४	वही, पृष्ठ १८६
धुरियापार	३१ ३५७	१६	वही, पृष्ठ १८६
देवापार, कोतला (२महाल)	१६,१६४	१७	वही, पृष्ठ १८६
रिहली(ख्दौली)	३३,१८३	१६	वही, पृष्ठ १८६
रसूलपुर, घोसी (२महाल)	४,२००	००	वही, पृष्ठ १८६
रामगढ़,गौरी (२महाल)	१०,७६२	००	वही, पृष्ठ १८६

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८७

हवेली के साथ गोरखपुर	१२,६५६ ०८	वही, पृष्ठ १८६
कटेहला	६०० १२	वही, पृष्ठ १८६
रहलापार	१६,०१२ ००	वही, पृष्ठ १८६
मझौली	२,५२३ ००	वही, पृष्ठ १८६
मंडवा	१,६०६ १६	वही, पृष्ठ १८६
मंडला	१,२५२ ०६	वही, पृष्ठ १८६
मगहर, रतनपुर(२महल)	२६,०६२ ००	वही, पृष्ठ १८६

बहराइच सरकार – बहराइच सरकार की कुल कृषि योग्य भूमि १,८२ ३, ४३५ बीघा और बिस्वा थी[1]।

तालिका सं०- ४

बहराइच सरकार की कृषि योग्य भूमि

नाम महाल	**कृषि योग्य भूमि बीघा और बिस्वा में**	**स्रोत**
हवेली के साथ बहराइच	६,६७,२३१ ००	आईन-ए- अकबरी, भाग-दो पृ० १८७
बहरा	६२६ ००	वही, पृ० १८७
हुसामपुर	१,५७,४१५ ००	वही, पृ० १८७
दांगदून	८४,४३६ ००	वही, पृ० १८७

1 अबुल फज़ल- आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८७

रजहट	४,०६४ ११	वही, पृ० १८७
सुझौली	१,२४ ८१० ००	वही, पृ० १८७
सुल्तानपुर	५८,१४६ ००	वही, पृ० १८७
फखरपुर	१,६१,७२० ००	वही, पृ० १८७
फीरोजाबाद	१,०८,६०१ ००	वही, पृ० १८७
खरोसा	२८,४८६ १७	वही, पृ० १८७
नौगढ़	४,१७,६०१ ००	वही, पृ० १८७

खैराबाद सरकार – खैराबाद सरकार की कुल कृषि योग्य भूमि १,६८७,७०० बीघा और बिस्वा था[1]।

तालिका सं० ५

खैराबाद सरकार की कृषि योग्य भूमि

नाम महाल	**कृषि योग्य भूमि बीघा और बिस्वा में**	**स्रोत**
बरोर अंजन	७६,६७० ०६	आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० १८८
बसवा	१,३५,११६ ००	वही, पृ० १८८
पाली	१,४४,६२७ ००	वही, पृ० १८८
बावन	५६,१५६ ००	वही, पृ० १८८
बसरा	६०,०६३ ००	वही, पृ० १८८

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२ पृ० १८७

भुखारा	८,६७१ १८	वही, पृ० १८८
बसारा	२१,७४० ००	वही, पृ० १८८
पीला	६८१ १४	वही, पृ० १८८
छतियापुर	६४,७०६ ००	वही, पृ० १८८
हवेली के साथ खैदाबाद (२महाल)	१,५६,०७२ ०२	वही, पृ० १८८
सांडी	२,११,८०४ ००	वही, पृ० १८८
सरा	६८,८३२ ००	वही, पृ० १८८
सदरपुर	१,२०,६६२ ००	वही, पृ० १८८
गोपामऊ	१,०७,३६८ ०५	वही, पृ० १८८
खीरी	२,६०,१६८ ००	वही, पृ० १८८
खैरीगढ़	४३, ०५२ ०७	वही, पृ० १८८
खरखेला	१५,८१५ १६	वही, पृ० १८८
खनकतमऊ	३,०५८ ११	वही, पृ० १८८
लाहारपुर	२,०८,२२८ ००	वही, पृ० १८८
मछरहट्टा	७१,०६६ ०१	वही, पृ० १८८
नीमखार	८५,७७५ १८	वही, पृ० १८८
हरगरांव	६६,६५२ ००	वही, पृ० १८८

लखनऊ सरकार – लखनऊ सरकार की कुल कृषि योग्यभूमि ३,३०७,४२६ बीघा और बिस्वा थी[1]।

तालिका सं० ६

लखनऊ सरकार की कृषि योग्य भूमि

नाम महाल	कृषि योग्य भूमि बीघा और बिस्वा में	स्रोत
अमेठी	१,१७,३८१ ००	आईन -ए- अकबरी, भाग-दो पृ० १८८
ओनाम	६१,०४५ ००	वही, पृ० १८८
इसौली	१६,७०,०६३ ००	वही, पृ० १८८
असीवन	५७,७२६ ००	वही, पृ० १८८
असोहा	२५,०२७ ००	वही, पृ० १८८
ऊँचगांव	३३,११२ ००	वही, पृ० १८८
बंगरमऊ	२,४२,२६१ ००	वही, पृ० १८८
बिजनौर	८०,५८१ ००	वही, पृ० १८८
बारी	८०,५६० ००	वही, पृ० १८८
बिलगाँव	१,६२,८०० ००	वही, पृ० १८८
भरीमऊ	१६,४०६ ००	वही, पृ० १८८
पँगवान	३४,७२७ ००	वही, पृ० १८८
बेथोली	८,७३६ ००	वही, पृ० १८८

---

1 अबुल फजलआईन-ए-अकबरी, भाग-२ पृ० १८८

पनहन	८,६४५	००	वही, पृ० १८६
परसंदन	६,१११	००	वही, पृ० १८६
पाटन	५,६२१	००	वही, पृ० १८६
बाराशकोर	६,३५७	००	वही, पृ० १८६
जहलोतर	६१, ७७४	००	वही, पृ० १८६
देवी	८८,६३७	००	वही, पृ० १८६
देवरख	१३, ३४०	०६	वही, पृ० १८६
ददरा	१०, ७६६	००	वही, पृ० १८६
रनबनपुर	७५, ४६०	००	वही, पृ० १८६
रामकोट	६,७६०	००	वही, पृ० १८६
संडीला	३,६३,७००	००	वही, पृ० १८६
साईपुर	३६,०८३	१५	वही, पृ० १८६
सरोसी	२,५७१	००	वही, पृ० १८६
सातनपुर	६०,६००	००	वही, पृ० १८६
सहाली	१३,०६५	००	वही, पृ० १८६
सीधोर	३५,७६४	००	वही, पृ० १८६
सिंघपुर	६३,७१	०४	वही, पृ० १८६
सन्डी	७,८५६	०६	वही, पृ० १८६
सरोन	५,५७६	००	वही, पृ० १८६

फतेहपुर	१,६८,३०० 00	वही, पृ० १८६
फतेहपुरचौरासी	१,०५,६५२ 00	वही, पृ० १८६
गढअम्भट्टी (अमेठी)	४७,३५६ 00	वही, पृ० १८६
कुर्सी	८०,८१७ 00	वही, पृ० १८६
काकोरी	३१,५८४ 00	वही, पृ० १८६
खंजरा	२२,३०० 00	वही, पृ० १८६
घाटमपुरी	२७,३६० 00	वही, पृ० १८६
कछन्दी	२२,०६६ 00	वही, पृ० १६०
गोरन्दा	४,८०३ 00	वही, पृ० १६०
कोंभी	५,६४० 00	वही, पृ० १६०
हवेली के साथ लखनऊ	६१,७२२ 00	वही, पृ० १६०
लश्कर	१६,८६४ 00	वही, पृ० १६०
मलिहाबाद	१,६६,२६६ 00	वही, पृ० १६०
मलावा	८३,०२२ 00	वही, पृ० १६०
मोहान	६०,६६० 00	वही, पृ० १६०
मोरॉव	६८,८४७ 00	वही, पृ० १६०
मडियाँव	४६,४२२ 00	वही, पृ० १६०
महोना	५०,८६५ 00	वही, पृ० १६०

मनवी	२६,४५५	००	वही, पृ० १६०
मकराएद	१७,६५६	००	वही, पृ० १६०
हड़हा	१,६३,२२६	००	वही, पृ० १६०
हरपोई	११,७३४	००	वही, पृ० १६०
हनहार	१३,१०६	००	वही, पृ० १६०

मुगल कालीन सूबा अवध में ५० किस्म की फसलें पैदा की जाती थी जिनमें २१ रबी की २६ खरीफ की फसल थी[1]।

खाद्य फसलें

रबी की फसल –

(क) गेंहू सामान्यतः पूरे सूबे में पैदा किया जाता था। किन्तु अबुल फजल के विवरण में रबी की फसल के लिये केवल छः दस्तूरो का राजस्व सम्बंधी आंकडा प्राप्त होता है[2]। दस्तूर क्षेत्र इब्राहिमाबाद में गेंहू की उपज सबसे अच्छी होती थी।

(ख) कुरधान[3] की पैदावार दस्तूर इब्राहिमाबाद एवम् किशनी में अच्छी होती थी। फिरोजाबाद में इसकी पैदावार कम थी।

(ग) जौ[1] की पैदावार दस्तूर इब्राहिमाबाद में सबसे अच्छा था तथा फीरोजाबाद दस्तूर में इसकी पैदावार सबसे कम थी।

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-२, पृ० ८२-८४

2 ये छ' दस्तूर क्रमशः परगना हवेली अवध इब्राहिमाबाद, किशनी, बहराइच, फिरोजाबाद, खरौसा है। वही, पृ० १०१

3 वही, पृ० १०१

(घ) सरसों[2] की खेती इब्राहिमाबाद में सबसे अच्छी होती थीं। हवेली अवध दस्तूर में भी इसकी पैदावार अच्छी थी।

(ङ) अलसी[3] का उत्पादन इब्राहिमाबाद दस्तूर सर्वोपरि था। इसका उत्पादन अन्य दस्तूर क्षेत्रों की तुलना में फीरोजाबाद दस्तूर में कम था।

खरीफ की फसल –

(च) पान[4] की सबसे अच्छी खेती इब्राहिमाबाद दस्तूर में होता था। किशनी और हवेली अवध दस्तूर में भी इसका अच्छा उत्पादन किया जाता था। तथा बहराइच फिरोजाबाद, खरौसा, में इसका उत्पादन एक समान था।

(छ) साधारण गन्ना[5] का उत्पादन परगना हवेली अवध तथा भरवारा दस्तूर में सबसे ज्यादा होता था। उत्पादन की दृष्टि से फीरोजाबाद तथा हवेली खैराबाद दस्तूर द्वितीय स्थान पर था। बहराइच, खरौसा तथा हवेली गोरखपुर दस्तूर में भी साधारण गन्ना का उत्पादन होता था।

(ज) मूंग[6] की खेती प्रायः सभी दस्तूरों में अच्छी होती थी। किन्तु किशनी तथा इब्राहिमाबाद दस्तूर में सबसे अच्छा उत्पादन होता था।

(झ) तिल[7] का उत्पादन हवेली खैराबाद दस्तूर मे सबसे ज्यादा होता था। प्रायः सभी दस्तूरों में इसकी खेती की जाती थी।

---

1 वही, पृ० १०१
2 वही, पृ० १०१
3 अबुल फजल आईन -ए- अकबरी, भाग-दो, पृ० १०१
4 वही, पूर्वोद्धृत, भाग-दो, पृ० १०२
5 वही, पृ० १०२
6 वही, पृ० १०२
7 वही, पृ० १०१

(अ) ज्वार (बाजरा)[1] की खेती दस्तूर क्षेत्र पाली, हवेली गोरखपुर, लखनऊ, खरौसा, बहराइच, इब्राहिमाबाद में अच्छी होती थी। तथा सभी दस्तूरों में इसकी पैदावार होती थी।

नकदी फसले –

रबी की फसले

(क) विदेशी खरबूजा[2] का उत्पादन दोनो फसलों (रबी एवं खरीफ)में होता था। उत्पादन की दृष्टि से सूबा अवध में इब्राहिमाबाद दस्तूर प्रथम श्रेणी मे था। इसके बाद क्रमशः खरौसा ,किशनी ,हवेली अवध, फिरोजाबाद तथा बहराइच था।

(ख) पोस्ता[3] की खेती औषधि आदि के लिये किया जातां था। इसका सबसे अच्छा उत्पादन किशनी दस्तूर में होता था। तथा हवेली अवध, बहराइच, फीरोजाबाद, खरौसा दस्तूरों में इसका उपज एक समान था।

(ग) प्याज[4] की खेती दस्तूर क्षेत्र हवेली अवध, इब्राहिमाबाद, किशनी, बहराइच, फीरोजाबाद, खरौसा में अच्छी होती थी। तथा इन छः दस्तूरों में इसकी पैदावार लगभग एक समान थी। इब्राहिमाबाद मे इसकी पैदावार कुछ ज्यादा थी।

---

1 वही, पृ० १०२

2 अबुल फजल आईन-ए- अकबरी भाग-दो पृ० १०१

3 वही, पृ० १०१

4 वही, पृ०१०१

(घ) सब्जी[1] की खेती भी इन छः दस्तूरों में अच्छी मात्रा में किया जाता था तथा कृषक सब्जी की फसल पर भी राजस्व दिया करते थे। दस्तूर क्षेत्र इब्राहिमाबाद में सब्जी का उत्पादन अधिक था।

खरीफ की फसल –

(ड) गन्ना (पौडा)[2] अबुल फजल के गन्ना के किस्मों की उस समय में तीन श्रेणियाँ बतायी है। ये है– पौडा, काला एवं साधारण गन्ना। अवध सूबे के सभी दूस्तरों मे इन तीनों किस्मों के गन्नें का उत्पादन होता था । पौड़ा एक अच्छी और मंहगी फसल थी जिसकी कीमत गेहूं के फसल से दो गुनी थी। गन्नें से गुड़ सांड शक्कर बनाया जाता था। तथा पेय पदार्थो के निर्माण में भी गन्नें का प्रयोग किया जाता था। गोरखपुर का क्षेत्र पौड़ा गन्ना के लिये भारत मे प्रथम स्थान रखता था।

(च) नील[3] की खेती भी सूबा अवध में की जाती थी। इसका उत्पादन पूरे छः दस्तूरो हवेली अवध, इब्राहिमाबाद, किशनी, बहराइच, खरौसा, फिरोजाबाद, में लगभग एक समान था।

(छ) सिंघाडा[4] का भी अच्छा उत्पादन होता था तथा इससे भी शासन को अच्छा राजस्व प्राप्त होता था। इसके उत्पादन का केवल छः दस्तूरों में उल्लेख मिलता है।

(ज) कपास[1] की खेती पूरे सूबे में होती थी। दस्तूर क्षेत्र इब्राहिमाबाद, पाली, लखनऊ, अनाम में इसका अच्छा उत्पादन किया जाता था।

---

1 वही, पृ० १०१

2 वही, पृ० १०२

3 अबुल फजल आईन–ए–अक़बरी, भाग-दो, पृ० १०२

4 वही, पृ० १०२

(झ) कालाधान (शाली मुश्की)[2] की फसल पूरे सूबे में बहुतायत से होती थी तथा अवध सूबे के उत्तरी जिलों में सुखदास, मधुकर एवं झानवार धान अधिक उत्पादित किया जाता था जो धान की उच्च किस्में थी तथा यह सफेदी, कोमलता, सुगन्ध और स्वाद में अनुपम होता था[3]।

इस प्रकार खाद्य फसलें कृषि उत्पादन की महत्त्वपूर्ण भाग थे। परन्तु दूसरी और नकदी फसलें भी अपना महत्त्व रखती थीं जिनमें कपास, नील, पोस्ता, जैसी फसलो का उत्पादन शामिल है।

सूबा अवध में भी भू-राजस्व का निर्धारण एवं सग्रह मुगल साम्राज्य के अन्य सूबो की ही भांति होता था। यहाँ के अधिकांश भू-भागों में जब्त पद्वति प्रचलित थी[4]। केवल गोरखपुर सरकार के कुछ भू-भागों में मुक्ताइ पद्धति तथा सरकार बहराइच के कुछ भू–भागों में नकदी एवं कनकूत की प्रथांए प्रचलित थी[5]। इस काल में साम्राज्य के विभिन्न भागों में भू–राजस्व की दर समान न थी। यह सत्य है कि अकबर ने उपज का १/३ भाग भू-राजस्व की दर निर्धारित की किन्तु गुजरात मे उपज का १/२ तथा अजमेर सूबा में उपज का १/७ या १/८ भाग भू राजस्व के रूप में लिया जाता था[6]। सूबा अवध मे भू-राजस्व के

---

1 वही, पृ०१०२

2 वही, पृ०१०२

3 वही, पृ० १८१

4 कुरैशी, आई०एच०- एसेसमेन्ट एण्ड कलेक्शन आफ दि लैड रेवन्यू अंडर अकबर, बाल्यूम १४ १९३८, पृ० ७१६

5 अबुल फजल आईन–ए–अकबरी, भाग-दो १८४-१९० परमात्मा, शरण दि प्रोविशियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, पृ० २९०-२९४

6 श्रीवास्तव हरि शंकर, मुगलशासन प्रणाली, पृ० १५५

भुगतान की नगद पद्धति प्रचलित थी[1]। जबकि अपवाद के रूप में नगद के स्थान पर अनाज के रूप में भू-राजस्व का भुगतान की पुरानी पद्धति भी प्रचलित थी। अकबरी में अवध सूबे का राजस्व २०,१७,५८,१७२ दाम दिखाया गया है[2]। जिसका उत्तरोतर विकास होता रहा। जहाँगीर के शासन काल में यह बढ़कर २२,६८,६५, ६१४[3] दाम, शाहजहां के शासनकाल में २४, ८२, २४,००० दाम[4] और औरगंजेब के समय ३२, ००,७२, १६३ दाम हो गई थी[5]।

आईन ए अकबरी में प्रदत्त आंकड़ों के द्वारा यह ज्ञात होता है कि सूबे की कुल जमा का ७५ प्रतिशत से भी अधिक भाग विभिन्न राजपूत जातियों द्वारा देय था। इनमें प्रमुख जातियों की स्थिति तालिका -७ में दी गयी है। सूबा के अधिकांश भागों में राजपूत जातियों के लोग ही जमीदार थें प्रत्येक महलों (परगनों) के जमींदारं केसम्बन्ध में आईन–ए–अकबरी में विवरण दिया गया है। जो तालिका न- ८ में दिया गया है।

तालिका न०-७

बैस	१८-५० प्रतिशत
बच्छल	५.२२ प्रतिशत
गहलोत	५.११ प्रतिशत

---

1 अबुलफजल पूर्वोद्धृत पृ० १८४-१६० परमात्मा शरण, पूर्वोद्धृत पृ० २६४

2 अबुल फजल आईन अकबरी, भाग-दो पृ० १८४- १८८

3 मोतमद खां इकनालनामा-ए-जहाँगीरी, कलकत्ता १८७० ई०

4 ब्रजरत्नदास – मुगल सम्राट शाहजहां (हिंदी संस्करण) लखनऊ, पृ० ३०६

5 इलियट, एच०एम०एन० डाउसन,जे०-भारत का इतिहास, भाग-७, हिन्दी अनुवाद मथुरालाल शर्मा, १६७२, पृ० ११

बछगोती	४.७३ प्रतिशत
किसन	४.१३ प्रतिशत
अन्य	३.४२ प्रतिशत

अविभाजित जातियाँ

ब्राह्मण	६.४२ प्रतिशत
मुस्लिम	१०.८६ प्रतिशत
शेष छोटी एवं अज्ञात जातियों द्वारा देय धन	१५. ६७ प्रतिशत

तालिका नं० ८

संख्या	सरकार का नाम	महाल का नाम	जमींदार की जातियां	स्रोत
१.	अवध	अवध हवेली	ब्राह्मण, कुनबी	अबुल फजल-आईन अकबरी भाग दो, पृ० १८४
२.	अवध	अमोढा	बैस	वही, पृ० १८४
३.	अवध	इब्राहिमाबाद	अन्सारी	वही, पृ० १८४
४.	अवध	अनहोना	चौहान (धर्मपरिवर्तित मुसलमान)	वही, पृ० १८४
५.	अवध	पच्छम राठ	राजपूत गहलौत बाछल	वही, पृ० १८५
६.	अवध	बेलहरी	बचगोती	वही, पृ० १८५

७.	अवध	बसोढ़ी	बचगोती	वही, पृ० १८५
८.	अवध	थाना भदांव	बचगोती	वही, पृ० १८५
६.	अवध	बकथा	बचगोती	वही, पृ० १८५
१०.	अवध	दरियाबाद	रैकवार, चौहान, राजपूत	वही, पृ० १८५
११.	अवध	रूदौली	राजपूत, चौहान, बैस	वही, पृ० १८५
१२.	अवध	सीलक	राजपूत,रैकवार	वही, पृ० १८५
१३.	अवध	सुल्तानपुर	बचगोती,बैस, नए मुसलमान	वही, पृ० १८५
१४.	अवध	सातनपुर	बचगोती, जोशी	वही, पृ० १८५
१५.	अवध	सुबेहा	राजपूत	वही, पृ० १८५
१६.	अवध	सर्वापाली	बचगोती	वही, पृ० १८५
१७.	अवध	सतरिख	अन्सारी	वही, पृ० १८५
१८.	अवध	गुवारचा	रैकवार	वही, पृ० १८५
१६.	अवध	किशनी	राजपूत	वही, पृ० १८५
२०.	अवध	मंगलसी	सोमबंशी	वही, पृ० १८५
२१	अवध	नैपुर	विभिन्न जातियां	वही, पृ० १८५
२२.	गोरखपुर	उतरौला	अफगान-ए-मियां	वही, पृ० १८६
२३.	गोरखपुर	उनवल	बिसेन	वही, पृ० १८६

२४.	गोरखपुर	बिनायकपुर	राजपूत सूर्यबंशी	वही, पृ० १८६
२५.	गोरखपुर	बाभनपारा	राजपूत	वही, पृ० १८६
२६.	गोरखपुर	धौवापारा	बिसेन	वही, पृ० १८६
२७.	गोरखपुर	तेलपुर	राजपूत सूर्यबंशी	वही, पृ० १८६
२८.	गोरखपुर	चिल्लूपार	राजपूत	वही, पृ० १८६
२६.	गोरखपुर	धुरियापार	बिसेन	वही, पृ० १८६
३०.	गोरखपुर	देवापाराकोतला	बिसेन	वही, पृ० १८६
३१.	गोरखपुर	रिहली(रूदौली)	राजपूत बिसेन	वही, पृ० १८६
३२.	गोरखपुर	रसूलपुर घोसी	सोमबंशी	वही, पृ० १८६
३३.	गोरखपुर	रामगढ,गौरी	सोमबंशी	वही, पृ० १८६
३४.	गोरखपुर	हवेली गोरखपु	सूर्यबंशी	वही, पृ० १८६
३५.	गोरखपुर	कटेहला	बंशी	वही, पृ० १८६
३६.	गोरखपुर	रहलापार (रिहला)	बिसेन	वही, पृ० १८६
३७.	गोरखपुर	मझौली	बिसेन	वही, पृ० १८६
३८.	गोरखपुर	मंडवा	सोमबंशी	वही, पृ० १८६
३६.	गोरखपुर	मडलां	सोमबंशी	वही, पृ० १८६
४०.	गोरखपुर	मगहर, और रतनपुर	बिसेन, बैस	वही, पृ० १८६

४१.	बहराइच	हवेली बहराइच	राजपूत	वही, पृ० १८७
४२.	बहराइच	बहरा	कहना(खेर)	वही, पृ० १८७
४३.	बहराइच	हुसानपुर	रैकवार बिसेन	वही, पृ० १८७
४४.	बहराइच	दागपुर	जनवार	वही, पृ० १८७
४५.	बहराइच	रजहट	जनवार	वही, पृ० १८७
४६.	बहराइच	सुझौली	राजपूत, जनवार	वही, पृ० १८७
४७.	बहराइच	सुल्तानपुर	जनवार	वही, पृ० १८७
४८.	बहराइच	फखरपुर	रैकवार	वही, पृ० १८७
४९.	बहराइच	फीरोजाबाद	राजपूत,तोमर	वही, पृ० १८७
५०.	बहराइच	नौगढ़	विभिन्न जातियां	वही, पृ० १८७
५१	हराइच	खरौसा	बैस	वही, पृ० १८७
५२	खैराबाद	बरोर अंजन	राजपूत, ब्राह्मण	वही, पृ० १८७
५३.	खैराबाद	बसवा	राजपूत,बाछल	वही, पृ० १८७
५४.	खैराबाद	पाली	आसनीन	वही, पृ० १८७
५५	खैराबाद	बावन	आसनीन	वही, पृ० १८७
५६	खैराबाद	बसरा	विभिन्न जातियां	वही, पृ० १८७
५७.	खैराबाद	भुखारा	अहनीन	वही, पृ० १८७
५८.	खैराबाद	बसारा	बाछल	वही, पृ० १८७
५९.	खैराबाद	पीला	असनीन	वही, पृ० १८७

६०.	खैराबाद	छतियापुर	विभिन्न जातियां	वही, पृ० १८८
६१.	खैराबाद	हवेली खैराबाद	ब्राह्मण	वही, पृ० १८८
६२.	खैराबाद	साडी	सोमबंशी	वही, पृ० १८८
६३.	खैराबाद	सरा	चौहान	वही, पृ० १८८
६४.	खैराबाद	सदरपुर	जनवार	वही, पृ० १८८
६५.	खैराबाद	गोपामऊ	राजपूत कुवार	वही, पृ० १८८
६६.	खैराबाद	खेरी	बिसेन, राजपूत,जनवार	वही, पृ० १८८
६७.	खैराबाद	खैरीगढ	बैस,बिसेन,बाछल, कहना	वही, पृ० १८८
६८.	खैराबाद	खरखेला	असीन	वही, पृ० १८८
६९.	खैराबाद	खानकतमऊ	विभिन्न जातियां	वही, पृ० १८८
७०.	खैराबाद	लाहरपुर	ब्राह्मण	वही, पृ० १८८
७१.	खैराबाद	मछरहटा	राजपूत, बाछल	वही, पृ० १८८
७२.	खैराबाद	नीमखार	अहीर	वही, पृ० १८८
७३.	खैराबाद	हरगंगा	–	वही, पृ० १८८
७४.	लखनऊ	अमेठी	अन्सारी	वही, पृ० १८८
७५.	लखनऊ	ओनाम	सैयद	वही, पृ० १८८
७६.	लखनऊ	इसौली	राजपूत,बचगोती	वही, पृ० १८८

७७.	लखनऊ	असीवन	बैस, चन्देल	वही, पृ० १८६
७८.	लखनऊ	असोहा	आहनीन	वही, पृ० १८६
७६.	लखनऊ	ऊँचगांव	बैस	वही, पृ० १८६
८०.	लखनऊ	बिलगांव	सैयद,बैस	वही, पृ० १८६
८१.	लखनऊ	बंगरमऊ	राजपू,गहलौ	वही, पृ० १८६
८२.	लखनऊ	बिजलौर (बिजनौर)	चौहान	वही, पृ० १८६
८३.	लखनऊ	बारी	बैस	वही, पृ० १८६
८४.	लखनऊ	भरीमऊ	बैस	वही, पृ० १८६
८५.	लखनऊ	पैँगवान	बैस	वही, पृ० १८६
८६.	लखनऊ	बेथोली	राजपूत,जाट	वही, पृ० १८६
८७.	लखनऊ	पनहन	बैस	वही, पृ० १८६
८८.	लखनऊ	परसन्दन	राजपूत, कम्भी	वही, पृ० १८६
८६.	लखनऊ	पाटन	ब्राह्मण, कुनबी	वही, पृ० १८६
६०	लखनऊ	बारा शंकोर	ब्राह्मण	वही, पृ० १८६
६१.	लखनऊ	जहलोतर	चन्देल	वही, पृ० १८६
६२.	लखनऊ	देवी	राजपूत	वही, पृ० १८६
६३.	लखनऊ	देवरख	बैस	वही, पृ० १८६
६४.	लखनऊ	ददरा	राजपूत	वही, पृ० १८६

९५.	लखनऊ	रनबपुर	बैस, ब्राह्मण	वही, पृ० १८६
९६.	लखनऊ	रामकोट	राजपूत	वही, पृ० १८६
९७.	लखनऊ	सडीला	गहलौत, बाछल	वही, पृ० १८६
९८.	लखनऊ	साईपुर	राजपूत, चन्देल	वही, पृ० १८६
९९.	लखनऊ	सरोसी	चन्देल,राजपूत	वही, पृ० १८६
१००.	लखनऊ	सातनपुर	बैस, ब्राह्मण	वही, पृ० १८६
१०१	लखनऊ	सहाली	राजपूत	वही, पृ० १८६
१०२.	लखनऊ	सीधोर	अफगान,राजपूत	वही, पृ० १८६
१०३.	लखनऊ	सिधपुर	बैस	वही, पृ० १८६
१०४.	लखनऊ	सन्डी	राजपूत	वही, पृ० १८६
१०५.	लखनऊ	सरोन	राजपूत, शेखजादा	वही, पृ० १८६
१०६.	लखनऊ	फतेहपुर	कुनबी, राजपूत	वही, पृ० १८६
१०७.	लखनऊ	फतेहपुरचौरासी	राजपूत, चन्दे	वही, पृ० १८६
१०८.	लखनऊ	गढ अन्भटटी (अमेठी)	राजपूत, ब्राह्मण	वही, पृ० १८६
१०९.	लखनऊ	कुसी	राजपूत	वही, पृ० १८६
११०.	लखनऊ	काकोरी	राजपूत, बिसेन	वही, पृ० १८६
१११	लखनऊ	खँजरा	बैस	वही, पृ० १८६
११२.	लखनऊ	घाटमपुर	ब्राह्मण	वही, पृ० १९०

११३.	लखनऊ	कछन्दाँ	चन्देल	वही, पृ० १६०
११४.	लखनऊ	गोरन्डा	ब्राह्मण	वही, पृ० १६०
११५.	लखनऊ	कोंभी	राजपूत	वही, पृ० १६०
११६.	लखनऊ	हवेली लखनऊ	शेखजादा ब्राह्मण,कायस्थ	वही, पृ० १६०
११७.	लखनऊ	लश्कर	बैस	वही, पृ० १६०
११८.	लखनऊ	मालावा	बैस	वही, पृ० १६०
११६.	लखनऊ	मलीहाबाद	बैस	वही, पृ० १६०
१२०.	लखनऊ	मोहान	राजपूत बैस	वही, पृ० १६०
१२१.	लखनऊ	मोरांव	राजपूत बैस	वही, पृ० १६०
१२२.	लखनऊ	मडियांव	बरकला	वही, पृ० १६०
१२३.	लखनऊ	महोना	राजपूत	वही, पृ० १६०
१२४.	लखनऊ	मनवी	मुसलमान, राजपूत	वही, पृ० १६०
१२५.	लखनऊ	मकराएद	राजपूत, बैस	वही, पृ० १६०
१२६.	लखनऊ	हडहा	बैस	वही, पृ० १६०
१२७.	लखनऊ	हरदोई	ब्राह्मण	वही, पृ० १६०
१२८.	लखनऊ	हनहार	बैस	वही, पृ० १६०

परिशिष्ट (ख)

मुगलकाल में उद्योग एवं व्यापार के अनेक क्षेत्र थें। जैसे- कृषि उत्पादन एवं गैर कृषि उद्योग, जंगल से प्राप्त कच्चे माल पर आधारित उद्योग इत्यादि। इस सदर्भ में सूबा अवध में उद्योग एवम् व्यापार के क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ।

जहां तक कृषि उत्पादन का सम्बध है मुगलकाल मे तथा इससे पूर्व भी कृषि को राज्य की आय का सर्वोच्य स्रोत तथा उद्योग एवं व्यापार का मुख्य आधार स्वीकार किया गया।

सूबा अवध के किसानो का मुख्य व्यवसाय व पेशा कृषि था। लगभग ८० प्रतिशत जनता कृषि कार्य करती थी। कृषि उत्पादन की मुख्य वस्तुए गेहूं, जौ, चावल, बाजरा, चना, दाल, कपास, गन्ना,नील, तिलहन, पोस्ता, सब्जियां तथा फल आदि थी। इनमें नील,गन्ना, तथा कपास क्रमशः नील, चीनी, सूत तथा सूती वस्त्र उद्योग के प्रमुख स्रोत थे।

नील की पैदावार मुगल काल में अवध तथा बहराइच में होती थी[1]। यह सूत या कपड़ा साफ करने के काम में आता था। मुगल काल में नील उद्योग एवं व्यापार काफी विकसित था।

गन्ना उत्पादन पूरे अवध सूबे में अधिक मात्रा में होता था। लेकिन गोरखपुर का क्षेत्र गन्ना उत्पादन में एक विशिष्ट स्थान रखता था[2]। गन्नें का उपयोग गुड़, चीनी, मिश्री, मदिरा, तथा अन्य रसायनों के निर्माण में किया जाता

---

1 अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी, भाग-दो, पृ० १०२

2 वही, पृ० १०२

था। गुड़ से अधिक चीनी तथा चीनी की अपेक्षा मिश्री का मूल्य अधिक होता था। गुड़ निम्न वर्ग तथा चीनी उच्च वर्ग द्वारा अधिक प्रयोग किये जाते थे। मिश्री उच्चवर्ग द्वारा एवं औषधि के लिये प्रयोग में लायी जाती थी। सूबा अवध में गोरखपुर तथा अवध सरकार में चीनी के कारखाने थे तथा सूबा के प्रत्येक गांव मे गुड़ बनते थे।

कपास की खेती पूरे सूबे में होती थी[1]। कपास का उपयोग सूत की कताई एवं वस्त्रों की बुनाई में किया जाता था। कपास की खेती पर सूती वस्त्र उद्योग का भविष्य निर्भर करता है।

पोस्ता की खेती उच्च वर्ग की फसलों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी। मुगलकाल में पोस्ता गन्नें के बराबर ही मूल्यवान था। अवध तथा बहराइच सरकार में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी[2]। तथा इस फसल पर उच्च दर का राजस्व लिया जाता था। सामान्यतः पोस्ता से अफीम तैयार किया जाता था। अफीम का उपयोग उन दिनों औषधि निर्माण एवं मादक द्रव्य के रूप में किया जाता था।

उपरोक्त कृषि आधारित प्रमुख उद्योग एवं व्यापार के अतिरिक्त खाद्या , सब्जियां एवं फल भी अन्तर्देशीय व्यापार के प्रमुख साधन थे। ये वस्तुएं आवश्यकतानुसार विभिन्न स्थानों तक देशी व्यापारियों द्वारा पहुँचायी जाती थी। इस काल में गैर कृषि उद्योग में भी अधिकाधिक वृद्वि हुई।

मुगलकाल में सूबा अवध में सूती वस्त्र सबसे बड़ा उद्योग था। स्थानीय मांग को पूरा करने के की दृष्टि से कपड़े की बुनाई का काम इस सूबे के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में होता था। सूती कपड़ो में लखनऊ का चिकन सुविख्यात

---

1 वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० १०२

2 वही, पूर्वोद्धृत, पृ० १०१

था[1]। तथा लखनऊ के निकट दरियाबाद का दरियाबाद एवं मरकूल नामक कपड़ो की बहुत माग थी[2]। इसके अतिरिक्त खैराबाद और दरियाबाद कमख्वाब छींट और गजी (खद्दर की तरह का सफेद मोटा कपड़ा) के कपड़े का महत्त्वपूर्ण केन्द्रथा[3]। अवध में दरियाबाद और खैराबाद रंगीन छपाई वाले सूती कपड़ो के लिये इतने ज्यादा प्रसिद्व थें कि खुद वे कपड़े ही दरियाबादी और खैराबादी कहे जाने लगे थे[4]। अवध में कपड़ो पर छपाई का अनके तरह का काम होता था। इसमें से सर्वप्रमुख रंगीन कपड़ो के ऊपर सच्चे अथवा बनावटी सोने-चादी के बेलबूटो और पत्तियों के छापे लगाने का काम था। आम तौर पर इस किस्म के कपड़ो का उपयोग पलंग के बिछावनों, चद्दरों, तकियों, रजाइयों, गद्दो और पर्दो के रूप में होता था। इस तरह के छापे वाले कपड़ो के लिये लखनऊ और फरूर्खाबाद विशेष तौर से विख्यात थे[5]। इसके अतिरिक्त तनजेब अथवा चिकन के काम के लिये मलमल-जैसे पतले कपड़ो पर भी तरह-तरह के बेलबूटे छापे जाते थे। फिर रोजमर्रा के इस्तेमाल के लिये उत्पादित साधारण छींट के कपड़ो के अतिरिक्त मेज पर बिछाने के कपड़े (मेजपोश, दस्तरख्वान) में बिछाने जाने वाले कपड़ो और शामियानों के कपड़ो पर भी भड़कीले रंगो के बेलबूटे छापे जाते थे। उस समय शमियानें अत्यंत महत्त्वपूर्ण वस्तु थे जो बादशाहो, नवाबों, उमरा, राजा आदि के द्वारा रहने के

---

1 कुल श्रेष्ठ , एस०एस० - डवलपमेंट आफ, ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अंडरदी मुगल्स ,इलाहाबाद, १९६४ ,पृ० १८८

2 मोरलैण्ड, डब्ल्यू, एच, इंडिया फ्राम अकबर टू औरगंजेब, लंदन, १९२३, पृ० १२७–१२८

3 श्रीवास्तव, ए० एल० अवध के प्रथम दो नवाब ,पृ० २७६

4 वर्मा, हरिश्चन्द्र- मध्यकालीन भारत भाग -दो, पृ० ५१८

5 वही, -पूर्वोद्धृत, पृ० ५१८-१९

उद्देश्य से अथवा शिविरों के रूप में भी खूब इस्तेमाल किये जाते थे। तालिका नं० १ में सूबा अवध के प्रमुख वस्त्रों द्योग केन्द्र को दिखाया गया है।

तालिका सं० १

सूबा अवध के प्रमुख वस्त्रोद्योग केंद्र

क्रम सं०	वस्त्रोद्योग केन्द्र	सरकार का नाम	वस्त्रों के प्रकार	स्रोत
१.	खैराबाद	खैराबाद	छींट का कपड़ा (कैलिको)	इंग्लिश फैक्ट्री इन इण्डिया (१६३७-४१) फास्टर, डब्ल्यू(सं०) पृ० ६३, हबीब, इरफान,एन एटलस, आफ दि मुगल एम्पायर,पृ. ३३
२.	लखनऊ	लखनऊ	छींट का कपड़ा (कैलिको)	इंग्लिश फैक्ट्री इन इण्डिया पृ० ६३ बर्नियर, एफ० ट्रैवल्स इन दि मुगल एम्पायर पृ० २६२
२.	दरियाबाद	अवध	छींट का कपड़ा (कैलिकों)	इंग्लिश फैक्ट्री इन इण्डिया, पृ० १२२,हबीब, इरफान- इन एटलस आफ दि मुगल एम्पायर,पृ०३३
३.	अवध	अवध	मोटा कपड़ा	पेल्सर्ट ,एफ० जहांगीर्स इण्डियांपृ० ७

सूबा अवध में धातु का उद्योग भी काफी विकसित दशा में था। सूबा में लोहे का आयात होने के बावजूद लोहे से निर्मित की जाने वाली वस्तुओं का उद्योग महत्त्वपूर्ण था। अवध तांबा, कांसा एवं कांच उद्योग का महत्त्वपूर्ण केद्र रहा[1]। अवध सरकार में घरेलू बर्तन बनाने का उद्योग था[2]।

मुगलकाल में अवध में शीशा उद्योग का भी विकास हुआ। शीशे से निर्मित विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जैसे- मीनाकारी की गई बोतल, हुक्के के प्ज्ञयाले, तश्तरियां, गिलास, ढक्कन, पीकदान, गुलदस्ते, दर्पण आदि थे। सूबा अवध में गोरखुपर इस उद्योग का प्रमुख केद्र था[3]। कागज बनाने का उद्योग भी अवध में था। भारत में अवध की गणना कागज के प्रमुख केन्द्रके रूप में होती थी[4]। सूबा अवध में चमकीले और कलात्मक मिट्टी के बर्तन भी बनाये जाते थे। वैसे तो यह उद्योग पूरे भारत में फैला था। लेकिन जयपुर, ग्वालियर, अयोध्या, बनारस, लखनऊ, कश्मीर और दिल्ली और इसके प्रमुख केद थे[5]।

इस काल में नमक के उत्पादन का भी काफी महत्त्व था। अयोध्या से नमक प्राप्त होता था[6]। शोरा उद्योग भी इस काल में प्रमुख उद्योगों में था क्योंकि शोरा से बारूद बनाया जाता था। इसके अतिरिक्त सोहागा, फिटकरी और गेरू जैसे अन्य खनिजों का उत्पादन छोटे पैमाने पर लेकिन इस दृष्टि से काफी होता था कि थोड़ी बहुत मात्रा में इसका आयात हो जाने से देश की

---

1 कुल श्रेष्ठ ,एस० एस० पूर्वोद्धत,पृ० १६३

2 हबीब, इरफान- पूर्वोद्धत ,पृ०३३

3 चोपड़ा पी०एन० पूर्वोद्धत

4 श्रीवास्तव, ए०एल०-अकबर द ग्रेट भाग-तीन,पृ० २२८,कुलश्रेष्ठ, एस० एस०

5 प्रो० राधेश्याम -मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति ,पृ० २६२

6 श्रीवास्तव ए०एल० पूर्वोद्वत भाग-तीन,पृ० २३२

औद्योगिक आवश्यकताएं पूरी हो जाती थी[1]। इसके अतिरिक्त चमड़ा उद्योग एवं ईट उद्योग भी सूबा अवध में था। जंगलों से प्राप्त उत्पादों ने विभिन्न व्यवसायों को बढ़ावा दिया। जंगल में प्राप्त टिम्बर एवं जलाने वाली लकड़ियों का व्यवसाय सम्राज्य में प्रमुख माना जाता था। टिम्बर भवन निर्माण एवं फर्नीचर निर्माण में प्रयोग किया जाता था। अच्छे किस्म की लकड़ियाँ नाव तथा जहाज बनाने के काम आती थी। अवध तथा गोरखपुर उस समय साखू,सागौन, के जंगलो से परिपूर्ण था। इसके अतिरिक्त कृषि यन्त्र, बैलगाड़ी ,संदूक, चारपाई, चौकी आदि भी इमारती लकड़ी से निर्मित किये जाते थे[2]। लकड़ी से विभिन्न वस्तु का निर्माण बढ़ई करते थे। और यह कार्य कुटीर उद्योग के रूप में ग्राम स्तर पर पूरे सूबे में किया जाता था।

मुगल शासन काल में व्यापार उन्नत दशा में था इसके लिये अनुकूल परिरिस्थितियां भी थी। राजमार्गो द्वारा गांवों ,कस्बों एवं शहरों को राजधानी से जोड़ा गया जिससे देश में मार्गो का जाल सा फैल गया। नदियां भी जल-मार्गो द्वारा अनेक सूबों एवं शहरों को जोड़ती थी। व्यापारियों व व्यापारिक मार्गो की सुरक्षा, मंडियों व बाजारों की व्यवस्था एवं नगर प्रशासन की उत्तर देखभाल करना मुगल प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य था ताकि भारत का अनेक देशों व देश के अनेक नगरों को पारस्परिक व्यापारिक सम्बन्ध बना रहे और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक व्यापारिक गतिविधियां अबाध रूप से चलती रहे।

जहां तक आंतरिक व्यापार का सम्बध था आर्थिक दृष्टि से सभी सूबों को एक दूसरे पर निर्भर करना पड़ता था। क्योंकि कुछ सूबों में कुछ वस्तु का अतिरिक्त उत्पादन होता था। तो उसी वस्तु का उत्पादन अन्य सूबों में कम

---

1 मोरलैण्ड, डब्ल्यू एच० इडिया एट दि डेथ आफ अकबर, पृ० १५४

2 श्रीवास्च, ए०एल० पूर्वोद्धृत, पृ० २२५-२२८

होता था आंतरिक व्यापार के अंतर्गत स्थल व तटीय दोनों तरह से व्यापार होता था।

मुगल काल में भारत देश की अधिकांश जनसंख्या गांवों में ही रहती थी। अतःउत्पादन मूलतः उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही होता रहा। उस समय वस्तुओं का आदान-प्रदान एक प्रमुख विषेशता थी। इसे बावजूद कई गांवों के छोटी बड़ी मंडियां होती थी जहां हर आवश्यकता की वस्तु खरीदी व बेची जाती थी। इन ग्रामीण मंडियों का स्थानीय व्यापार में महत्त्वपूर्ण योगदान था। छोटे-छोटे गावों में चावल, आटा, घी दूध, फल व सब्बिजयां, चीनी व अन्य मिठाईयाँ (सूखी व चाश्नी वाली) बड़ी मात्रा में बनाई जाती थी। बड़े गांवों में, जो प्रायः मुगल अधिकारियों के अधीन थे उनकी देख–रेख में भेड़ें, मुर्गे व कबूतर आदि बिकते थे जबकि हिन्दू आबादी वाले गांवो में आटा, चावल, सब्बिजयां व दूध बिकता था[1]। यात्रियों को खाने पीने का सामान साथ लेकर चलने की आवश्यकता न थी क्योंकि यह हर जगह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था[2]। एक व्यापारी बनारसी दास अपने संस्मरणों में जौनपुर के ५२ परगनों में प्रत्येक मे बाजार व मंडी का उल्लेख करता है[3]। इन बाजारों व मंडियों में भारी मात्रा में अनाज, सब्जी ,फल, नमक घी, आदि बिकती थी। बाजार की यही व्यवस्था अवध, खैराबाद, बहराइच, लखनऊ ,गोरखपुर तथा दरियाबाद आदि में भी थी।

गांवों के विपरीत शहरों में मुख्यतः विलासिता की वस्तुओं का निर्माण होता था। जिन्हें कृषक खरीदनें की क्षमता कम रखता था। नगरों अथवा शहरों

---

1 राय चौधरी, तपन एवं हबीब, इरफान दि कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया,भाग-१ पृ० ३२५

2 टैवर्नियर, जे०वी- टैवनियर्स ट्रैवेल्स इन इण्डिया ,भाग-१, पृ० ३८, २३८

3 बनारसी दास - अर्ध 'कथानक' ,पृ० ५३-५४

का पारस्परिक व्यापार निःसंदेह गांवों की अपेक्षा अधिक नाना प्रकार की वस्तुओं के लिये होता था भारत में जब भी किसी सार्वजनिक भवन अथवा संस्था का निर्माण होता था तो उसके आस-पास एक विशाल बाजार भी बनाया जाता था[1]। परिणाम स्वरूप बड़े-बड़े नगरों में अनेक मंडिया होती थी जिनमें से एक मुख्य बाजार का काम करती थी। इस काल में भारत के प्रायः सभी नगरो व शहरो में शिल्पकारों व दस्तकारों का वर्णन मिलता है। सूबा अवध में खैराबाद, ,लखनऊ, बहराइच, गोरखपुर, मगहर, तथा दरियाबाद के बुनकर स्वयं ही अपने माल को मंडियों में बेचते थें। इसके अतिरिक्त बनारस के बुनकर भी प्रायः स्वयं ही अपने माल को मंडियो में बेचते थें[2] बाहर से आने वाले व्यापारियों के लिये हर शहर में भंडारगृह होते थें जिनमें व्यापारिक माल सुरक्षा पूर्वक रखा जा सकता था।

इस भू–भाग में मुगल साम्राज्य कीकुछ टकसालें भी थी। लोग चांदी, सोनां देकर राज्य टकसाल से सिक्के प्राप्त कर सकते थे। पुराने सिक्के के घिस जाने से इनका मूल्य कम हो जाता था। मुगल काल में सूबा अवध में अवध, गोरखपुर, खैराबाद तथा बहराइच(दोगोन नामक गाव) में ताबें के सिक्के की टकसाल थीं, तथा लखनऊ में चांदी के सिक्के की टकसाल थी[3]।

यहाँ का व्यापार नदियों एवं भू-भागों द्वारा होता था। बैल, बैल गाड़ियों व उँट भू-परिवहन के प्रमुख साधन थे[4]। पक्की सड़कों की अपेक्षा उस काल में कच्ची सड़के व पगडंड़ियों पर सुगमता से इन साधनों का प्रयोग उपयोगी था।

---

[1] टेवर्नियर ,जे०बी,-पूर्वोद्धृत, भाग-१ ,पृ० ५२

[2] वही, पूर्वोद्धृत,भाग -१ पृ० ६६-६७

[3] अबुल फजल, पूर्वोद्धित, भाग–दो १८३, सिंह, एम०पी०–टाउन मार्केट, मिन्ट एण्ड पोर्ट दि मुगल इंडिया ,दिल्ली, १९८५, पृ० २३६

[4] राय चौधरी ,तपन एवं हबीब इरफान -पूर्वोद्धृत ,पृ०३४६

यात्रा के लिये कभी-कभी समृद्वशाली लोग रथ का प्रयोग करते थे जिनमें चार पहिये होते थे। बैलगाड़ी में दो पहिये होते थे और इसका प्रयोग समतल भूमि पर होता था। अकबर के काल में कुछ विशेष प्रकार की गाड़ियों का अविष्कार हुआ था। जैसे छतरीदार वाहनों जो प्रायः बैलों द्वारा खींचा जाता था। इन गाड़ियों में जुतने वाले बैल काफी तेज भागने वाले होते थे, जो कृषि में हल चलाने वालो से ज्यादा ताकतवर होते थे। तथा घोड़ों जैसा काम करते थे[1]। अच्छी चाल से चलने पर ये प्रतिदिन बीस मील अर्थात ३२ किमी की यात्रा कर लेते थे। रथ बैलगाड़ी की अपेक्षा अधिक सफर तय करते थे। यात्रियों व समान का किराया अलग-अलग होता था। बैलगाड़ी की सवारी सबसे सस्ती होती थी। इसमें एक रूपया प्रतिदिन की दर से यात्रा की जा सकती थी। रथ पर १२ व्यवक्तियों के बैठने की सुविधा थी और उनसे ४ रूपया प्रतिमास प्रति किराया लिया जाता था। समान ढोने का किराया बैलगाड़ी से आगरा से मुलतान २.५० रूपया प्रति मन और पटना व आगरा के बीच प्रायः १.२५ रूपये से २.२५ रूपये प्रति मन था। मन का वजन उस काल में ६२.५ पौड आंका गया है। पूरी यात्रा में निरीक्षक का वेतन भी शामिल था जो १० से २५ रूपया था[2]। किराया क्षेत्र के दुर्गम अथवा सुगम एवं समतल मार्गो की सुरक्षा की दृष्टि से निश्चित किया जाता था।

परिवहन के अन्य साधनों में खच्चर,गधे व भैसों का वर्णन मिलता है जो व्यापरिक माल ढोने में प्रयोग में लाये जाते थे। खच्चर का उपयोग उत्तरी पर्वतों से माल ले जाने तथा ले आने के लिये ही अधिकतर उपयोग में लाया जाता था। गधों से स्थानीय स्तर पर खुदरा माल ढ़ोने का ही उल्लेख मिलता है।

---

[1] वही, -पूर्वोद्धृत,३४६

[2] राय चौधरी ,तपन एवं हबीब,इरफान-पूर्वोद्धृत,पृ० ३४६

यद्यपि घेरलू कार्यो में इसका उपयोग बराबर था। भैसे पानी ढ़ोने के काम आते थे। पटना से गोरखपुर होते हुए भूटान की यात्रा में बैल, ऊंट तथा पहाड़ी टट्टुओं का प्रयोग किया जाता था[1]। भेड़ों व बकरियों के झुंड के झुंड थोड़ा-थोड़ा माल लादकर भी उत्तरी पर्वतों से सूबा अवध में आते थे[2]। इस काल में मनुष्यों (कुली) द्वारा लाये गये समान की दर दस दिन के लिये दो रूपये की दर थी और भेड़ों अथवा बकरियों द्वारा लाये गये १ क्विंटल माल की दर दो रूपये थी[3]।

घोड़ों का प्रयोग मुख्य रूप से युद्ध भूमि में था जो सैनिकों की अथवा शाही सवारी समझा जाता था। व्यापारिक परिवहन में इसका प्रयोग कम होता था क्योंकि ये विदेशों से आयात किये जाते थे और काफी मंहगें होते थे। घोड़ो का सूबा अवध में यात्रा के लिये प्रयोग होता था। बनारसी दास जौनपुर से खैराबाद व आगरा की यात्रा घोड़े से ही करता था[4]। अवध में उत्तर की पहाड़ियों से माल ढ़ोने के लिये विदेशी यात्री घोड़ों का भी इस्तेमाल करते थे[5]।

नदियों में नौकाओं द्वारा यात्रा किया जाता था तथा माल भी ढ़ोया जाता था। नदियों के मार्ग से व्यापारिक माल ले जाना अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता था । सूबा अवध में घाघरा नदी के जलमार्ग से बहराइच से अयोध्या होते हुए दोहरी घाट से आगे भागलपुर के पास गंगा के रास्ते पटना होते हुए बंगाल तक

1 वही, पूर्वोद्धृत ,पृ० ३५१
2 अबुल फजल- आईन–ए– अकबरी,भाग-दो,पृ० १८३
3 राय चौधरी, तपन, एवं हबीब इरफान- पूर्वोद्धृत, पृ० ३५१
4 बनारसी दास जैन-अर्ध–कथानक
5 अबुल फजल-आईन–ए– अकबरी,भाग-दो पृ० १८३

संदर्भ-सूची

फारसी ग्रन्थ

अबुल फजल	अकबरनामा, ३ खण्ड, अंग्रेजी, अनुवाद, एच० बेवारिज, बिब्लोथिका इन्डिका कलकत्ता, १६४८ ई, दिल्ली, १६७२ ई०, भाग-३, दिल्ली, १६७३ ई०
अबुल फजल	आईन-ए-अकबरी, भाग-१, अंग्रेजी अनुवाद एच० ब्लाकमैन, रायल एशियाटिक सोसाइटी आंफ बंगाल, कलकत्ता द्वितीय संस्करण , १६३६ ई०, तृतीय सस्करण , दिल्ली, १६७७ ई०
अबुल फजल	आईन-ए-अकबरी, भाग-२, अग्रेंजी अनुवाद एच०एस जैरेट एव जदुनाथ सरकार, रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, १०४६ ई० तृतीय संस्करण दिल्ली, १६७८ ई०
अबुल फजल	आईन-ए-अकबरी, भाग-३, अग्रेंजी अनुवाद एच०एस० जैरेट एव जदुनाथ सरकार, रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, १०४८ ई०, तृतीय संस्करण दिल्ली, १६७८ ई०
अबदुल्ला	तारीख-ए-दाऊदी, सम्पादक शेख अबदुर्र रशीद, अलीगढ़, १६५४
अफीफ, शम्ससीराज	तारीख-ए-फीरोजशाही, सम्पादक, विलायत हुसैन, बिब्लोथिका इन्डिका, कलकत्ता, १८६० ई०

अमीर खुसरो	देवलरानी खिज्र खां, सम्पादक रशीद अहमद सलीम, अलीगढ़, १९१७ ई० नूह सिपेहर ,कलकत्ता, १०५० ई०
अहमद निजामुददीन	तबकाते अकबरी, सम्पादक बी० डे०, भाग१-३, रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल १९७२ ई० १९३१ ई० १९३६ ई०
आफतबची जौहर	तजीकरात-उल-वाकयात ,अंग्रेजी अनुवाद, सी० स्नेवर्ट, लंदन, १८-३२
काजिम मोहम्मद	आलमगीरनामा, रायल एश्यिाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, १८६५
ख़्वादामीर	कानून-ए-हुमांयू, बेनी प्रसाद, कलकत्ता, १८६७, १९४० ई०
खाफी खां	मुन्तखब-उल-लुबाब ,रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, १८६०-७४, १९०९- १९२२
खान, मोतमद	इकबालनामा-ए- जहांगीरी , कलकत्ता, १८७०
खान शाहनवाज	मासीर-उल-उमरा, अनुवादक बेनी प्रसाद एवं बेवारिज, कलकत्ता, १९११ और १९३२
गुलाम, हजरत मुफ्ती	तारीख- ए- मुअज्जमाबाद, लखनऊ १८७४ ई०
गुलबदन बेगम	हुमायूँनामा, अनुवादक ए० एस० बेवारिज लंदन, १९०२, दिल्ली १९७२
जहाँगीर	तुजुक-ए-जहांगीरी, अंग्रेजी अनुवादक एस रोजर्स एवं बेवारिज, लंदन १९०९, भाग १-२, दिल्ली, १९६८ ई०, हिन्दी संस्करण,

	बृजरत्नदास (सं०) नागरी प्रचारिणी, वाराणसी, १६६०
मिनहाजउल सिराज	तबकात-ए- नासिरी, अनुवादक अब्दुल हई हबीबी, काबुल, एच० जी रैवर्टी, बिब्लोथिका इडिन्का कलकत्ता, १८६७ ई०
बदायुँनी, अब्दुल कादिर	मुन्तखब-उत-तवारीख, भाग-१ अनुवाद एस०ए रेकिग, भाग-२, अनुवादक डब्ल्यू एच० लोव, भाग-३ डब्ल्यू हेग, कलकत्ता १८६८, १८८४, १६२५, भाग १-२, दिल्ली, १६७३, भाग-३ पटना, १६७३
बाबर, जहीरुद्दीन	बाबरनामा, अनुवादक श्रीमती ए० एस० बेवरिज, लंदन, दिल्ली, १६७०
भंडारी, सुभान राय	खुलासत-उल-तवारीख, दिल्ली, १६१८
नागर ईश्वरदास	फुतुहात-ए-आलमगीरी, अनुवाद तसलीम अहमद, दिल्ली, १६७८ ई०
लाहौरी, अब्दुल हमीद	पादशाहनामा, भाग-१, भाग-२, रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, १८६६ एवं १८६८

उर्दू ग्रन्थ

उमर, मोहम्मद	अठ्ठारवी सदी में हिदुस्तानी मआशरत, जमाल प्रिटिंग प्रेस, दिल्ली, १६७३
कमालुददीन, हैदर	स्वोनहात-ए-सलातीन-ए- अवध, भाग-१ नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १८७६
गनी, नज़ामुल	तारीख-ए-अवध- ५ खण्ड, लखनऊ, १६१६
गुलाम, हजरत, मुफ़्ती	कवायफ-ए-जिला-ए गोरखपुर सुभान उल्लाह कलेक्शन, एम०एस० अलीगढ़, १८१०
तक़ी, मिर्जा मोहम्मद	तारीख-ए- आफताब-ए- अवध, खण्ड-३, टैगोर लाइब्रेरी, लखनऊ
लाल, मुंशी प्यारे	शाम-ए-अवध, लिथो प्रेस, बलरामपुर, १८७०
लारी, अहमद	मुख्तहर-तारीख-ए- गोरखपुर
सहाय, मुशी राम 'तमन्ना'	अहसन-उल-तवारीख, भाग-१, तमन्नाई प्रेस, लखनऊ, १८७६
प्रसाद, कुंवर दुर्गा 'महर'	तारीख-ए-अयोध्या, नवल किशोर प्रेस लखनऊ, १६१२ ई०
हलीम अब्दुल 'शरर'	गुजिश्ता लखनऊ अलवाइज सफदर प्रेस, लखनऊ, १६६५ ई०

यात्रा–संस्मरण

इरविन, एच० सी०	दि गार्डेन आफ इण्डिया, २ खण्ड, मूल प्रकाशन इग्लैड १८८०, रिप्रिन्ट लखनऊ पुस्तक केद्र लखनऊ, १६७३-१६७४
ट्रैवर्नियर, जे० बी०	टैवर्नियर्स ट्रैवल्स इन इण्डिया (१६४०-७७) भाग-१, अनुवाद जान फिलिप्स, लंदन १६७७ फैक्जीमिल रीप्रिन्ट, कलकत्ता, १६०५ भाग-२ अनुवाद वी लाल, लंदन १८८६ रिवाईज्ड डब्ल्यू क्रुक (सं०) लंदन, १६२५
डेलावेल पिट्रा	ट्रैवेल्स आफ पिट्रा डेलावेलइन इंडिया, (१६२३-२४), भाग-२, अनुवादक जी० हेवर्स (१६६४ई०) सं० एडवर्ड ग्रे, लंदन १८६२
डीलिट, जोंस	दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मोगल, अनुवाद जे०एस० होयलैण्ड एवं एस० एन० बनर्जी, बम्बई, १६२८
पेल्सर्ट, फांसिस्को	जहांगीर्स इण्डिया, अनुवादक डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड एवं पी० गेल, कैम्ब्रिज, १६२५, रिप्रिट दिल्ली, १६७२
फास्टर, विलियम(सं०)	अर्ली ट्रैवल्स इन इण्डिया, दिल्ली, १६६८
बर्नियर, एफ०	ट्रैवेल्स इन दि मुगल इम्पायर, (१६५८- १६६८) सम्पादक ए० कान्सटेबल, लंदन, १६१४, कलकत्ता, १६६८
मनूची, निकोलो	स्टोरिया डि मोगोर(१६५३- १७०८) विलियम इर्विन, १-४

	भाग लंदन, १६०७-८ रिप्रिट कलकत्ता, १६६६
मेजर,आर० एच०	इण्डिया इन दि फिफ्टींथ सेंचुरी (इसमें काण्टी, निकितिन और अब्दुर्रजाक़ के विवरणों का अनुवाद है)। लंदन, १८८५
मण्डी, पीटर	दि ट्रैवेल्स आफ पीटर मंण्डी इन यूरोप एण्ड एशिया (१६०८-६७) सम्पादक टेम्पल सर रिचर्ड, भाग-२, हक्लूयत सोसाइटी, १६१४
रो,सर टामस एण्ड जान फायर	ट्रैवेल्स इनइण्डिया इन द सेवेन्टींथ सेन्चुरी, लंदन १८७३
स्लीमैन,डब्ल्यू०एच०	जरनीथ्रो दि किंगडम आफ अवध इन १८४६-५०, भाग-२, रिचर्ड बेन्टली, लंदन, १८५८
हुई, विलियम	मिमयर्स आफ देहली एण्ड फैजाबाद, गवर्मेन्टप्रेस आफ इलाहाबाद, १८८८-१८८६
ह्वेन सांग (चीनीयात्री)	ट्रैवेल्स इन इण्डिया (६२६-४५) हिदी अनुवाद ठाकुर प्रसाद शर्मा, इलाहाबाद, १६७२

सहायक ग्रन्थ (अंग्रेजी)

अम्बष्ट, बी०प० (सं०)	बीम्स कान्ट्रीब्यून्स टू दि पोलिटिकल,ज्योग्राफी आफ दि सूबा अवध, बिहार, बंगाल, उडीसा इन द एजे आफ अकबर, पटना, १६७६
अल्तेकर ,ए० एस०	दिपोजीशन आफ वोमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, तृतीय संस्करण, दिल्ली, १६६२
अली ,एम० अतहर	मुगल नोबिल्टी अण्डर औरंगजेब, बम्बई, १६६६ ,दिल्ली, १६७०
अली, मीर हसन	आबजवेशन्स आन दि मुसलमान आफ इण्डिया, सम्पादक डब्ल्यू क्रुक, लंदन १६१७
अशरफ, के०एम०	लाइफ एण्ड कन्डीशन आफ दि पीपुल आफ हिंदुस्तान, कलकत्ता, दिल्ली, १६७० ई०
असांरी, मोहम्मद अजहर (सं०)	यूरोपियन ट्रैवेल्स अण्डर दि मुगल्स(१५८०-१६२७) दिल्ली, १६७५ ई०
ओझा, पी०एन०	सम आस्पेक्ट्स आफ नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ, पटना, १६६१
ओझा,पी०एन०	सम आस्पेक्ट्स आफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, रांची, १६६१
इक्राम, शेख	मुस्लिम सिविलाइजेशन इन इण्डिया, १६६४
इलियट, एच० एम०	द हिस्ट्री आफ इंडियां ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन

एवं डाउसन,जे०	हिस्टोरियंस, १-६ भाग, लंदन, १८६६-७७, इलाहाबाद, किताब महल, इलाहाबाद, १६६४ ई०
एडवर्ड एस० एवं गैरेट कपूर, एलिन बेथ	मुगल रूल इन इण्डिया, एशियन पब्लिकेशन सर्विस, न्यू दिल्ली, १६७६,, हरम एण्ड दसिस्ख, चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, १६१५
कनिंघम,जे०डी०	हिस्ट्री आफ द सिक्ख, चांद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, १६५५
कीन एच०डी०	ए हैण्ड बुक फार बिजीटर्स टू इलाहाबाद, कानपुर, आगरा, कलकत्ता
कुरैशी, आई० एच०	दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर पटना, १६७६
काणे जी०बी०	हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग-३-४, भंडारकर मेमोरियल रिसर्च इस्टीटयूड, १६७३
कीय, एफ ई०	कबीर एड हिज फालोवर्स, कलकत्ता, १६३१, ए हिस्ट्री आफ एजूकेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, कलकत्ता, १६५६
क्रुक, डब्ल्यू	इस्लाम इन इण्डिया, दिल्ली,१६७२
क्रुक,डब्ल्यू	द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स आफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज एण्ड अवध, कलकत्ता, १८६६
क्रुक,डब्ल्यू	द नार्थ-वेस्ट प्रोविंसेज आफ इण्डिया मैलुएन एण्ड कम्पनी, लंदन १८६७
खान, ए०आर०	चीफ्टेन्स इन दि मुगल एम्पायर ड्यूरिंग दि रेन आफ

	आफअकबर, शिमला, १९७७
गोपाल,एल०जी०	दि इकोनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया,दिल्ली,१९६५
ग्राफ, वांलेटी (सं०)	लखनऊ-मेमोरिस आफ ए सिटी, दिल्ली,१९९७
चोपड़ा,पी०एन०	सम आस्पेक्ट्स आफ सोसाइटी एण्ड कल्चर इयुरिग द मुगल ऐज, आगरा, १९६३
जाफर,एस० एम	एजूकेशन इन मुस्लिम इंडिया, दिल्ली, १९७३
जाफर,एस०एम०	सम कल्चर आस्पेक्ट्स आफ मुंस्लिम रूल इन इंडिया दिल्ली, १९७२
जाफरी, एस० जेड० एच०	स्टडीज इन द अनाटमी आफ़ ए ट्रांस्फरमेंशन अवध फ्राम मुगल टू कलोनियियल रूल, दिल्ली, १९९८ ई०
डे,यू०एन०	द मुगल गवर्नमेंट, दिल्ली, १९७०
डेविस, किंग्सले	पापुलेशन आफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान, प्रिंसटान युनिवर्सिटी प्रेस, १९५१
परमात्माशरण	दि प्रोविशियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल, इलाहाबाद, १९४१

फर्कूहर,जे०बी०	एन आउट लाइन आफ दि रिलिजन लिटेरचर आफ इण्डिया, लंदन १९२०
फारूकी, जहीरूद्दीन	औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, १९७२
फुहर	द मोन्यूमेंटल एटीक्वाटिस एण्ड इनसक्रिपसन इन द नार्थ वेस्टन प्राविन्सेज एण्ड अवध, बनारस ,१९६६ ई०
बडथावाल, पी०डी०	दि निर्गुण स्कूल आफ हिदी पोल्टरी, बनारस, १९३६ई०
बनर्जी, एस०के०	हुमायूं बादशाह, लखनऊ, १९४१
वासू, पी०	अवध एण्ड दि ईस्ट इण्डिया नई दिल्ली, १९६७ ई०
वेनी प्रसाद	हिस्ट्री आफ जहांगीर, इलाहाबाद
बुचनान, फ्रांसिस	डिस्ट्रिक्स रिर्पोटस (१८०७-११) एडिटेड एण्ड एब्रिज्ड बाई मान्टगुमरी, दि हिस्ट्री एन्टीक्वीटीज, टोपोग्राफ्री एण्ड स्टैटिस्टिक्स, आफ इस्टर्न इण्डिया, तीन भाग, दि सर्वे आफ गोरखपुर, इन मार्टिन्स एब्रिजमेंट, भाग-२ लंदन, १८३८, इण्डियन रिप्रिन्ट, १९७६ ई०
बेडेल, पावेल	आउट लाइन्स आफ दि टोपोग्राफी एण्ड स्टैटिस्टिक्ट आफ दि सदर्न डिस्ट्रिक्टस आफ अवध एण्ड दि कैन्टामेंट आफ सुल्तानपुर, कलकत्ता, १८३९
ब्राउन, पर्सी	इण्डियन आर्की टैक्चर, इस्लामिक पीरियड बम्बई, १९४२ ई०
भंडारकर, आर०बी०	वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म एण्ड मेन रेलिजन सेट्स, पूना, १९२९
टामस, डब्ल्यू ०एल०	म्युचुअल इन्फ्लूयेन्स आफ

	मोहम्मडन्स एण्ड हिन्दूज इन इण्डिया, कैम्ब्रिज, १८६२
भट्टाचार्य, जे०एन०	हिन्दू कास्टस एण्ड सेंट्स, कलकत्ता, १६६८
मजूमदार, आर० सी०	द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इण्डिया पीपुल, बम्बई
मोरलैण्ड, डब्ल्यू० एच०	इंडिया एट दि डेथ आफ अकबर, लंदन १६२०, रिप्रिट, दिल्ली, १६७३, इण्डिया फ्राम अकबर टू औरंगजेब, लंदन, १६२३
मिश्रा, रेखा	वीमेन इन मुगल इण्डिया, दिल्ली, १६६७
मुखर्जी राधाकमल	इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया (१६००-१८००) इलाहाबाद, १६६७
मूसवी,शीरीन	दि इकोनामी आफ दि मुगल एम्पायर ए स्टैटिस्टिकल स्टडी, आम्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, १६८७ ई०

ताराचंद	इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम आन इण्डियन कलचर, इलाहाबाद, १६५४
देसाई, जेड० ए०	इनस्क्रिपसन फ्राम अयोध्याा एपिग्राफिका इंडिका, १६६५
निजामी, खलीफ अहमद	स्टडीस मेडिवल इण्डिया हिस्ट्री एण्ड कल्चर, अलीगढ़ १६५६
नियोगी, पुष्पा	दि इकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता, १६६२

यासीन, मोहम्मद	ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इडिया, कलकत्ता, १९६२
रनल, जेम्स	बंगाल एटलस, लंदन, १७८१
रावत, पी० एल०	हिस्ट्री आफ इण्डियन एजूकेशन, आगरा, पृ० १९५६
रशीद, ए०	सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, कलकत्ता १९६९ ई०
रिज़वी एस० ए०ए०	मुस्लिम रिवाइविलस्ट मूवमेंट इन नार्दन इण्डिया इन सिक्स्टींथ एण्ड सेवेन्टींथ सेन्चुरी, आगरा, १९६५
लाल, के०एस०	ग्रोथ आफ मुस्लिम पापुलेशन इन मेडिवल इण्डिया,दिल्ली, १९७३
लां, एन० एन०	प्रमोशन आफ लर्निंग इन इण्डिया डयूरिंग मुहम्मडम रूल, दिल्ली, १९७३ ई०
शर्मा श्री राम	मुगल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, बम्बई, १९५१
शुबहान, जान० ए०	सूफिज्म इट्स सेंट्स एण्ड आइन इन इण्डिया, लखनऊ १९६०
सरकार, जे०एन०	स्टडीज इन मुगल इंडिया, कलकत्ता, १९३५
सरकार जे० एन०	हिस्ट्री आफ औरंगजेब, ५भाग, कलकत्ता ,१९२४
सहाय, बी०के०	एजूकेशन एण्ड लर्निग अंडर, द ग्रेट मुगल्स, बम्बई
सिंह, एम०पी०	टाउन मार्केट, मिंट एण्ड पोर्ट इन दि मुगल एम्पायर,

	दिल्ली, १६८५
सिद्दीकी, नोमान अहमद	लैंड रेवेन्यु एडमिनिस्ट्रेशन अण्डर दि मुगल्स, एशिया पाब्लिकेशन हाउस, बाम्बे, १६७०
सक्सेना, बाबूराम	ऐवोल्यूशन आफ अवधी, इलाहाबाद, १६३७ ई०
सक्सेना, बी० पी०	हिस्ट्री आफ शाहजहां आफ देहली, इलाहाबाद, १६७३
श्रीवास्तव, ए० एल०	अकबर दी ग्रेट, भाग-१ आगरा, १०६४, भाग-२, आगरा, १६६७, भाग-३, आगरा, १६७३
श्रीवास्तव ए०ए०	फर्स्ट टू नावाब्स आफ अवध, आगरा, १६५४
श्रीवास्तव, अशोक कुमार	हिन्दू सोसाइटी इन द सिक्सटीथ सेचुरी
हाजी, दरोगा अली	ऐन इल्लस्ट्रेटड हिस्टोरिकल एलबम आफ दि राजाज एण्ड ताल्लुकेदार्स आफ अवध , इलाहाबाद, १८८०
हबीब, इरफान	ऐन एटलस आफ दि मुगल एम्पायर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस दिल्ली,१६८२
हबीब, इरफान एवं राय चौधरी (सं०)	दि कैम्ब्रिज इनकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया ,भाग-१ ओरियंट लांगमैन कैम्ब्रिज यूनियवर्सिटी प्रेस, १६८४
हसन, अमीर	पैलेस कल्चर आफ लखनऊ, लखनऊ, १६८३
हसन, इबन	दि सेंट्रल स्ट्रक्चर आफ दि मुगल इम्पायर, दिल्ली, १६७०

हुसैन युसुफ	ग्लिम्पसेंस आफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, बम्बई, १९६२
हुई, एस० अब्दुल	इण्डिया डयूरिग मुस्लिम रूल अनुवादक एम० अहमद एकेडमी आफ इस्लामिक रीसर्च एण्ड पब्लिकेशन लखनऊ, प्रथम संस्करंण, १९७७
विलकाक्स वाल्टर एल०	स्टडीज इन अमेरिकन डेमोग्राफी ,कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४०
त्रिपाटी,आर०पी०	सम आस्पेक्टस आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन इलाहाबाद, १९३६
त्रिपाठी, आर०पी	राइज एण्ड फाल आफ द मुगल एम्पायर इलाहाबाद, १९५६

सहायक ग्रंथ (हिंदी)

अली, एम० अतहर	औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, गोपाल प्रिटिंग प्रेस, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद ,नई दिल्ली, १९७७ ई०
अली, असद	भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, दिल्ली, १९७१ ई०
अर्थवेवद, (सम्पादक)	श्रीपाद शर्मा, औधनगर, १९३८ ई०
अग्रवाल सरयू प्रसाद	अकबर दरबार के हिन्दी कवि, लखनऊ, १९५०
अशरफ, के०एम०	हिंदुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, अनुवादक डा० के० एस० लाल, दिल्ली, १९६० ई०

आचार्य ,पशुराम चतुर्वेदी	उत्तर भारत की संत परम्परा, प्रयाग, १६५१ ई, १६७२ ई०
आचार्य ,पशुराम चतुर्वेदी	सूफी काव्य संग्रह ,प्रयाग १६४३ ई, १६५६ ई०,
आचार्य, पशुराम चतुर्वेदी	भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, प्रथम संस्करण
ओझा,दशरथ	हिदी नाटक उद्‌भव और विकास, दिल्ली
इलियट, एच०एम० एवं डाउसन ,जे०	भारत का इतिहास, अनुवादक मथुरालाल शर्मा, भाग-७, १६७२ ई०
उपाध्याय,ए०	कबीर वचनावली, काशी, सम्वत् २००३
केशवदास	रामचिन्द्रका, भाग-१ नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सम्वत् २०२५ई०
कुलश्रेष्ठ,कमल	हिदी प्रेमाख्यान काव्य, इलाहाबाद, १६६२
गुप्त, माता प्रसाद (सं०)	कबीर ग्रंथावली, आगरा, १६६६ ई०, तुलसीदास, आगरा, १६७२ ई०, चंदायन, आगरा, १६६३ई० पद्मावत, इलाहाबाद, १६६६ ई०
गुप्त माता प्रसाद (सं०)	मृगावती, आगरा, १६६८ मधुमालती, इलाहाबाद, १६६१
गुप्त, परमेश्वरी (सं०)	चंदायन, बम्बई, १६६४ ई०

गुप्त,दीन दयाल	अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय ,भाग-१ प्रयाग, १६५५ई०
चतुर्वेदी, नरमदेश्वर	कवि तानसेन और उनका काव्य, इलाहाबाद, सम्वत् २०१३
चन्द्र, सावित्री, शोभा	समाज और संस्कृति, दिल्ली, १६७६ ई०
जायसी, मलिक मोहम्मद	पद्मावत, हिंदी संस्करण, कलकत्ता, १८६६
जोशी, उमेश	भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद ,१६५७
परमात्माशरण	मुगलों का प्रांतीय शासन, लखनऊ, १६७० ई०
पाठक, शिव सहाय	हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन, दिल्ली, १६७८ ई०
पुरोहित, हरिनारायण (सं०)	सुन्दर सार, काशी;, १६२८ ई०
पाठक, विशुद्धान्नद	उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ, १६८२ ई०
पाण्डेय,दिवाकर	गोरखपुर और उसकी परम्परा का साहित्य, गोरखपुर, १६८० ई०
पाण्डेय,राजबली	हिन्दू संस्कार, वाराणसी, सम्वत् २०१४, गोरखपुर जनपद और उनकी श्रेत्रिय जातियों का विकास, गोरखपुर ,१६४६
पाण्डेय जी०एवं शर्मा, आर०	अवधी साहित्य का सर्वेक्षण और समीक्षा ,इलाहाबाद १६७८ ई०

मोरलैण्ड, डब्ल्यू० एच०	मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था अनुवादक, श्री कमलाकर तिवारी, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, १९६३ ई०
मराठे, मनोहर भालचन्द्रराव	ताल वाद्य शास्त्र, ग्वालियर, १९७१ ई०
मिश्रा,लाल मणि	भारतीय संगीत वाद्य, दिल्ली, १९७३
मिश्रा, ब्रज किशोर	अवध के प्रमुख कवि, सं० बी०आर० केसरिया, लखनऊ, सम्वत् २०१७
तिवारी, मुक्तेश्वर	मध्ययुगीन सूफी और संत साहित्य, इलाहाबाद, १९८४
तिवारी, रामपूजन	सूफी मत साधना और साहित्य, वाराणसी, १९५६ ई०
दास, श्याम सुंदर (सं०)	कबीर ग्रंथावली, काशी, १९६४
दादू दयाल की वाणी	भाग-१ प्रथम संस्करण वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
दीक्षित, त्रिलोकी नारायण	अवधी और उसका साहित्य, राज कमल प्रकाशन ,दिल्ली
दिनकर रामधारी सिंह	संस्कृति के चार अध्याय, पटना, १९५७ ई०
द्विवेदी, हजारी	हिन्दी साहित्य, दिल्ली, १९६४ ई० नाथ सम्प्रदाय, इलाहाबाद,

प्रसाद	१६५० ई०
द्विवेदी, रामाज्ञा	अवधी कोष, प्रथम संस्करण, हिदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद
राधेश्याम	सलतनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास, इलाहाबाद, १६८७ ई०
राधेश्याम	मध्यकालीन प्रशासन समाज तथा संस्कृति, इलाहाबाद, १६६७ई०
राधेश्याम	मुगल सम्राट बाबर ,पटना १६७४ ई०
रिज़वी,एस० ए०ए०	खिलजी कालीन भारत, अलीगढ़, १६५४
रिज़वी,एस० ए०ए०	उत्तर तैमूर कालीन भारत, अलीगढ़, १६५६ मुगल कालीन भारत (बाबर, भाग–१, अलीगढ़, १६६०)
रिज़वी, एस०ए०ए०	मुगल कालीन भारत (हुमायूं)भाग-२, अलीगढ़, १६६१ ई०
रोहतगी, सरोजनी	अवधी का लोकसाहित्य,दिल्ली,१६७१
लालदास	अवध विलास, सम्पादक डा० चंद्रिका प्रसाद दीक्षित, बांदा, १६८५
लूनिया,बी०एन०	मुगलकालीन भारत काराजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भोपाल, १६७१
वाल्मीकिय	रामायण ,मद्रास १६३३ ई०, गीता प्रेस, गोरखपुर

विश्वनाथ प्रसाद (सं०)	चंदायन, आगरा, १९६२ ई०
वर्मा हरिश्चन्द्र (सं०)	मध्यकालीन भारत, भाग-१, दिल्ली, १९९२. मध्यकालीन भारत, भाग-२,दिल्ली, १९९५
वर्मा,राम कुमार	हिदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, १९५४
वर्मा,परिपूर्णानन्द	वाजिद अलीशाह और अवध का पतन, लखनऊ, १९५६ ई०
शर्मा, मुरारिलाल 'सरस'	अवधी कृष्ण काव्य और उसके कवि, आगरा, १९६७ ई०
शर्मा, रसचंद	मुगल कालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर, १९७६ ई०
शुक्ला, रामचन्द्र (सम्पादक)	जायसी ग्रंथावली, लखनऊ ,सम्वत् २०13 हिंदी साहित्य का इतिहास, वाराणसी सम्वत् २०२६
शुक्ला ,सरला	जायसी के परवर्ती हिंदी सूफी कवि और काव्य, लखनऊ,सम्वत् २०13
सरकार, जदुनाथ	मुगल शासन पद्धति, अनुवादक विजय नारायण, प्रथम हिंदी संस्करण, आगरा, १९६० ई०
शर्मा ,श्रीराम	मुगल सरकार और शासन, इलाहाबाद, १९७७
सतीश चन्द्र	उत्तर मुगल कालीन भारत, दिल्ली, १९९३
सिन्हा, सावित्री	मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रयां, दिल्ली,१९५३
सीताराम, लाल	अयोध्या का इतिहास, हिन्दुस्तान एकेडमी, प्रयाग, १९३२ ई०

अवधवासी	
सेन,अरूणकुमार	भारतीय तालो का शास्त्रीय विवेचन, भोपाल, १९८६ ई०
सूरदास	सूरसागर सम्पादक नंद दुलारे बाजपेयी, वाराणसी सम्वत् २०२६ ई०
स्मिथ, वी०ए०	महान मुगल अकबर, अनुवादक राजेद्र नाथ नागर लखनऊ १९६७ ई०
हबीब, इरफान (सं०)	मध्यकालीन भारत, ५ भागों में राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
हबीब,मुहम्मद एवं निजामी, के०ए० (सं०)	दिल्ली सलतनत्,प्रकाशन मैकमिलन , दिल्ली, १९९६ ई०
श्रीवास्तव, आर्शीवादी	अवध के प्रथम दो नवाब, आगरा, १९५७ ई०
श्रीवास्तव, आर्शीवादी	मध्यकालन संस्कृति, आगरा, द१९६३ ई०
श्रीवास्तव, आर्शीवादी	अकबर महान् ,भाग-२ अनुवादक डा०भगवानदास गुप्ता, आगरा, १९७२
श्रीवास्तव, हरिशंकर	राग परिचय, भाग-१, इलाहाबाद, १९९२
श्रीवास्तव,सुशील	विवाद ग्रस्त मजिस्जद (एक एतिहासिक छानबीन) नई दिल्ली, १९९३

श्रीवास्तव, हरिशंकर	मुगल शासन प्रणाली ,इलाहाबाद, १९८९
त्रिपाठी,विश्वनाथ	प्रारम्भिक अवधी का अध्ययन, इलाहाबाद, १९७२ ई०
त्रिपाठी रामरक्षा	अयोध्या दिग्दर्शन, फैजाबाद, १९६६ ई०
आर०पी०त्रिपाठी	मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन, अनुवादक कालिदास कपूर, इलाहाबाद, १९६४ ई०

डिक्शनरी एवं गजेटियर्स

हयूग, टी०सी०	डिक्शेनरी आफ इस्लाम, लंदन, १८८५ ई०,
प्रोग्रेस, ई०	एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, लंदन, १९१३
	हिंदी विश्वकोश, खंण्ड-३ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी संशोधित परिवर्धित संस्करण १९७६ ई०,
	दि इम्पीरियल गज़ेटियर आफ़ इण्डिया, भाग-१२, आक्सफोर्ड, १९०८,
	गजेटियर आफ दि प्राविन्स आफ अवध, भाग-१, अवध गवर्नमेंट प्रेस, लखनऊ, १८७७ ई०
बेनेट,डब्ल्यू०	अवध गजेटियर,खण्ड १-३,अवध गवर्मेट प्रेस इलाहाबाद, १८७७—७८
सी० नेविल, एच० आर०	डिस्ट्रिक्स गजेटियर खीरी, भाग-एक्स एल वी, लखनऊ १९२२
नेविल,एच०आर०	डिस्ट्रिक्स गजेटियर खीरी, भाग-**XLII**, इलाहाबाद, १९०३
नेविल,एच० आर०	डिस्ट्रिक्स गजेटियर बहराइच ,भाग-**XLVI**, इलाहाबाद,१९०५

नेविल,एच० आर०	डिस्ट्रिक्स गजेटियर वाराबंकी, भाग-**XLVIII**, इलाहाबाद, १६०४
नेविल,एच० आर०	डिस्ट्रिक्स गजेटियर गोरखपुर भाग- **XLIII** इलाहाबाद, १६०५
नेविल,एच० आर०	डिस्ट्रिक्स गजेटियर लखनऊ,भाग- **XXXVIII**, लखनऊ १६२२
नेविल,एच०आर०	डिस्ट्रिक्स गजेटियरी गोण्डा, इलाहाबाद, १६२१

लेख

कनिंघम	एक कनिंघम "आफ दि प्रोसीडिग्स आफ दि आर्कियोलाजिकल सर्वेयर टू दि गर्वेन्टमेंट आफ इण्डिया फार दि सीजन रिपोर्ट आफ १८६२- ६३" ,जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल,१८६५
हबीब,इरफान	'दि जमींदार्स इन दि आईन प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस' ,त्रिवेन्द्रम, १६५८
हसन, सैयद नुरूल	दि पोजीशन आफ दि जमीदार्स इन दि मुगल एम्पायर,दि इण्डियन इकोनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्रीरिब्यू, वाल्यूम -१, नं० ४, १६६४
हलीम,एस० ए०	"डवलप्मेंट आफ हिंदी लिट्रेचर ड्यूरिग अकबरस रेन", १६५७
कुरैशी, आई०	"द परगना आफिस अंडर अकबर" १६४२

एच०	
अली, हाफिज मोहम्मद ताहिर	"शेख महिबुल्लाह इलाहाबाद", १९७३
शर्मा ,आर०सी०	"आस्पेक्ट्स आफ बिजनेस इन नार्दन इंडिया इन द १७ सेंचुरी" १९७२

सहायक पत्र-पत्रिकाएं

अग्रदूत	"मुगल स्थापत्य हमारी सर्वाधिक कीमती थाती, पृ० १-१६, उ०प्र०, १९७३
कल्याण(भक्ति, सन्त,साधना,योग	विशेषांक-गीता प्रेस, गोरखपुर
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी	श्रंद्धाजलि अंक, ३,४ सम्वत्, २०२४, २००५
हिंदुस्तानी एकेडमी	हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
हिंदी अनुशीलन प्रयाग	जनवरी १९५६, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक १९६० ई० भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग
सम्मेलन पत्रिका	भाग ४७, अंक -२ हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
भारतीय लोककला मंडल	१९५९-६० उदयपुर, राजास्थान।

अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध

एब्राल, पी०के	"मुगल नोबिलिटी अण्डर बाबर एण्ड हुमायूं"
जैदी, इनायत अली	"राजपूत अण्डर अकबर"
दत्त, जी०एस०	"मुस्लिम कवियों की हिन्दी साहित्य को देन"